प्रकाशक :

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

जोधपुर

शाखा कार्यालय
नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)
✆ : (01462) 251216, 257699, 250328

प्रज्ञापना सूत्र

भाग-२

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य

विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का १०२ वाँ रत्न

प्रज्ञापना सूत्र

भाग-२

(पद ४-१२)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

सम्पादक

नेमीचन्द बांठिया

पारसमल चण्डालिया

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन

संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

[redacted]

✆ (०१४६२) २५१२१६, २५७६९९, फेक्स नं. २५०३२८

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ सिटी पुलिस, **जोधपुर** © 2626145

२. **शाखा** - श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ,नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर**

३. **महाराष्ट्र शाखा** - माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेडकर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**

४. **कर्नाटक शाखा** - श्री सुधर्म जैन पौषधशाला भवन, ३८ अप्पुराव रोड़ छठा मेन रोड़ चामराजपेट, **बैंगलोर- १८** © : 25928439

५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो. बॉ. नं. २२१७, **बम्बई-२**

६. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊसिंग कॉ० सोसायटी ब्लॉक नं. १० स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)**

७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६**

८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद**

९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा (महा.)**

१०. प्रकाश पुस्तक मंदिर, रायजी मोंढा की गली, पुरानी धानमंडी, **भीलवाड़ा** © 327788

११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**

१२. श्री विद्या प्रकाशन मंदिर, विद्या लोक ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)

१३. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** © : 25357775

१४. श्री संतोषकुमारजी जैन वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शापिंग सेन्टर, **कोटा** © : 2360950

मूल्य : ४०-००

तृतीय आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३४
विक्रम संवत् २०६५
मई २००८

मुद्रक : स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

यह संसार अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा इसीलिए संसार को अनादि अनंत कहा जाता है। इसी प्रकार जैन धर्म के संबंध में भी समझना चाहिए। जैन धर्म भी अनादि काल से है और अनंत काल तक रहेगा। हाँ भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में काल का परिवर्तन होता रहता है, अतएव इन क्षेत्रों में समय समय पर धर्म का विच्छेद हो जाता है, पर महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा जैन धर्म लोक की भांति अनादि अनंत एवं शाश्वत है। भरत क्षेत्र ऐरावत क्षेत्र में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल में २४-२४ तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर भगवंतों के लिए विशेषण आता है, **"आइच्चेसु अहियं पयासयरा"** यानी सूर्य की भांति उनका व्यक्तित्व तेजस्वी होता है वे अपनी ज्ञान रश्मियों से विश्व की आत्माओं को अलौकिक करते हैं। वे साक्षात् ज्ञाता द्रष्टा होते हैं।

प्रत्येक तीर्थंकर केवलज्ञान केवलदर्शन होने के बाद चतुर्विध संघ की स्थापना करते हैं और वाणी की वागरणा करते हैं। उनकी प्रथम देशना में ही जितने गणधर होने होते हैं उतने हो जाते हैं। तीर्थंकर प्रभु द्वारा बरसाई गई कुसुम रूप वाणी को गणधर भगवंत सूत्र रूप में गुंथित करते हैं जो द्वादशांगी के रूप में पाट परंपरा से आगे से आगे प्रवाहित होती रहती है।

जैन आगम साहित्य जो वर्तमान में उपलब्ध है, उसके वर्गीकरण पर यदि विचार किया जाय तो वह चार रूप में विद्यमान है - अंग सूत्र, उपांग सूत्र, मूल सूत्र और छेद सूत्र। अंग सूत्र जिसमें दृष्टिवाद जो कि दो पाट तक ही चलता है उसके बाद उसका विच्छेद हो जाता है, इसको छोड़ कर शेष ग्यारह आगमों का (१. आचारांग २. सूत्रकृतांग ३. स्थानाङ्ग ४. समवायाङ्ग ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति ६. ज्ञाताधर्मकथाङ्ग ७. उपासकदशाङ्ग ८. अन्तकृतदशाङ्ग ९. अणुत्तरौपपातिकदशा १०. प्रश्नव्याकरण ११. विपाक सूत्र) अंग सूत्रों में समावेश माना गया है। इनके रचयिता गणधर भगवंत ही होते हैं। इसके अलावा बारह उपांग (१. औपपातिक २. राजप्रश्नीय ३. जीवाभिगम ४. प्रज्ञापना ५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ६. चन्द्र प्रज्ञप्ति ७. सूर्य प्रज्ञप्ति ८. निरयावलिका ९. कल्पावतंसिया १०. पुष्पिका ११. पुष्प चूलिका १२. वण्हिदशा) चार मूल (१. उत्तराध्ययन २. दशवैकालिक ३. नंदी सूत्र ४. अनुयोग द्वार) चार छेद (१. दशाश्रुतस्कन्ध २. बृहत्कल्प ३. व्यवहार सूत्र ४. निशीथ सूत्र) और आवश्यक सूत्र। जिनके रचयिता दस पूर्व या इनसे अधिक के ज्ञाता विभिन्न स्थविर भगवंत हैं।

प्रस्तुत पन्नवणा यानी प्रज्ञापना सूत्र जैन आगम साहित्य का चौथा उपांग है। संपूर्ण आगम साहित्य में भगवती और प्रज्ञापना सूत्र का विशेष स्थान है। अंग शास्त्रों में जो स्थान पंचम अंग भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) सूत्र का है वही स्थान उपांग सूत्रों में प्रज्ञापना सूत्र का है। जिस प्रकार पंचम अंग शास्त्र व्याख्याप्रज्ञप्ति के लिए भगवती विशेषण प्रयुक्त हुआ है उसी प्रकार पन्नवणा उपांग सूत्र के लिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येक पद की समाप्ति पर '**पण्णवणाए भगवईए**' कह कर पन्नवणा के लिए "**भगवती**" विशेषण प्रयुक्त किया गया है। यह विशेषण इस शास्त्र की महत्ता का सूचक है। इतना ही नहीं अनेक आगम पाठों को "**जाव**" आदि शब्दों से संक्षिप्त कर पन्नवणा देखने का संकेत किया है। समवायांग सूत्र के जीव अजीव राशि विभाग में प्रज्ञापना के पहले, छठे, सतरहवें, इक्कीसवें, अट्ठाइसवें, तेतीसवें और पैतीसवें पद देखने की भलावण दी है तो भगवती सूत्र में पन्नवणा सूत्र के मात्र सत्ताईसवें और इकतीसवें पदों को छोड़ कर शेष ३४ पदों की स्थान-स्थान पर विषयपूर्ति कर लेने की भलामण दी गई है। जीवाभिगम सूत्र में प्रथम प्रज्ञापना, दूसरा स्थान, चौथा स्थिति, छठा व्युत्क्रांति तथा अठारहवें कायस्थिति पद की भलावण दी है। विभिन्न आगम साहित्य में पाठों को संक्षिप्त कर इसकी भलावण देने का मुख्य कारण यह है कि प्रज्ञापना सूत्र में जिन विषयों की चर्चा की गयी है उन विषयों का इसमें विस्तृत एवं सांगोपांग वर्णन है। इस सूत्र में मुख्यता द्रव्यानुयोग की है। कुछ गणितानुयोग व प्रसंगोपात इतिहास आदि के विषय भी इसमें सम्मिलित है।

'प्रज्ञा' शब्द का प्रयोग विभिन्न ग्रंथों में विभिन्न स्थलों पर हुआ है। जहाँ इसका अर्थ प्रसंगोपात किया गया है। कोषकारों ने प्रज्ञा को बुद्धि कहा है और इसे बुद्धि का पर्यायवाची माना है जबकि आगमकार महर्षि बहिरंग ज्ञान के अर्थ में बुद्धि का प्रयोग करते हैं एवं अंतरंग चेतना शक्ति को जागृत करने वाले ज्ञान को "प्रज्ञा" के अंतर्गत लिया है। वास्तव में यही अर्थ प्रासंगिक एवं सार्थक हैं। क्योंकि इसमें समाहित सभी विषय जीव की आन्तरिक और बाह्य प्रज्ञा को सूचित करने वाले हैं।

चूंकि प्रज्ञापना सूत्र में जीव अजीव आदि का स्वरूप, इनके रहने के स्थान आदि का व्यवस्थित क्रम से सविस्तार वर्णन है एवं इसके प्रथम पद का नाम प्रज्ञापना होने से इसका नाम '**प्रज्ञापना सूत्र**' उपयुक्त एवं सार्थक है। जैसा कि ऊपर बतलाया गया कि इस सूत्र में प्रधानता द्रव्यानुयोग की है और द्रव्यानुयोग का विषय अन्य अनुयोगों की अपेक्षा काफी कठिन, गहन एवं दुरुह है इसलिए इस सूत्र की सम्यक् जानकारी विशेष प्रज्ञा संपन्न व्यक्तित्व के गुरु भगवन्तों के सान्निध्य से ही संभव है।

प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता कालकाचार्य (श्यामाचार्य) माने जाते हैं। इतिहास में तीन कालकाचार्य प्रसिद्ध हैं - १. प्रथम कालकाचार्य जो निगोद व्याख्याता के रूप में प्रसिद्ध है जिनका जन्म वीर नि० सं० २८० दीक्षा वीर निवार्ण सं० ३०० युग प्रधान आचार्य के रूप में वीर नि० सं० ३३५ एवं कालधर्म वीर नि० सं० ३७६ में होने का उल्लेख मिलता है। दूसरे गर्दभिल्लोच्छेदक कालकाचार्य का समय वीर नि० सं० ४५३ के आसपास का है एवं तीसरे कालकाचार्य जिन्होंने संवत्सरी पंचमी के स्थान पर चतुर्थी को मनायी उनका समय वीर निवार्ण सं० ९९३ के आसपास है। तीनों कालकाचार्यों में प्रथम कालकाचार्य जो श्यामाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हैं अपने युग के महान् प्रभावक आचार्य हुए। वे ही प्रज्ञापना सूत्र के रचयिता होने चाहिए। इसके आधार से प्रज्ञापना सूत्र का रचना काल वीर नि० सं० ३३५ से ३७६ के बीच का ठहरता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानकवासी परंपरा में उन्हीं शास्त्रों को आगम रूप में मान्य किया है जो लगभग दस पूर्वी या उससे ऊपर वालों की रचना हो। नंदी सूत्र में वर्णित अंग बाह्य कालिक और उत्कालिक सूत्रों का जो क्रम दिया गया है उसका आधार यदि रचनाकाल माना जाय तो प्रज्ञापना सूत्र की रचना दशवैकालिक, औपपातिक, रायपसेणइ तथा जीवाभिगम सूत्र के बाद एवं नंदी, अनुयोग द्वार के पूर्व हुई है। अनुयोगद्वार के कर्त्ता आर्यरक्षित थे। उनके पूर्व का काल आर्य स्थूलिभद्र तक का काल दश पूर्वधरों का काल रहा है। यह बात इतिहास से सिद्ध है। आर्य श्यामाचार्य इसके मध्य होने वाले युगप्रधान आचार्य हुए। इससे निश्चित हो जाता है कि प्रज्ञापना दशपूर्वधर आर्य श्यामाचार्य की रचना है।

प्रज्ञापना सूत्र उपांग सूत्रों में सबसे बड़ा उत्कालिक सूत्र है। इसकी विषय सामग्री ३६ प्रकरणों में विभक्त है जिन्हें '**पद**' के नाम से संबोधित किया गया है। वे इस प्रकार हैं - १. प्रज्ञापना पद २. स्थान पद ३. अल्पाबहुत्व ४. स्थिति पद ५. पर्याय पद ६. व्युत्क्रांति पद ७. उच्छ्वास पद ८. संज्ञा पद ९. योनि पद १०. चरम पद ११. भाषा पद १२. शरीर पद १३. परिणाम पद १४. कषाय पद १५. इन्द्रिय पद १६. प्रयोग पद १७. लेश्या पद १८. कायस्थिति पद १९. सम्यक्त्व पद २०. अंतक्रिया पद २१. अवगाहना संस्थान पद २२. क्रिया पद २३. कर्मप्रकृति पद २४. कर्मबंध पद २५. कर्म वेद पद २६. कर्मवेद बंध पद २७. कर्मवेद वेद पद २८. आहार पद २९. उपयोग पद ३०. पश्यत्ता पद ३१. संज्ञी पद ३२. संयत पद ३३. अवधि पद ३४. परिचारणा पद ३५. वेदना पद ३६. समुद्घात पद।

आदरणीय रतनलालजी सा. डोशी के समय से ही इस विशिष्ट सूत्रराज के निकालने की संघ की योजना थी, पर किसी न किसी कठिनाई के उपस्थित होते रहने पर इस सूत्रराज का प्रकाशन न हो सका। चिरकाल के बाद अब इसका प्रकाशन संभव हुआ है। संघ का यह नूतन प्रकाशन है। इसके हिन्दी अनुवाद का प्रमुख आधार आचार्यमलयगिरि की संस्कृत टीका एवं मूल पाठ के लिए संघ द्वारा प्रकाशित सुत्तागमे एवं जंबूविजय जी की प्रति का सहारा लिया गया है। टीका का हिन्दी अनुवाद श्रीमान् पारसमलजी चण्डालिया ने किया। इसके बाद उस अनुवाद को मैंने देखा। तत्पश्चात् श्रीमान् हीराचन्द जी पींचा, इसे पंडित रत्न श्री घेवरचन्दजी म. सा. "वीरपुत्र" को पन्द्रहवें पद तक ही सुना पाये कि पं. र. श्री वीरपुत्र जी म. सा. का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद हमारे अनुनय विनय पर पूज्य श्रुतधर जी म. सा. ने पूज्य पंडित रत्न श्री लक्ष्मीमुनि जी म. सा. को सुनने की आज्ञा फरमाई तदनुसार सेवाभावी श्रावक रत्न श्री प्रकाशचन्दजी सा. चपलोत सनवाड़ निवासी ने सनवाड़ चातुर्मास में म. सा. को सुनाया। पूज्य गुरु भगवन्तों ने जहाँ भी आवश्यकता समझी संशोधन कराने की महती कृपा की। अतएव संघ पूज्य गुरु भगवन्तों एवं श्रीमान् हीराचन्दजी पींचा तथा श्रावक रत्न श्री प्रकाशचन्दजी चपलोत का हृदय से आभार व्यक्त करता है।

अवलोकित प्रति का पुनः प्रेस कॉपी तैयार करने से पूर्व हमारे द्वारा अवलोकन किया गया। इस प्रकार प्रस्तुत सूत्र के प्रकाशन में हमारे द्वारा पूर्ण सतर्कता एवं सावधानी बरती गयी फिर भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम अनुवाद का विशेष अनुभव नहीं होने से भूलों का रहना स्वाभाविक है। अतएव तत्त्वज्ञ मनीषियों से निवेदन है कि इस प्रकाशन में यदि कोई भी त्रुटि दृष्टिगोचर हो तो हमें सूचित करने की महती कृपा करावें। प्रस्तुत सूत्र पर विवेचन एवं व्याख्या बहुत विस्तृत होने से इसका कलेवर इतना बढ़ गया कि सामग्री लगभग १६०० पृष्ठ तक पहुँच गयी। पाठक बंधु इस विशद सूत्र का सुगमता से अध्ययन कर सके इसके लिए इस सूत्रराज को चार भागों में प्रकाशित किया जा रहा है। प्रथम भाग में १ से ३ पद का, दूसरे भाग में ४ से १२ पद का, तीसरे भाग में १३ से २१ पद का और चौथे भाग में २२ से ३६ पद का समावेश है।

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन में आदरणीय **श्री जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** निवासी का मुख्य सहयोग रहा है। आप एवं आपकी धर्म सहायिका **श्रीमती मंगलाबेन शाह** की सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार में गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा प्रकाशित सभी आगम **अर्द्ध मूल्य** में पाठकों को उपलब्ध हो तदनुसार आप इस योजना के अन्तर्गत सहयोग प्रदान करते रहे हैं। अतः संघ आपका आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपके पुत्र रत्न **मयंकभाई शाह** एवं **श्रेयांसभाई शाह** भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ!

प्रज्ञापना सूत्र की प्रथम आवृत्ति का जून २००२ एवं द्वितीय आवृत्ति सितम्बर २००६ में प्रकाशन किया गया जो अल्प समय में ही अप्राप्य हो गयी। अब इसकी तृतीय आवृत्ति का प्रकाशन किया जा रहा है। आए दिन कागज एवं मुद्रण सामग्री के मूल्यों में निरंतर वृद्धि हो रही है। इस आवृत्ति में जो कागज काम में लिया गया वह उत्तम किस्म का मेपलिथो है। बाईडिंग पक्की तथा सेक्शन है। बावजूद इसके आदरणीय शाह परिवार के आर्थिक सहयोग के कारण इसके प्रत्येक भाग का **मूल्य मात्र ४०)** ही रखा गया है, जो अन्यत्र से प्रकाशित आगमों से बहुत अल्प है। सुज्ञ पाठक बंधु संघ के इस नूतन आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राज.) — **संघ सेवक**

दिनांकः २५-५-२००८ — **नेमीचन्द बांठिया**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो
१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

❀ ❀ ❀ ❀

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	**काल मर्यादा**
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह ✻	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे
औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

✻ आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

प्रज्ञापना सूत्र भाग २

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	चौथा स्थिति पद	**१-७२**
१.	उत्क्षेप-उत्थानिका	१
२.	नैरयिकों की स्थिति	२
३.	देवों की स्थिति	९
४.	एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति	१६
५.	बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति	२२
६.	तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति	२३
७.	चउरिन्द्रिय जीवों की स्थिति	२४
८.	तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति	२४
९.	मनुष्यों की स्थिति	३७
१०.	वाणव्यंतर देवों की स्थिति	३८
११.	ज्योतिषी देवों की स्थिति	४०
१२.	वैमानिक देवों की स्थिति	४८
	पांचवां विशेष पद	**७३-१७१**
१.	उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका)	७३
२.	पर्याय के भेद	७४
३.	जीव पर्याय	७४
४.	नैरयिकों के पर्याय	७५
५.	असुरकुमार आदि देवों के पर्याय	८३
६.	पृथ्वीकायिकों के पर्याय	८४
७.	अप्कायिकों के पर्याय	८६
८.	तेजस्कायिकों के पर्याय	८७
९.	वायुकायिकों के पर्याय	८८
१०.	वनस्पतिकायिकों के पर्याय	८८
११.	बेइन्द्रियों के पर्याय	८९
१२.	मनुष्यों के पर्याय	९०
१३.	वाणव्यंतर आदि देवों के पर्याय	९१
१४.	जघन्य आदि अवगाहना वाले नैरयिकों के पर्याय	९२
१५.	जघन्य आदि अवगाहना वाले देवों के पर्याय	१००
१६.	जघन्य आदि अवगाहना वाले पृथ्वीकायिकों के पर्याय	१०१
१७.	जघन्य आदि अवगाहना वाले बेइन्द्रियों के पर्याय	१०६
१८.	जघन्य आदि अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रियों के पर्याय	१११
१९.	जघन्य आदि अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्याय	११८
२०.	अजीव पर्याय	१२८
२१.	अरूपी अजीव पर्याय के भेद	१२९
२२.	रूपी अजीव पर्याय के भेद	१३०
२३.	परमाणु पुद्गल के पर्याय	१३१
२४.	द्विप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय	१३३
२५.	संख्यात प्रदेशी स्कन्ध के पर्याय	१३५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
२६.	असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध के पर्याय	१३६
२७.	अनंत प्रदेशी स्कन्ध के पर्याय	१३६
२८.	एक प्रदेशावगाढ पुद्गल के पर्याय	१३७
२९.	संख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल के पर्याय	१३८
३०.	असंख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल के पर्याय	१३९
३१.	एक समय आदि की स्थिति वाले पुद्गल के पर्याय	१३९
३२.	एक गुण काले आदि पुद्गलों के पर्याय	१४०
३३.	जघन्य आदि अवगाहना वाले द्विप्रदेशी आदि पुद्गलों के पर्याय	१४२
३४.	जघन्य आदि अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय	१४३
३५.	जघन्य आदि अवगाहना वाले चतु:प्रदेशी पुद्गलों के पर्याय	१४४
३६.	जघन्य आदि अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी पुद्गल के पर्याय	१४५
३७.	जघन्य आदि अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१४६
३८.	जघन्य आदि अवगाहना वाले अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१४७
३९.	मध्यम अवगाहना वाले अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१४८
४०.	जघन्य आदि स्थिति वाले परमाणु पुद्गलों के पर्याय	१४९
४१.	जघन्य आदि स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१५०
४२.	जघन्य आदि स्थिति वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१५१
४३.	जघन्य आदि स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१५२
४४.	जघन्य आदि स्थिति वाले अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१५३
४५.	जघन्य गुण काले आदि परमाणु पुद्गलों के पर्याय	१५४
४६.	जघन्य गुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१५५
४७.	जघन्य गुण काले संख्यात प्रदेशी पुद्गलों के पर्याय	१५६
४८.	जघन्य गुण काले असंख्यात प्रदेशी पुद्गलों के पर्याय	१५७
४९.	जघन्य गुण काले अनंत प्रदेशी पुद्गलों के पर्याय	१५८
५०.	जघन्यगुण कर्कश अनंत प्रदेशी स्कंधों के पर्याय	१५९
५१.	जघन्य गुण शीत परमाणु पुद्गलों के पर्याय	१६०
५२.	जघन्य गुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१६१
५३.	जघन्य गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१६२
५४.	जघन्य गुण शीत असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१६३
५५.	जघन्य गुण शीत अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१६४
५६.	जघन्य प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१६६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
५७.	उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१६६
५८.	मध्यम प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय	१६७
५९.	जघन्य अवगाहना वाले पुद्गल के पर्याय	१६८
६०.	मध्यम अवगाहना वाले पुद्गल के पर्याय	१६९
६१.	जघन्य स्थिति वाले पुद्गल के पर्याय	१६९
६२.	जघन्य गुण काले पुद्गलों के पर्याय	१७०

छठा व्युत्क्रांति पद १७२-२४०

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका)	१७२
२.	प्रथम द्वादश द्वार	१७३
३.	द्वितीय चतुर्विंशति द्वार	१७५
४.	तीसरा सान्तर द्वार	१८६
५.	चौथा एक समय द्वार	१९०
६.	पांचवां कुतो द्वार	१९३
७.	छठा उद्वर्त्तना द्वार	२२४
८.	सातवां परभविकायुष्य द्वार	२३१
९.	आठवां आकर्ष द्वार	२३५

सातवां उच्छ्वास पद २४१-२५३

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका)	२४१
२.	नैरयिकों में श्वासोच्छ्वास काल	२४१
३.	असुरकुमार आदि देवों में श्वासोच्छ्वास विरहकाल	२४२
४.	पृथ्वीकायिक आदि में श्वासोच्छ्वास विरह काल	२४४
५.	ज्योतिषी देवों में श्वासोच्छ्वास विरह काल	२४५
६.	वैमानिक देवों में श्वासोच्छ्वास विरह काल	२४५

आठवां संज्ञा पद २५४-२६२

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका)	२५४
२.	संज्ञाओं के भेद	२५४
३.	नैरयिकों में संज्ञाएं	२५६
४.	असुरकुमार आदि में संज्ञाएं	२५६
५.	नैरयिकों में संज्ञाओं का अल्पबहुत्व	२५७
६.	तिर्यंच योनिकों में संज्ञाओं का अल्पबहुत्व	२५८
७.	मनुष्यों में संज्ञाओं का अल्पबहुत्व	२६०
८.	देवों में संज्ञाओं का अल्पबहुत्व	२६१

नववां योनि पद २६३-२७९

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका)	२६३
२.	शीत आदि तीन योनियां	२६४
३.	नैरयिक आदि में शीत आदि योनियाँ	२६५
४.	सचित्त आदि तीन योनियाँ	२७०
५.	नैरयिक आदि में सचित्त आदि तीन योनियाँ	२७०
६.	संवृत्त आदि तीन योनियाँ	२७३

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

****

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
७.	नैरयिक आदि में संवृत आदि योनियां	२७३
८.	कूर्मोन्नता आदि तीन योनियां	२७६
	दसवां चरम पद	**२८०-३२१**
१.	उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका)	२८०
२.	लोकालोक की चरम-अचरम वक्तव्यता	२८१
३.	लोक-अलोक के चरम-अचरम द्रव्य प्रदेशों की अल्पबहुत्व	२८८
४.	परमाणु पुद्‌गल आदि के चरम अचरम	२९३
५.	संस्थान की अपेक्षा चरम-अचरम आदि	३०६
६.	गति आदि की अपेक्षा चरम-अचरम आदि वक्तव्यता	३१३
७.	गति चरम-अचरम	३१४
८.	स्थिति चरम-अचरम	३१६
९.	भव चरम-अचरम	३१६
१०.	भाषा चरम-अचरम	३१७
११.	आनापान चरम-अचरम	३१८
१२.	आहार चरम-अचरम	३१८
१३.	भाव चरम-अचरम	३१९
१४.	वर्णादि चरम अचरम	३१९
	ग्यारहवां भाषा पद	**३२२-३७३**
१.	उक्खेवो (उत्क्षेप-उत्थानिका)	३२२
२.	चार प्रकार की भाषा	३२२
३.	प्रज्ञापनी भाषा	३२६
४.	मंदकुमार आदि की भाषा	३३१
५.	एक वचन आदि की अपेक्षा भाषा निरूपण	३३४
६.	भाषा का स्वरूप	३३८
७.	पर्याप्तक अपर्याप्तक भाषा	३४०
८.	पर्याप्तक भाषा के भेद	३४१
९.	अपर्याप्तक भाषा के भेद	३४४
१०.	भाषक और अभाषक की वक्तव्यता	३४७
११.	चतुर्विध भाषाजात	३४९
१२.	भाषा द्रव्यों के विभिन्न रूप	३५१
१३.	भाषा द्रव्यों के भेद	३६४
१४.	वचन के सोलह प्रकार	३६९
१५.	चार भाषाओं के आराधक विराधक	३७२
१६.	सत्यभाषी आदि का अल्पबहुत्व	३७३
	बारहवां शरीर पद	**३७४-३९८**
१.	उक्खेवो	३७४
२.	शरीर के भेद	३७५
३.	नैरयिक आदि में शरीर प्ररूपणा	३७६
४.	शरीरों के बद्ध-मुक्त भेद	३७७
५.	नैरयिकों के बद्ध-मुक्त शरीर	३८२
६.	असुरकुमारों के बद्ध-मुक्त शरीर	३८५
७.	पृथ्वीकायिकों के बद्ध मुक्त शरीर	३८७
८.	वायुकायिकों के बद्ध मुक्त शरीर	३८८
९.	बेइन्द्रिय आदि के बद्ध मुक्त शरीर	३९०
१०.	तिर्यंच पंचेन्द्रियों के बद्ध मुक्त शरीर	३९३
११.	मनुष्यों के बद्ध-मुक्त शरीर	३९४
१२.	वाणव्यंतर आदि के बद्ध मुक्त शरीर	३९६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

卐 णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स 卐

श्रीमदार्यश्यामाचार्य विरचित

प्रज्ञापना सूत्र

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ और विवेचन सहित)

भाग - २

चउत्थं ठिइपयं

चौथा स्थिति पद

उत्क्षेप (उत्थानिका) - प्रज्ञापना सूत्र के इस चौथे पद का नाम स्थिति पद है तो सहज ही यह प्रश्न होता है कि स्थिति किसे कहते हैं? इस का समाधान यह है कि टीकाकार ने "स्थिति" शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है - "**स्थीयते अवस्थीयते अनया आयुष्कर्मानुभूत्या इति स्थितिः। स्थितिः आयुष्कर्मानुभूतिः जीवनं इति पर्यायाः।**"

अर्थात् - जीवों का अवस्थान स्थिति कहलाता है अर्थात् चार गति के जीवों के विविध पर्याएँ होती है उनकी आयु का विचार करना स्थिति कहलाता है वैसे तो जीव द्रव्य (आत्मा) नित्य है परन्तु वह चारों गतियों में नाना रूप (नाना जन्म) धारण करता है। वे पर्याएँ अनित्य हैं, वे कभी न कभी नष्ट होती ही हैं। इस कारण यहाँ उनकी स्थिति का विचार किया गया है। स्थिति शब्द का व्युत्पत्ति जन्य अर्थ भी इस प्रकार का है कि आयु कर्म की अनुभूति करता हुआ जीव जिस पर्याय में अवस्थित रहता है वह स्थिति है। इसलिये स्थिति, आयुकर्मानुभूति, जीवन ये तीनों शब्द एकार्थक एवं पर्यायवाची हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यद्यपि मिथ्यात्व आदि कारणों से ग्रहण किये हुए तथा ज्ञानावरणीय आदि रूप में परिणत कर्म पुद्गलों का जो अवस्थान है, वह भी स्थिति कहलाती है तथापि यहाँ चार गति की न्यपदेश की हेतु "आयुष्यकर्मानुभूति" ही स्थिति शब्द का वाच्य है क्योंकि नरक गति आदि तथा पंचेन्द्रिय जाति आदि नाम कर्म के उदय के आश्रित नारकत्व आदि पर्याय कहलाती है। किन्तु यहाँ नरक आदि क्षेत्र को अप्राप्त विग्रह गति में चलता हुआ जीव नरक आयु आदि के प्रथम समय के वेदन काल से ही नारकत्व आदि कहलाने लगता है। अतः उस गति के आयुष्य कर्म की अनुभूति को ही स्थिति माना गया है। आयुष्य कर्म की अनुभूति सिर्फ संसारी जीवों को ही होती है इसलिए इस पद में संसारी जीवों की ही स्थिति का विचार किया गया है। सिद्ध भगवान् तो सादि अपर्यवस्थित (आदि सहित और अन्त रहित) होते हैं। उनके आयुष्य कर्म होता ही नहीं है। अतः उस सम्बन्धी विचार अप्राप्त है। अजीव द्रव्य के पर्यायों की स्थिति होती है किन्तु उसका इस पद में विचार नहीं किया गया है।

स्थिति (आयु) का विचार यहाँ सर्वत्र जघन्य और उत्कृष्ट दो प्रकार से किया गया है तथा सर्व प्रथम जीव की उन उन सामान्य पर्यायों को लेकर समुच्चय रूप से तत्पश्चात् उनके अपर्याप्तक और पर्याप्तक इस तरह तीन भेद करके आयुष्य का विचार किया गया है।

जीवों की स्थिति दो प्रकार की बतलाई गई है यथा - १. भव स्थिति और २. काय स्थिति। जीव ने उस भव में जितने आयुष्य कर्म की स्थिति बाँधी है, उसको उस भव में भोग लेना भव स्थिति कहलाती है। पृथ्वीकाय आदि का जीव मरकर फिर पृथ्वीकाय में उत्पन्न हो। इस प्रकार उस काया को न छोड़ते हुए उसमें बारम्बार जन्म मरण करते रहना, काय स्थिति कहलाती है। देव मरकर वापिस देव नहीं होता है, इसी प्रकार नरक का जीव मरकर दूसरे भव में फिर नरक जीव नहीं बनता है, इसलिए देव और नैरयिक की काय स्थिति नहीं बनती है, सिर्फ तिर्यंच और मनुष्य की काय स्थिति बनती है। इस स्थिति पद में काय स्थिति का विचार नहीं किया गया है, सिर्फ भव स्थिति का विचार किया गया है।

नैरयिकों की स्थिति

प्रज्ञापना सूत्र के तीसरे पद में दिशा आदि की अपेक्षा से अल्पबहुत्व की संख्या का निरूपण किया गया है और इस चौथे पद में अल्पबहुत्व से निर्णीत किये हुए जीवों की जन्म से मृत्यु पर्यंत नैरयिक आदि पर्यायों की स्थिति का निरूपण किया गया है। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

अपज्जत्तग णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्तग णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २१८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक नैरयिकों की जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त न्यून (कम) दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त न्यून तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सामान्य रूप से नैरयिकों की स्थिति बता कर उसके बाद अपर्याप्तक और पर्याप्तक नैरयिकों की स्थिति का वर्णन किया गया है। अपर्याप्तक दो प्रकार से होते हैं - १. लब्धि से और २. करण से। नैरयिक, देव तथा असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच और मनुष्य करण से ही अपर्याप्तक होते हैं, लब्धि से नहीं क्योंकि लब्धि अपर्याप्तक की उनमें उत्पत्ति होती ही नहीं है अतः वे उत्पत्तिकाल में ही कुछ समय तक अपर्याप्तक होते हैं यानी अन्तर्मुहूर्त्त पर्यंत अपर्याप्तक होते हैं। शेष तिर्यंच और मनुष्य उत्पत्ति समय और लब्धि से अपर्याप्तक होते हैं यानी करण अपर्याप्तक और लब्धि अपर्याप्तक दोनों प्रकार के होते हैं। अपर्याप्तक जघन्य से और उत्कृष्ट से अन्तर्मुहूर्त्त पर्यंत होते हैं अतः अपर्याप्तक की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त है। किन्तु जघन्य के अन्तर्मुहूर्त्त से उत्कृष्ट का अन्तर्मुहूर्त्त असंख्यात गुणा बड़ा होता है। अपर्याप्तक काल पूर्ण होने पर शेष काल पर्याप्तक का होता है। जैसे समुच्चय नैरयिक की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की है। इसमें अपर्याप्तक की अन्तर्मुहूर्त्त की स्थिति कम कर देने पर पर्याप्तक नैरयिक की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम ३३ सागरोपम की होती है। आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार कहना चाहिये।

रयणप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं सागरोवमं।

अपज्जत्तग रयणप्पभा पुढवीणेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तग रयणप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - हे भगवन्! पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक सागरोपम कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गयी है।

प्रश्न - हे भगवन् ! पर्याप्तक रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की कही गई है।

सक्करप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं सागरोवमं, उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं।

अपज्जत्तय सक्करप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय सक्करप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं,उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! दूसरी शर्करा प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! दूसरी शर्करा प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य एक सागरोपम की और उत्कृष्ट तीन सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन् ! अपर्याप्तक शर्करा प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक शर्करा प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की कही गई है।

वालुयप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं।

अपज्जत्तय वालुयप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय वालुयप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक-वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतर्मुहूर्त्त कम तीन सागरोपम की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की कही गई है।

पंकप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं।

अपज्जत्तय पंकप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्तय पंकप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चौथी पंक प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चौथी पंक प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक पंक प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अंतमुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की कही गई है?

प्रश्न - हे भगवन् ! पर्याप्तक पंक प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की कही गई है।

धूमप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं।

अपज्जत्तय धूमप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय धूमप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट सतरह सागरोपम की कही गई है है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सतरह सागरोपम की कही गई है।

तमप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

अपज्जत्तय तमप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय तमप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! छठी तम:प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तम:प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य सतरह सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक तम:प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक तम:प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सतरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की कही गई है।

अहेसत्तमा पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

अपज्जत्तय अहेसत्तम पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइय कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तय अहेसत्तम पुढवी णेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २१९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सातवीं अधः सप्तम (तमस्तमःप्रभा) पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधः सप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सात नरक पृथ्वियों के नैरयिकों की अलग-अलग स्थिति का कथन किया गया है। पहले पहले की नरक पृथ्वी के नैरयिकों की जो उत्कृष्ट स्थिति है वही अगली अगली नरक पृथ्वी के नैरयिकों की जघन्य स्थिति है। जैसे पहली रत्नप्रभा पृथ्वी की उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है वही द्वितीय शर्कराप्रभा पृथ्वी की जघन्य स्थिति है। इसी प्रकार सभी जगह समझ लेना चाहिए।

चौबीस ही दण्डकों के जीवों की दो प्रकार की अवस्था होती है - १. पर्याप्त और २. अपर्याप्त।

अपर्याप्त अवस्था दो प्रकार की होती है। यथा - लब्धि अपर्याप्त और करण अपर्याप्त। नारक, देव तथा असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच और मनुष्य करण से ही अपर्याप्त होते हैं लब्धि से नहीं। वे उपपात काल से लेकर कुछ काल तक ही करण से अपर्याप्त रहते हैं फिर पर्याप्त हो जाते हैं, ये अपर्याप्त अवस्था में काल नहीं करते हैं। शेष मनुष्य और तिर्यंच लब्धि अपर्याप्त और करण अपर्याप्त दोनों प्रकार के अपर्याप्तक हो सकते हैं। युगलिक तिर्यंच पंचेन्द्रिय और युगलिक मनुष्यों को छोड़कर शेष तिर्यंच और मनुष्य लब्धि अपर्याप्तक (अपर्याप्त अवस्था में) भी काल कर सकते हैं। जो करण अपर्याप्तक होते हैं वे करण अपर्याप्त अवस्था में काल नहीं करते हैं, अपितु करण पर्याप्तक होकर ही काल करते हैं। अपर्याप्तक अवस्था जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की ही होती है। परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त दो समय से उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त असंख्यात गुणा बड़ा होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - मूल पाठ में '**अहेसत्तमा पुढवी**' शब्द दिया है इसका क्या कारण ?

उत्तर - स्थानांग सूत्र के आठवें स्थान में पृथ्वियाँ आठ बतलाई गई हैं। रत्नप्रभा आदि सात तथा आठवीं पृथ्वी का नाम "**ईसिपब्भारा**" (ईषत् प्राग् भारा) दिया है। रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियाँ अधोलोक में नीचे हैं। तमस्तमाप्रभा सातवीं पृथ्वी है वह सबसे नीचे है यह बात बतलाने के लिए मूल में "**अहे**" शब्द दिया है जिसका अर्थ है "अध:" अर्थात् नीचे। ये सभी पृथ्वियाँ अधोलोक में नीचे हैं परन्तु सातवीं पृथ्वी सबसे नीचे हैं। यह बात बतलाने के लिए इसके साथ "**अहे (अध:)**" शब्द दिया है। ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी अधोलोक में नीचे नहीं है किन्तु ऊर्ध्व लोक में है और सबसे ऊपर है। इसके एक योजन ऊपर अलोक आ गया है। उस एक योजन के चौबीस भाग करने पर चौबीसवें भाग में सिद्ध भगवन्तों के आत्म प्रदेशों की अवगाहना है। उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष, एक हाथ आठ अंगुल (३२ अंगुल) है और जघन्य अवगाहना एक हाथ आठ अंगुल है। बीच की अर्थात् एक हाथ नौ अंगुल से लेकर ३३३ धनुष ३१ अंगुल तक सब मध्यम अवगाहना है। सब सिद्ध भगवन्तों के आत्म प्रदेशों की अवगाहना एक सरीखी नहीं है। इसलिए उववाई सूत्र में सिद्ध भगवन्तों के आत्म-प्रदेशों की अवगाहना का संस्थान '**अनित्थंस्थ**' बतलाया गया है।

प्रश्न - सिद्ध भगवन्तों के आत्म प्रदेशों की अवगाहना का आकार किस प्रकार होता है ?

उत्तर - १३ वें गुणस्थान के अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहते योगों का निरोध करते हुए जो आत्म-प्रदेशों का दो तिहाई भाग में घन (ठोस) किया हुआ व्यक्ति चाहे खडा हो, बैठा हो, सोता हो, सीधा सोता हो या उल्टा सोता हुआ हो और यहाँ तक कि किसी देव द्वारा संहरण किया हुआ व्यक्ति समुद्र आदि में नीचे माथा और ऊपर पैर की हुई अवस्था में डाला जाता हो। कहने का अभिप्राय यह है कि, किसी भी दशा में हो परन्तु सिद्ध होते समय खड़े पुरुष के आकार से आत्म-प्रदेशों की अवगाहना बन जाती है। सब सिद्ध भगवन्तों के मस्तक के आत्म-प्रदेश अलोक से अड़े हुए हैं और पैरों के आत्म-प्रदेश सबसे नीचे हैं।

देवों की स्थिति

देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

अपज्जत्तय देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक देवों की कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

देवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

अपज्जत्तिय देवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तिय देवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २२०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक देवियों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की कही गई है।

भवणवासीणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं।

अपज्जत्तय भवणवासीणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय भवणवासीणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणाइं।

कठिन शब्दार्थ - साइरेगं - सातिरेक-कुछ अधिक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक भवनवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक एक सागरोपम की कही गई है।

भवणवासिणीणं भंते! देवीण केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं।

अपज्जत्तिय भवणवासिणीणं देवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तियाणं भंते! भवणवासिणीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २२१॥

प्रश्न - हे भगवन् ! भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक भवनवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक भवनवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम साढ़े चार पल्योपम की कही गई है।

असुरकुमाराणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं।

अपज्जत्तय असुरकुमाराणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय असुरकुमाराणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं साइरेगं सागरोवमं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक सागरोपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक असुरकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक असुरकुमार देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक एक सागरोपम की कही गई है।

असुरकुमारीणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं।

अपज्जत्तियाणं असुरकुमारीणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तियाणं असुरकुमारीणं देवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं अद्धपंचमाइं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २२२॥

प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट साढ़े चार पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक असुरकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक असुरकुमार देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम साढे चार पल्योपम की कही गई है।

णागकुमाराणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं।

अपज्जत्तयाणं भंते! णागकुमाराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं भंते! णागकुमाराणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) दो पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक नागकुमार देवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक नागकुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक नागकुमारों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की कही गई है।

णागकुमारीणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं।

अपज्जत्तियाणं भंते! णागकुमारीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तियाणं भंते! णागकुमारीणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं॥ २२३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक नागकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन पल्योपम की कही गई है।

सुवण्णकुमाराणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं। पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दो पलिओवमाइं देसूणाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! सुपर्ण (सुवर्ण) कुमार देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सुपर्णकुमारों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सुपर्णकुमारों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सुपर्णकुमारों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन दो पल्योपम की कही गई है।

सुवण्णकुमारीणं भंते! देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं।

अपज्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं देसूणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं। एवं एएणं अभिलावेणं ओहिय अपज्जत्तय पज्जत्तय सुत्तत्तयं देवाण य देवीण य णेयव्वं जाव थणियकुमाराणं जहा णागकुमाराणं॥ २२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट देशोन पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सुपर्णकुमार देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम देशोन पल्योपम की कही गई है।

इस प्रकार इस अभिलाप से औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक शेष भवनवासी देवों और देवियों के विषय में यावत् स्तनितकुमार तक नागकुमार देवों की तरह समझ लेना चाहिये।

विवेचन - सूत्र नं. २२० से २२४ तक इन पांच सूत्रों में सामान्य देव और देवियों की तथा औघिक भवनवासी देव और देवियों की एवं असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक दस जाति के भवनवासी देव और देवियों की (पर्याप्तक और अपर्याप्तक सहित) जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का निरूपण किया गया है।

प्रश्न - भवनवासी देवों के कुल कितने भेद हैं? और उनके क्या नाम है?

उत्तर - भवनवासी देवों के मुख्य दस भेद हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. असुरकुमार २. नागकुमार ३. सुपर्णकुमार (सुवर्णकुमार) ४. विद्युतकुमार ५. अग्निकुमार ६. द्वीपकुमार ७. उदधिकुमार ८. दिशाकुमार ९. वायुकुमार १०. स्तनितकुमार।

इनकी स्थिति का वर्णन यहाँ कर दिया गया है।

असुरकुमार जाति के अन्तर्गत पन्द्रह भेद और हैं। उनको परमाधार्मिक देव कहते हैं। ये पापाचरण और क्रूर परिणामों वाले होते हैं। ये तीसरी नरक तक जाकर नैरयिक जीवों को विविध प्रकार से दुःख देते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं - १. अम्ब २. अम्बरीष ३. श्याम ४. शबल ५. रौद्र ६. महारौद्र ७. काल ८. महाकाल ९. असिपत्र १०. धनुः ११. कुम्भ १२. वालुका १३. वैतरणी १४. खरस्वर और १५. महाघोष।

इनका वर्णन समवायांग सूत्र के पन्द्रहवें समवाय में है तथा विस्तृत वर्णन भगवती सूत्र के तीसरे शतक के सातवें उद्देशक में है। पहले देवलोक का स्वामी शक्रेन्द्र है। उसके चार लोकपाल हैं यथा - १. सोम २. यम ३. वरुण और ४. वैश्रमण। ये परमाधार्मिक देव यमलोकपाल के अधीनस्थ देव हैं और पुत्रस्थानीय हैं। इनकी स्थिति एक पल्योपम की बतलाई गई है (वहाँ जघन्य उत्कृष्ट ऐसे दो भेद नहीं किये गए हैं किन्तु समुच्चय कथन है) इस प्रकार भवनवासी देवों के पच्चीस भेद होते हैं।

अब आगे क्रमशः प्राप्त दण्डकों के अनुसार पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन किया जाता है। इसमें भी पूर्वोक्त क्रम के अनुसार सामान्य, अपर्याप्तक और पर्याप्तक इन तीन विभागों से वर्णन किया जाएगा।

एकेन्द्रिय जीवों की स्थिति

पुढवीकाइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

अपज्जत्तय पुढवीकाइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय पुढवीकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्षों की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की कही गई है।

सुहुम पुढवीकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

अपज्जत्तय सुहुम पुढवीकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय सुहुम पुढवीकाइयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

बायर पुढवीकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं।

अपज्जत्तय बायर पुढवीकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय बायर पुढवीकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ॥ २२५ ॥

प्रश्न - हे भगवन्! बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट बाईस हजार वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य भी और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस हजार वर्ष की कही गई है।

आउकाइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं।

अपज्जत्तय आउ काइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तय आउ काइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

सुहुम आउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य जहा सुहुम पुढवीकाइयाणं तहा भाणियव्वं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक अप्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की कही गई हैं।

सूक्ष्म अप्कायिकों के औधिक (सामान्य) तथा अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जैसी सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों की कही गई है वैसी कह देनी चाहिये।

बायर आउकाइयाणं पुच्छा? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं।

अपज्जत्तय बायर आउकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाण य पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं सत्त वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २२६॥

प्रश्न - हे भगवन्! बादर अप्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बादर अप्कायिकों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट सात हजार वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक बादर अप्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक बादर अप्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात हजार वर्ष की कही गई है।

तेउकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं वि उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं?

पजत्तयाणं च पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुहुम तेउकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्तयाणं पज्जत्तयाण य पुच्छा? गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि-दिन की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक तेजस्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक तेजस्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की तथा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि दिन की कही गई है।

सूक्ष्म तेजस्कायिकों के औघिक (सामान्य) तथा अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

बायरतेउकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं।

अपज्जत्तय बायर तेउकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ॥ २२७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर तेजस्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन रात्रि दिन की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक बादर तेजस्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक बादर तेजस्कायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन रात्रि-दिन की कही गई है।

वाउकाइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

सुहुमवाउकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हजार वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक वायुकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक वायुकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक वायुकायिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! सूक्ष्म वायुकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म वायुकायिकों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सूक्ष्म वायुकायिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

बायरवाउकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ॥ २२८॥

प्रश्न - हे भगवन्! बादर वायुकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन हज़ार वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक बादर वायुकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन हजार वर्ष की कही गई है।

वणप्फइकाइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

अपज्जत्तया णं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

सुहुम वणप्फइकाइयाणं ओहियाणं अपज्जत्ताणं पज्जत्ताण य पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक वनस्पतिकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक वनस्पतिकायिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की कही गई है।

सूक्ष्म वनस्पतिकायिकों के औघिक (सामान्य) तथा अपर्याप्तकों और पर्याप्तकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

बायरवणप्फइकाइयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं ॥ २२९ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट दस हजार वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक बादर वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों की स्थिति का क्रमशः निरूपण किया गया है।

बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति

बेइंदियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कई गई है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बारह वर्ष की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक बेइन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बारह वर्ष की कही गई है।

तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति

तेइंदियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं एगूणवण्णं राइंदियाइं।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं एगूणवण्णं राइंदियाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट उनपचास रात्रि दिन (अहोरात्र) की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है

- हे गौतम! पर्याप्तक तेइन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की अन्तर्मुहूर्त्त कम उनपचास रात्रि दिन की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउरिन्द्रिय जीवों की स्थिति

चउरिंदियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा।

अपज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तयाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छम्मासा अंतोमुहुत्तूणा॥ २३०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चउरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चउरिन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट छह मास की की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक चउरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक चउरिन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक चउरिन्द्रिय जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक चउरिन्द्रिय जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम छह मास की कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीन विकलेन्द्रिय जीवों की स्थिति का वर्णन किया गया है।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की स्थिति

पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की कही गई है।

विवेचन - जिस प्रकार मनुष्य के समुच्चय रूप से तीन भेद कहे गये हैं। अकर्म भूमि, कर्म भूमि और सम्मूर्च्छिम। इसी प्रकार तिर्यंच पंचेन्द्रिय के भी समुच्चय रूप से तीन भेद होते हैं। अकर्म भूमि, कर्म भूमि और सम्मूर्च्छिम। जिस प्रकार कर्म भूमि मनुष्य का आयुष्य पूर्व कोटि (एक करोड़ पूर्व) तक होता है इससे अधिक नहीं होता। इसी प्रकार कर्म भूमि तिर्यंच पंचेन्द्रिय का आयुष्य भी कोटि पूर्व (एक करोड़ पूर्व) तक का होता है। इससे अधिक नहीं। एक कोटि पूर्व से अधिक आयुष्य वाला मनुष्य और गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय अकर्म भूमि का युगलिक कहलाता है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांच भेद होते हैं। यथा - जलचर, स्थलचर, खेचर (खहचर), उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। ये पांचों भेद अकर्म भूमि में भी होते हैं, किन्तु जलचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प ये तीन तो अकर्म भूमि में जन्म होने पर भी युगलिक नहीं होते हैं और इनका आयुष्य करोड़ पूर्व से अधिक नहीं होता है। स्थलचर और खेचर (खहचर) ये दोनों युगलिक होते हैं इनमें से स्थलचर युगलिक का आयुष्य उत्कृष्ट तीन पल्योपम और खेचर युगलिक का आयुष्य पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग होता है। जो कि आगे बताया गया है। वह युगलिक स्थलचर व युगलिक खेचर का समझना चाहिए।

संमुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

गब्भवक्कंतिय पंचिंदिय तिरिक्खजोणिगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहूत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ॥ २३१ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की कही गई है।

जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की, उत्कृष्ट पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहूत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्त, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम पूर्व कोटि की कही गई है।

संमुच्छिम जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व कोटि की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम पूर्व कोटि की कही गई है।

गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्वकोटि की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा॥ २३२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कम पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है ?

उत्तर - हे गौतम! चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तय चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अंतर्मुहूर्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त की उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त कम तीन पल्योपम की कही गई है।

संमुच्छिम चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासी वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट चौरासी हजार वर्षों की कही गई है?

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं चउरासी वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की स्थिति कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौरासी हजार वर्ष की कही गई है।

गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! अपर्याप्तक गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ॥ २३३ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

संमुच्छिम उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तिरेपन हजार वर्ष की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तेवण्णं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तिरेपन हजार (५३०००) वर्ष की कही गई है।

गब्भवक्कंतिय उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक गर्भज उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक गर्भज उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा॥ २३४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक गर्भज उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक गर्भज उरपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

संमुच्छिम भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बयालीस (४२) हजार वर्ष की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम ४२००० वर्ष की कही गई है।

गब्भवक्कंतिय भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी अंतोमुहुत्तूणा॥ २३५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पूर्व कोटि (करोड़ पूर्व) की कही गई है।

खहयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की कही गई है।

सम्मुच्छिम खहयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरी वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट बहत्तर हजार (७२०००) वर्ष की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावत्तरी वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बहत्तर हजार वर्ष की कही गई है।

गब्भवक्कंतिय खहयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं पलिओवमस्स असंखिज्जइभागं अंतोमुहुत्तूणं ॥ २३६ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के असंख्यातवें भाग की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में तिर्यंच पंचेन्द्रिय सामान्य, अपर्याप्तक और पर्याप्तक जीवों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

मनुष्यों की स्थिति

मणुस्साणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तग मणुस्साणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

पज्जत्तग मणुस्साणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक मनुष्यों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की कही गई है।

विवेचन - कर्म भूमि मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति एक करोड़ पूर्व की हो सकती है। यहाँ पर मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति जो तीन पल्योपम की बताई गई है। वह अकर्म भूमि के युगलिक मनुष्य की अपेक्षा समझनी चाहिए। अवसर्पिणी काल के पहले आरे के तथा उत्सर्पिणी काल के छठे आरे सुषम-सुषमा नामक आरे के मनुष्य की तथा देव कुरु, उत्तर कुरु के युगलिक मनुष्य की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की होती है।

सम्मुच्छिम मणुस्साणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज मनुष्यों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा? गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २३७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक गर्भज मनुष्यों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीन पल्योपम की है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्यों की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति का कथन किया गया है।

वाणव्यंतर देवों की स्थिति

वाणमंतराणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता।

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तगवाणमंतराणं देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की है।

वाणमंतरीणं देवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तिगाणं वाणमंतरीणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! अपर्याप्तक वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम ! अपर्याप्तक वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तिगाणं वाणमंतरीणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं॥ २३८॥

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक वाणव्यन्तर देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वाणव्यंतर देवों की और वाणव्यंतर देवियों की स्थिति का निरूपण किया गया है।

ज्योतिषी देवों की स्थिति

जोइसियाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का आठवां भाग उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तग जोइसियाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक ज्योतिषी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक ज्योतिषी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक ज्योतिषी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक ज्योतिषी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की कही गई है।

जोइसिणीणं देवीणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णास वाससहस्समब्भहियं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की है और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपज्जत्तिय जोइसिय देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक ज्योतिषी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक ज्योतिषी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तियजोइसियदेवीणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागो अंतोमुहुत्तूणो, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णास वाससहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक ज्योतिषी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक ज्योतिषी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

चंदविमाणे णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउ भागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससय-सहस्समब्भहियं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चन्द्र विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्र विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की कही गई है।

चंद विमाणे णं भंते! अपज्जत्तयदेवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक चन्द्र विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक चन्द्र विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

चंद विमाणे णं पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक चन्द्र विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक चन्द्र विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की कही गई है।

चंदविमाणे णं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासवाससहस्समब्भहियं।

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! चन्द्र विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्र विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

चंद विमाणे णं भंते! अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक चन्द्र विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक चन्द्र विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

चंद विमाणे णं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पण्णासवाससहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक चन्द्र विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक चन्द्र विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास हजार वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

सूरविमाणे णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूर्य विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सूर्य विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की कही गई है।

सूरविमाणे अपज्जत्तदेवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सूर्य विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सूर्य विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

सूरविमाणे पज्जत्तदेवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सूर्य विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सूर्य विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक हजार वर्ष अधिक एक पल्योपम की कही गई है।

सूरविमाणे णं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिमब्भहियं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सूर्य विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सूर्य विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

सूरविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सूर्य विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सूर्य विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूरविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिमब्भहियं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सूर्य विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सूर्य विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पांच सौ वर्ष अधिक अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

गहविमाणे णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ग्रह विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ग्रह विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट एक पल्योपम की कही गई है।

गहविमाणे अपज्जत्त देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक ग्रह विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक ग्रह विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

गह विमाणे पज्जत्त देवाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की कही गई है।

गहविमाणे णं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं देवाणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गह विमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

गह विमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ग्रह विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ग्रह विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक ग्रह विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक ग्रह विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक ग्रह विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक ग्रह विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध पल्योपम की है।

णक्खत्तविमाणे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नक्षत्र विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नक्षत्र विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

णक्खत्तविमाणे अपज्जत्त देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक नक्षत्र विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक नक्षत्र विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

णक्खत्तविमाणे पज्जत्त देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक नक्षत्र विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक नक्षत्र विमानवासी देवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के चौथे भाग की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अर्द्ध पल्योपम की कही गई है।

णक्खत्तविमाणे णं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं, उक्कोसेणं साइरेगं चउभागपलिओवमं।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नक्षत्र विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नक्षत्र विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम का चतुर्थ भाग और उत्कृष्ट कुछ अधिक पल्योपम का चौथा भाग कही गई है।

णक्खत्तविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न-हे भगवन्! अपर्याप्तक नक्षत्र विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक नक्षत्र विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

णक्खत्तविमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं साइरेगं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक नक्षत्र विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर- हे गौतम! पर्याप्तक नक्षत्र विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चौथा भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक पल्योपम का चौथा भाग कही गई है।

ताराविमाणे णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तारा विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तारा विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम का आठवां भाग और उत्कृष्ट पल्योपम का चौथा भाग कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताराविमाणे अपज्जत्त देवाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक तारा विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक तारा विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

तारा विमाणे पज्जत्त देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागं अंतोमुहुत्तूणं उक्कोसेणं चउभागपलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक तारा विमानवासी देवों की स्थिति कितने काल की कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक तारा विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का आठवाँ भाग और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम का चौथा भाग कही गई है।

ताराविमाणे णं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागं, उक्कोसेणं साइरेगं अट्ठभागपलिओवमं।

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! तारा विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तारा विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक कही गई है।

ताराविमाणे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक तारा विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक तारा विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

तारा विमाणे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमट्ठभागं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं साइरेगं पलिओवमट्ठभागं अंतोमुहुत्तूणं॥ २३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक तारा विमानवासी देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक तारा विमानवासी देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त्त कम पल्योपम के आठवें भाग से कुछ अधिक कही गई है।

विवेचन - उपरोक्त सूत्रों में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा रूप ज्योतिषी देवों की और देवियों (औघिक, अपर्याप्तकों एवं पर्याप्तकों) की स्थिति का वर्णन किया गया है।

वैमानिक देवों की स्थिति

वेमाणियाणं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! वैमानिक देवों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

अपज्जत्त वेमाणियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक वैमानिक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तयाणं वेमाणियाणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक वैमानिक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक वैमानिक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

वेमाणिया णं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! वैमानिक देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की कही गई है।

अपज्जत्तियाणं वेमाणिणीणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक वैमानिक देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पज्जत्तियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २४०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक वैमानिक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक वैमानिक देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की कही गई है।

सोहम्मे णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प में देवों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट दो सागरोपम की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे अपज्जत्त देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सौधर्म देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सौधर्म देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सौधर्म देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सौधर्म देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम की कही गई है।

सोहम्मे णं भंते! कप्पे देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प में देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट पचास पल्योपम की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सौधर्म कल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सौधर्म कल्प में देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सौधर्म कल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सौधर्म कल्प में देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपम की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट सात पल्योपम की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में अपर्याप्तक परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प में अपर्याप्तक परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे परिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा।

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं सत्त पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में पर्याप्तक परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प में पर्याप्तक परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात पल्योपम की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम की और उत्कृष्ट पचास पल्योपम की कही गई है।

सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में अपर्याप्तक अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प में अपर्याप्तक अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोहम्मे कप्पे अपरिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पण्णासं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २४१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में पर्याप्तक अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प में पर्याप्तक अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचास पल्योपम की कही गई है।

ईसाणे णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प (दूसरे देवलोक) में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प (दूसरे देवलोक) में देवों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागरोपम की कही गई है।

ईसाणे कप्पे अपज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

ईसाणे कप्पे पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक दो सागरोपम की कही गई है।

ईसाणे णं भंते! कप्पे देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में देवियों की स्थिति जघन्य एक पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट पचपन पल्योपम की कही गई है।

ईसाणे कप्पे देवीणं अपज्जत्तियाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में अपर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में अपर्याप्तक देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

ईसाणे कप्पे पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में पर्याप्तक देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में पर्याप्तक देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की कही गई है।

ईसाणे णं भंते! कप्पे परिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट नौ पल्योपम की कही गई है।

ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में अपर्याप्तक परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में अपर्याप्तक परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

ईसाणे कप्पे परिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं णव पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में पर्याप्तक परिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में पर्याप्तक परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम नौ पल्योपम की कही गई है।

ईसाणे णं भंते! कप्पे अपरिग्गहियाणं देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम से कुछ अधिक की और उत्कृष्ट ५५ पल्योपम की कही गई है।

ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं अपज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में अपर्याप्तक अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में अपर्याप्तक अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

ईसाणे कप्पे अपरिग्गहियाणं पज्जत्तियाणं देवीणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं पलिओवमं अंतोमुहुत्तूणं, उक्कोसेणं पणपण्णं पलिओवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २४२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प में पर्याप्तक अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में पर्याप्तक अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक पल्योपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पचपन पल्योपम की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रश्न - भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चारों प्रकार के देवों में क्या देवियाँ पाई जाती हैं ?

उत्तर - हाँ, चारों जाति के देवों में देवियाँ पाई जाती हैं। सिर्फ इतनी विशेषता है कि वैमानिक देवों में पहले और दूसरे देवलोक तक ही देवियों की उत्पत्ति होती है। इनसे आगे के देवलोकों में देवियों की उत्पत्ति नहीं होती है।

प्रश्न - देवियाँ कितने प्रकार की होती हैं ?

उत्तर - देवियाँ दो प्रकार की होती हैं। यथा - परिगृहीता और अपरिगृहीता।

प्रश्न - परिगृहीता और अपरिगृहीता की व्याख्या क्या हैं ?

उत्तर - जिस विमान का जो देव मालिक (स्वामी) होता है, उस विमान में उत्पन्न होने वाली देवियाँ उस देव की परिगृहीता देवियाँ कहलाती हैं और वे उसी देव के उपयोग में आती हैं। अपने स्वतंत्र विमान में उत्पन्न होने वाली देवियाँ अपरिगृहीता देवियाँ कहलाती हैं। उनका स्वामी कोई देव नहीं होता, वे स्वतंत्र होती हैं। जैसे कि छप्पन दिशाकुमारियाँ के अपने अपने स्वतंत्र विमान हैं। उनके नाम जम्बूद्वीप पण्णत्ती सूत्र के पांचवें वक्षस्कार में जिन जन्माभिषेक अधिकार में दिए गए हैं। इसी तरह नदी, द्रह, कूट आदि की अधिष्ठात्री देवियों के विषय में भी जानना चाहिए।

प्रश्न - क्या परिगृहीता और अपरिगृहीता देवियों की स्थिति एक सरीखी होती है ?

उत्तर - भवनपति, वाणव्यंतर और ज्योतिषी देवों में उनकी परिगृहीता और अपरिगृहीता देवियों की स्थिति प्रायः एक सरीखी होती है अथवा परिगृहीता देवियों की अपेक्षा अपरिगृहीता देवियों की स्थिति कुछ कम होती है। परन्तु वैमानिकों में फर्क है क्योंकि पहले सौधर्म देवलोक में परिगृहीता देवियों की स्थिति उत्कृष्ट सात पल्योपम की है और अपरिगृहीता देवियों की स्थिति पचास पल्योपम की है। इसी प्रकार दूसरे ईशान देवलोक में परिगृहीता देवियों की उत्कृष्ट नौ पल्योपम की स्थिति है जबकि अपरिगृहीता देवियों की उत्कृष्ट स्थिति पचपन पल्योपम की है।

प्रश्न - इन्द्रादिक देवों के उपभोग में कौनसी देवियाँ उपयोग में आती है ?

उत्तर - पहले देवलोक में जो अपरिगृहीता देवियाँ रहती है, उनमें से एक पल्योपम की स्थिति वाली देवियाँ पहले देवलोक के इन्द्रादि देवों के उपयोग में आती हैं। एक पल से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर दस पल तक की स्थिति वाली देवियाँ तीसरे देवलोक के इन्द्रादिक देवों के उपयोग में आती हैं। दस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर बीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ पांचवें देवलोक के उपयोग में आती हैं। बीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति लेकर तीस पल्योपम की स्थिति वाली देवियाँ सातवें देवलोक के देवों के काम आती हैं। तीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर चालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ नववें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवलोक के देवों के उपयोग में आती हैं। चालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचास पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ ग्यारहवें देवलोक के देवों के उपयोग में आती हैं।

जो अपरिगृहीता देवियाँ दूसरे ईशान देवलोक में रहती हैं, उनमें से एक पल्योपम झाझेरे (अधिक) तक की स्थिति वाली देवियाँ दूसरे देवलोक के इन्द्रादि देवों के उपयोग में आती हैं। एक पल्योपम झाझेरी से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पन्द्रह पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ चौथे देवलोक के देवों के उपयोग में आती हैं। पन्द्रह पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पच्चीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ छठे देवलोक के देवों के उपयोग में आती हैं। पच्चीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैतीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ आठवें देवलोक के देवों के उपयोग में आती हैं। पैतीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पैतालीस पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ दसवें देवलोक के देवों के उपयोग में आती हैं। पैतालीस पल्योपम से एक समय अधिक की स्थिति से लेकर पचपन पल्योपम तक की स्थिति वाली देवियाँ बारहवें देवलोक के देवों के उपयोग में आती हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! देवलोकों में किस प्रकार की परिचारणा (विषय सेवन) होती है?

उत्तर - हे गौतम! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में मनुष्य की तरह शरीर (काया) की परिचारणा होती है। तीसरे चौथे देवलोक में स्पर्श की, पांचवें छठे देवलोक में रूप की, सातवें आठवें देवलोक में शब्द की और नववें, दसवें, ग्यारहवें और बारहवें देवलोक में मन की परिचारणा होती है। इससे आगे नव ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान में किसी भी प्रकार की परिचारणा नहीं होती है।

प्रश्न - देवियों की ऊपर जाने की शक्ति कहाँ तक की है?

उत्तर - जिस प्रकार देवियों की उत्पत्ति दूसरे देवलोक तक होती है उसी प्रकार उनकी स्वयं की शक्ति दूसरे देवलोक से ऊपर जाने की नहीं है किन्तु देव की सहायता से अपरिगृहीता देवियाँ ऊपर जा सकती हैं। जिनमें काय परिचारणा है वे देवियाँ तो पहले दूसरे देवलोक में ही रहती हैं ऊपर नहीं जाती हैं किन्तु जिन में स्पर्श परिचारणा है वे पहले देवलोक की अपरिगृहीता देवियाँ तीसरे देवलोक में, जिनमें रूप परिचारणा है वे पांचवें देवलोक में और जिनमें शब्द परिचारणा है वे सातवें देवलोक में देव की सहायता से जाती हैं। इसी प्रकार दूसरे देवलोक की स्पर्श परिचारणा वाली देवियाँ देव की सहायता से चौथे देवलोक में, रूप परिचारणा वाली छट्ठे देवलोक में शब्द परिचारणा वाली आठवें देवलोक में जाती हैं जिन देवियों में मन परिचारणा हैं वे अपने स्थान पर ही रहती हैं ऊपर नहीं जाती हैं किन्तु नववें और ग्यारहवें देवलोक के देव प्रथम देवलोक की अपरिगृहीता देवियों के साथ मन से परिचारणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर लेते हैं। दसवें और बारहवें देवलोक के देव दूसरे देवलोक की अपरिगृहीता देवियों के साथ मन से परिचारणा कर लेते हैं।

सणंकुमारे णं भंते ! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सनत्कुमार कल्प (तीसरा देवलोक) में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सनत्कुमार कल्प (तीसरा देवलोक) में देवों की स्थिति जघन्य दो सागरोपम की और उत्कृष्ट सात सागरोपम की कही गई है।

सणंकुमारे कप्पे अपज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सनत्कुमार कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सनत्कुमार कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

सणंकुमारे कप्पे पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सनत्कुमार कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सनत्कुमार कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दो सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की कही गई है।

विवेचन - प्रश्न - यहाँ देवियों की स्थिति के विषय में प्रश्न क्यों नहीं किया गया है?

उत्तर - भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म (पहला देवलोक) तथा ईशान कल्प (दूसरा देवलोक) तक देवियों की उत्पत्ति होती है। इससे आगे अर्थात् तीसरे देवलोक से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक देवियों की उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिए यहाँ (तीसरे देवलोक में) और इससे आगे के देवलोकों में कही पर भी देवियों के विषय में प्रश्न नहीं किया गया है।

माहिंदे णं भंते ! कप्पे देवाणं केवइयं काल ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगाइं दो सागरोवमाइं, उक्कोसेणं साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! माहेन्द्र कल्प (चौथा देवलोक) में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! माहेन्द्र कल्प में देवों की स्थिति जघन्य कुछ अधिक दो सागरोपम की और उत्कृष्ट कुछ अधिक सात सागरोपम की कही गई है।

माहिंदे अपज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! माहेन्द्र कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! माहेन्द्र कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

माहिंदे पज्जत्तयाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं दो सागरोवमाइं साइरेगाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं साइरेगाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! माहेन्द्र कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! माहेन्द्र कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम कुछ अधिक दो सागरोपम की और उत्कृष्ट कुछ अधिक सात सागरोपम की कही गई है।

बंभलोए णं भंते! कप्पे देवाणं केवइय काल ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ब्रह्मलोक कल्प (पांचवां देवलोक) में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ब्रह्मलोक कल्प (पांचवां देवलोक) में देवों की स्थिति जघन्य सात सागरोपम की और उत्कृष्ट दस सागरोपम की कही गई है।

बंभलोए अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ब्रह्मलोक कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! ब्रह्मलोक कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

बंभलोए पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ब्रह्मलोक कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! ब्रह्मलोक कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सात सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की की गई है।

लंतए णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लान्तक कल्प (छठा देवलोक) में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! लान्तक कल्प (छठा देवलोक) में देवों की स्थिति जघन्य दस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौदह सागरोपम की कही गई है।

लंतए अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लान्तक कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! लान्तक कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

लंतए पज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लान्तक कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! लान्तक कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम दस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महासुक्के णं भंते! कप्पे देवाणं केवइय कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउद्दस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! महाशुक्र कल्प (सातवां देवलोक) में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य चौदह सागरोपम की और उत्कृष्ट सतरह सागरोपम की कही गई है।

महासुक्के अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! महाशुक्र कल्प में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

महासुक्के पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं चउद्दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! महाशुक्र कल्प में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौदह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सतरह सागरोपम की कही गई है।

सहस्सारे णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सहस्रार कल्प (आठवां देवलोक) के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सहस्रार कल्प (आठवां देवलोक) के देवों की स्थिति जघन्य सतरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अठारह सागरोपम की कही गई है।

सहस्सारे अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सहस्रार कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सहस्रार कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

सहस्सारे पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सहस्रार कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सहस्रार कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सतरह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की कही गई है।

आणए णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आनत कल्प (नववां देवलोक) के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! आनत कल्प (नववां देवलोक) के देवों की स्थिति जघन्य अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट उन्नीस सागरोपम की कही गई है।

आणए अपज्जत्तगाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आनत कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! आनत कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

आणए पज्जत्तगाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आनत कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! आनत कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अठारह सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाणए णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणत कल्प (दसवाँ देवलोक) के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्राणत कल्प (दसवाँ देवलोक) के देवों की स्थिति जघन्य उन्नीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बीस सागरोपम की कही गई है।

पाणए अपज्जत्तगाणं देवाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणत कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्राणत कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

पाणए पज्जत्तगाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणत कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! प्राणत कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उन्नीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बीस सागरोपम की कही गई है।

आरणे णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आरण कल्प (ग्यारहवां देवलोक) के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! आरण कल्प (ग्यारहवां देवलोक) के देवों की स्थिति जघन्य बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इक्कीस सागरोपम की कही गई है।

आरणे अपज्जत्तगाणं देवाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आरण कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! आरण कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

आरणे पज्जत्तगाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आरण कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! आरण कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की कही गई है।

अच्चुए णं भंते! कप्पे देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अच्युत कल्प (बारहवाँ देवलोक) के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अच्युत कल्प (बारहवाँ देवलोक) के देवों की स्थिति जघन्य इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की कही गई है।

अच्चुए अपज्जत्तगाणं देवाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अच्युत कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अच्युत कल्प के अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

अच्चुए पज्जत्तगाणं देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २४३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अच्युत कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अच्युत कल्प के पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम इक्कीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की कही गई है।

विवेचन - प्रश्न - बारह देवलोक किस प्रकार स्थित हैं?

उत्तर - पहला और दूसरा देवलोक दोनों बराबरी में स्थित हैं और प्रत्येक अर्द्ध चन्द्राकार है। दोनों मिलकर पूर्ण चन्द्र के आकार बन जाते हैं। इन दोनों के नीचे तेरह प्रस्तट (प्रतर, पाथडा) हैं। पहले देवलोक के ऊपर तीसरा देवलोक है और दूसरे के ऊपर चौथा देवलोक है। ये प्रत्येक अर्द्ध चन्द्राकार हैं दोनों मिलकर पूर्ण चन्द्राकार बनते हैं। ये दोनों समान बराबरी में आये हुए हैं। इनके नीचे बारह प्रस्तट (प्रतर/पाथड़ा) आए हुए हैं। इनके ऊपर पाँचवां, छठा, सातवां और आठवाँ ये चार देवलोक एक घड़े के ऊपर दूसरे घड़े की तरह पूर्ण कलशाकार आए हुए हैं। पांचवें देवलोक के नीचे छह प्रस्तट हैं। छठे के नीचे पांच प्रस्तट हैं। सातवें के नीचे चार तथा आठवें के नीचे भी चार प्रस्तट हैं। इनके ऊपर नौवा और दसवां देवलोक समानाकार और दोनों मिलकर पूर्ण चन्द्राकार आए हुए हैं। इन दोनों के नीचे चार प्रस्तट हैं। नववें के ऊपर ग्यारहवाँ और दसवें के ऊपर बारहवां देवलोक आए हुए हैं। ये दोनों भी समानाकार और दोनों मिलकर पूर्ण चन्द्राकार रूप से आए हुए हैं। इनके नीचे चार प्रस्तट हैं। बारहवें देवलोक के ऊपर एक घड़े के ऊपर दूसरे घड़े की तरह नव ग्रैवेयक आए हुए हैं। इन नौ के नीचे नौ प्रस्तट हैं। ग्रैवेयकों के नाम इस प्रकार हैं - १. भद्र २. सुभद्र ३. सुजात ४. सुमनस ५. सुदर्शन ६. प्रियदर्शन ७. आमोह ८. सुप्रतिबद्ध ९. यशोधर।

इनके ऊपर पांच अनुत्तर विमान आए हुए हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं - १. विजय २. वैजयन्त ३. जयन्त ४. अपराजित ५. सर्वार्थसिद्ध। चार दिशाओं में चार अनुत्तर विमान हैं और बीच में सर्वार्थसिद्ध विमान आया हुआ है। इन पांचों के नीचे एक प्रस्तट हैं। इस प्रकार वैमानिक देवों के कुल ६२ प्रस्तट हैं।

हेट्ठिम हेट्ठिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-अधस्तन (नीचे की त्रिक के नीचे का अर्थात् भद्र नामक) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-अधस्तन (नीचे की त्रिक के नीचे का अर्थात् भद्र नामक) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेईस सागरोपम की कही गई है।

हेट्ठिम हेट्ठिम अपज्जत्त देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

हेट्ठिम हेट्ठिम पज्जत्त देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक के पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम बाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की है।

हेट्ठिम मज्झिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-मध्यम (नीचे की त्रिक के मध्यम अर्थात् सुभद्र नामक) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-मध्यम (नीचे की त्रिक के मध्यम अर्थात् सुभद्र नामक) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य तेईस सागरोपम की और उत्कृष्ट चौवीस सागरोपम की कही गई है।

हेट्ठिम मज्झिम अपज्जत्तय देवाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक के अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक के अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

हेट्ठिम मज्झिम गेविज्ज देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक के पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम तेईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम चौबीस सागरोपम की कही गई है।

विवेचन - ग्रैवेयक देवों के नौ भेद हैं। उनके तीन विभाग हो जाते हैं। जिनको तीन त्रिक कहते हैं यथा - १. अधस्तनत्रिक २. मध्यम त्रिक ३. उपरितन त्रिक। अधस्तन त्रिक के तीन विभाग हैं इसी तरह मध्यम त्रिक और उपरितन त्रिक के भी तीन-तीन विभाग होते हैं। अधस्तन त्रिक के १११ विमान हैं, मध्यम त्रिक के १०७ विमान हैं और उपरितन त्रिक के १०० विमान हैं। इस प्रकार नव ग्रैवेयक के कुल ३१८ विमान होते हैं।

हेट्ठिम उवरिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-उपरितन (सबसे नीचे की त्रिक के उपरिम अर्थात् सुजात नामक) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-उपरितन (सबसे नीचे की त्रिक के उपरिम अर्थात् सुजात नामक) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य चौबीस सागरोपम की और उत्कृष्ट पच्चीस सागरोपम की कही गई है।

हेट्ठिम उवरिम गेविज्जग देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

हेट्ठिम उवरिम गेविज्जग देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम चौबीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की कही गई है।

मज्झिम हेट्ठिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-अधस्तन (मध्य के त्रिक के सबसे नीचे के अर्थात् समनस नामक) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-अधस्तन (मध्य के त्रिक के सबसे नीचे के अर्थात् समनस नामक) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट छब्बीस सागरोपम की कही गई है।

मज्झिम हेट्ठिम गेविज्जग देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

मज्झिम हेट्ठिम गेवेज्जग देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम पच्चीस सागरोपम की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त कम छब्बीस सागरोपम की कही गई है।

मज्झिम मज्झिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-मध्यम (मध्य की त्रिक के मध्य अर्थात् सुदर्शन) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-मध्यम (मध्य की त्रिक के मध्य अर्थात् सुदर्शन) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य छब्बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट सत्ताईस सागरोपम की कही गई है।

मज्झिम मज्झिम गेवेज्जग देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

मज्झिम मज्झिम गेवेज्जग देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम छब्बीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की कही गई है।

मज्झिम उवरिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-उपरितन (मध्य की त्रिक के ऊपर के अर्थात् प्रियदर्शन) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-उपरितन (मध्य की त्रिक के ऊपर के अर्थात् प्रियदर्शन) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य सत्ताईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अट्ठाईस सागरोपम की कही गई है।

मज्झिम उवरिम गेविज्जग देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट अन्तर्मूहूर्त्त की कही गई है।

मज्झिम उवरिम गेविज्जग देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम सत्ताईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवरिम हेट्ठिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-अधस्तन (ऊपर की त्रिक के नीचे के अर्थात् आमोह) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-अधस्तन (ऊपर की त्रिक के नीचे के अर्थात् आमोह) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य अट्ठाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट उनतीस सागरोपम की कही गई है।

उवरिम हेट्ठिम गेवेज्जग देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

उवरिम हेट्ठिम गेवेज्जग देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-अधस्तन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम अट्ठाईस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की कही गई है।

उवरिममज्झिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-मध्यम (ऊपर की त्रिक के मध्यम अर्थात् सुप्रतिबद्ध) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-मध्यम (ऊपर की त्रिक के मध्यम अर्थात् सुप्रतिबद्ध) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य उनतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट तीस सागरोपम की कही गई है।

उवरिम मज्झिम गेवेज्जग देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

उवरिम मज्झिम गेवेज्जग देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त कम उनतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तीस सागरोपम की कही गई है।

उवरिम उवरिम गेविज्जगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-उपरितन (ऊपर की त्रिक के ऊपर वाले अर्थात् यशोधर) ग्रैवेयक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-उपरितन (ऊपर की त्रिक के ऊपर वाले अर्थात् यशोधर) ग्रैवेयक देवों की स्थिति जघन्य तीस सागरोपम की और उत्कृष्ट इकतीस सागरोपम की कही गई है।

उवरिम उवरिम गेवेज्जग देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

उवरिम उवरिम गेवेज्जग देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं॥ २४४॥

प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक पर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त कम तीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागरोपम की कही गई है।

विजय वेजयंत जयंत अपराजिएसु णं भंते! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में देवों की स्थिति जघन्य इकतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की कही गई है।

विजय वेजयंत जयंत अपराजिय देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प्रश्न - हे भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त की कही गई है।

विजय वेजयंत जयंत अपराजिय देवाणं पज्जत्तगाणं पुच्छा?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं।

प्रश्न - हे भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित विमानों में पर्याप्तक देवों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम इकतीस सागरोपम की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

सव्वट्ठसिद्धगाणं देवाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट (जघन्य उत्कृष्ट के भेद से रहित) तेतीस सागरोपम की कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वट्ठसिद्धगाणं देवाणं अपज्जत्तगाणं पुच्छा ?

गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं।

प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध विमान के अपर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सर्वार्थसिद्ध विमान के अपर्याप्तक देवों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त्त की कही गई है।

सव्वट्ठसिद्धगाणं देवाणं भंते! पज्जत्तगाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं ठिई पण्णत्ता ॥ २४५॥

प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध विमान के पर्याप्तक देवों की स्थिति कितने काल की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! सर्वार्थसिद्ध विमान के पर्याप्तक देवों की स्थिति अजघन्य-अनुत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त कम तेतीस सागरोपम की कही गई है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में वैमानिक देवों (औघिक, अपर्याप्तक और पर्याप्तक) की स्थिति कही गयी है।

उपर्युक्त वर्णन में एकेन्द्रिय-पंचेन्द्रिय आदि रूप पृच्छाएं नहीं करने का कारण इस प्रकार संभव है- यहाँ पर दण्डक के क्रम से पृच्छाएं की गई है। एकेन्द्रिय पंचेन्द्रिय की पृच्छा करने से वह जाति रूप पृच्छा हो जाती है उसकी यहाँ विवक्षा नहीं लगती है। समुच्चय देव, समुच्चय भवनपति, समुच्चय नरक, समुच्चय तिर्यंच पंचेन्द्रिय आदि की पृच्छाएं भी जाति रूप पृच्छाएं नहीं है। बेइन्द्रिय आदि में समुच्चय बेइन्द्रिय की पृच्छा होने पर भी वह दण्डक रूप पृच्छा ही समझना चाहिए क्योंकि बेइन्द्रिय आदि का दण्डक भी एक एक तथा जाति भी एक-एक है। इस कारण से इन पृच्छाओं में जाति रूप होने की भ्रांति हो सकती है परन्तु इन्हें दण्डक की पृच्छाएं ही समझना चाहिये। इस स्थिति पद में सब मिलाकर ३४६ पृच्छाएं (आलापक) कही गई है।

।। पण्णवणाए भगवईए चउत्थं ठिइपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना सूत्र का चौथा स्थिति पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचमं विसेसपयं

पांचवां विशेष (पर्याय) पद

उत्क्षेप (उत्थानिका) - इस पांचवें पद के दो नाम दिये गए हैं "विशेषपद" और "पर्यायपद"। यहाँ विशेषपद के दो अर्थ फलित होते हैं - १. जीवादि द्रव्यों के विशेष अर्थात् प्रकार तथा २. जीवादि द्रव्यों के विशेष अर्थात् पर्याय। इस प्रकार विशेष शब्द के दो अर्थ हुए 'प्रकार' और 'पर्याय'।

प्रथम पद में जीव, अजीव इन दो द्रव्यों के प्रकार भेद-प्रभेद सहित बताए गए हैं। उसकी यहाँ भी संक्षेप में पुनरावृत्ति की गई है। वह इसलिए कि प्रस्तुत पद में इस बात को स्पष्ट करना है कि जीव और अजीव जो प्रकार हैं, उनमें से प्रत्येक के अनन्त पर्याय हैं। यदि प्रत्येक के अनन्त पर्याय हों तो सब जीवों के और सब अजीवों के अनन्त पर्याय हों तो इसमें कहना ही क्या?

इस पद का नाम 'विशेष पद' रखा गया है। परन्तु इस पद के किसी भी सूत्र में और कहीं भी विशेष पद का प्रयोग नहीं किया गया है। किन्तु सारे पद में 'पर्याय' शब्द का प्रयोग किया गया है। जैन शास्त्रों में भी पर्याय शब्द को ही अधिक महत्त्व दिया गया है। इससे यह बात सूचित होती है कि, पर्याय या विशेष में कोई अन्तर नहीं है। जो नाना प्रकार के जीव या अजीव दिखाई देते हैं। वे सब द्रव्य के ही पर्याय हैं। फिर भले ही वे सामान्य के विशेष रूप (प्रकार रूप) हों या द्रव्य विशेष के पर्याय रूप हों। जीव के जो नारक आदि भेद बताये गए हैं। वे सभी प्रकार उस जीव द्रव्य के पर्याय हैं क्योंकि अनादिकाल से जीव अनेकबार उस-उस रूप में उत्पन्न हो चुका है। जैसे किसी एक जीव के वे पर्याय हैं, वैसे समस्त जीवों की योग्यता समान होने से उन सब ने नरक, तिर्यंच आदि रूप में जन्म लिया ही है। इस तरह जिसे पर्याय या भेद अथवा विशेष कहा जाता है। वह प्रत्येक जीव द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय ही है। वह जीव की एक विशेष अवस्था (पर्याय) या परिणाम ही है।

इस पंचम पद में जीव व अजीव द्रव्यों के भेद व पर्यायों का निरूपण किया गया है। यद्यपि जीव और अजीव के भेदों के विषय में तो प्रथम पद में निरूपण था ही किन्तु इन प्रत्येक भेदों में जो अनन्त पर्याय हैं उनका प्रतिपादन करना इस पंचम पद की विशेषता है। प्रथम पद में भेद बताये गये हैं और तीसरे पद में उनकी संख्या बताई गई है किन्तु तीसरे पद में संख्या गत तारतम्य का निरूपण मुख्य होने से इस विशेष की कितनी संख्या है, यह बताना बाकी था। अतः प्रस्तुत पद में उन-उन भेदों की तथा उनके पर्यायों की संख्या भी बतादी गई है। सभी द्रव्यों की पर्याय संख्या तो अनन्त हैं किन्तु भेदों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संख्या में कितने ही संख्यात हैं और कितने ही असंख्यात हैं तो कितने ही (वनस्पतिकायिक जीव और सिद्ध जीव) अनन्त भी हैं।

यह इस पंचम पद का संक्षिप्त विषय वर्णन बताया गया है।

चौथे पद में नैरयिक आदि पर्याय रूप में जीवों की स्थिति कही गई है और इस पांचवें पद में उनके औदयिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव की अपेक्षा पर्यायों की संख्या बताई गई है। उसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

पर्याय के भेद

कइविहा णं भंते! पज्जवा पण्णत्ता? गोयमा! दुविहा पज्जवा पण्णत्ता। तंजहा - जीव पज्जवा य अजीव पज्जवा य॥ २४६॥

कठिन शब्दार्थ - पज्जवा - पर्यव या पर्याय।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याय कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पर्याय दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. जीव पर्याय और २. अजीव पर्याय।

विवेचन - जीव और अजीव दोनों द्रव्य हैं। द्रव्य का लक्षण बताते हुए कहा है - '**गुणपर्यायवद् द्रव्यम्**' (तत्त्वार्थ सूत्र अ. ५ सूत्र ३१) गुण और पर्याय वाला द्रव्य कहलाता है। पर्याय दो तरह की है- १. जीव पर्याय और २. अजीव पर्याय। इसीलिए इस पद में जीव पर्याय और अजीव पर्याय का निरूपण किया गया है। पर्याय, पर्यव, गुण, विशेष और धर्म ये पर्यायवाची (समानार्थक) शब्द है।

जीव पर्याय

जीव पज्जवा णं भंते! किं संखिज्जा, असंखिज्जा, अणंता?

गोयमा! णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव पर्याय क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं या अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव पर्याय न तो संख्यात हैं और न असंख्यात है किन्तु अनन्त हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जीव पज्जवा णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता?'

गोयमा! असंखिज्जा णेरइया, असंखिज्जा असुरकुमारा, असंखिज्जा णागकुमारा, असंखिज्जा सुवण्णकुमारा, असंखिज्जा विज्जुकुमारा, असंखिज्जा अगणिकुमारा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंखिज्जा दीवकुमारा, असंखिज्जा उदहिकुमारा, असंखिज्जा दिसीकुमारा, असंखिज्जा वाउकुमारा, असंखिज्जा थणियकुमारा, असंखिज्जा पुढविकाइया, असंखिज्जा आउकाइया, असंखिज्जा तेउकाइया, असंखिज्जा वाउकाइया, अणंता वणस्सइकाइया, असंखिज्जा बेइंदिया, असंखिज्जा तेइंदिया, असंखिज्जा चउरिंदिया, असंखिज्जा पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया, असंखिज्जा मणुस्सा, असंखिज्जा वाणमंतरा, असंखिज्जा जोइसिया, असंखिज्जा वेमाणिया, अणंता सिद्धा, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-ते णं णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता॥ २४७॥

कठिन शब्दार्थ - केणट्ठेणं - किस कारण से।

प्रश्न - हे भगवन्! यह किस कारण से कहा जाता है कि जीव पर्याय न संख्यात हैं, न असंख्यात हैं किन्तु अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! असंख्यात नैरयिक, असंख्यात असुरकुमार, असंख्यात नागकुमार, असंख्यात सुवर्णकुमार, असंख्यात विद्युतकुमार, असंख्यात अग्निकुमार, असंख्यात द्वीपकुमार, असंख्यात उदधिकुमार, असंख्यात दिक्कुमार (दिशाकुमार), असंख्यात वायुकुमार (पवनकुमार), असंख्यात स्तनितकुमार, असंख्यात पृथ्वीकायिक, असंख्यात अप्कायिक, असंख्यात तेजस्कायिक, असंख्यात वायुकायिक, अनंत वनस्पतिकायिक, असंख्यात बेइन्द्रिय, असंख्यात तेइन्द्रिय, असंख्यात चउरिन्द्रिय, असंख्यात पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, असंख्यात मनुष्य, असंख्यात व्यन्तर, असंख्यात ज्योतिषी, असंख्यात वैमानिक और अनंत सिद्ध हैं। इस कारण से हे गौतम! इस प्रकार कहा जाता है कि जीव पर्याय संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं किन्तु अनन्त हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जीव पर्याय का परिमाण बताया गया है। जीव पर्याय संख्यात असंख्यात न हो कर अनन्त हैं क्योंकि तेईस दण्डक के जीव असंख्यात हैं, वनस्पति के जीव अनन्त हैं और सिद्ध भगवान् अनन्त हैं।

नैरयिकों के पर्याय

णेरइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के अनंत पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वच्चइ-'णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णेरइए णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्जइ भागहीणे वा संखिज्जइ भागहीणे वा संखिज्ज गुणहीणे वा असंखिज्ज गुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखिज्जइ भागमब्भहिए वा संखिज्जइ भागमब्भहिए वा, संखिज्ज गुणमब्भहिए वा, असंखिज्ज गुणमब्भहिए वा। ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्जइ भागहीणे वा, संखिज्जइ भागहीणे वा, संखिज्ज गुणहीणे वा असंखिज्ज गुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखिज्ज भागमब्भहिए वा, संखिज्ज भागमब्भहिए वा, संखिज्ज गुणमब्भहिए वा, असंखिज्ज गुणमब्भहिए वा।

कठिन शब्दार्थ - दव्वट्ठयाए - द्रव्यार्थ - द्रव्य की अपेक्षा, **पएसट्ठयाए** - प्रदेशार्थ-प्रदेशों की अपेक्षा, **तुल्ले** - तुल्य, **ओगाहणट्ठयाए** - अवगाहना की अपेक्षा, **सिय** - स्यात्-कदाचित्, **हीणे** - हीन, **अब्भहिए** - अब्यधिक (अधिक), **असंखिज्जइ भागहीणे** - असंख्यात भाग हीन, **संखिज्जइ भागहीणे** - संख्यात भाग हीन, **संखिज्ज गुणहीणे** - संख्यात गुण हीन, **असंखिज्ज गुणहीणे** - असंख्यात गुण हीन, **असंखिज्जइ भागमब्भहिए** - असंख्यात भाग अधिक, **संखिज्जगुण मब्भहिए** - संख्यात गुण अधिक, **अणंत गुणहीणे** - अनन्त गुण हीन, **अणंतभागमब्भहिए** - अनन्त भाग अधिक, **अणंत गुणमब्भहिए**- अनन्त गुण अधिक, **छट्ठाणवडिए** - षट् स्थान पतित।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि नैरयिकों के पर्याय अनंत हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है किन्तु अवगाहना की अपेक्षा कथंचित् (स्यात्) हीन, कथंचित् तुल्य और कथंचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यात भाग हीन है, संख्यात भाग हीन है, संख्यात गुण हीन है या असंख्यात गुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है, संख्यात भाग अधिक है, संख्यात गुण अधिक है या असंख्यात गुण अधिक है।

स्थिति की अपेक्षा से (एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यात भाग हीन या संख्यातभाग हीन है अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन है। अगर अधिक है तो असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक है, अथवा संख्यातगुण अधिक या असंख्यातगुण अधिक है।

कालवण्णपज्जवेहिं सिय हीणे सिय तुल्ले सिय मब्भहिए। जइ हीणे अणंत भागहीणे वा, असंखिज्ज भागहीणे वा संखिज्ज भागहीणे वा, संखिज्ज गुणहीणे वा, असंखिज्ज गुणहीणे वा, अणंतगुणहीणे वा। अह अब्भहिए अणंतभागमब्भहिए वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंखिज्ज भागमब्भहिए वा, संखिज्ज भागमब्भहिए वा, संखिज्ज गुणमब्भहिए वा, असंखिज्ज गुणमब्भहिए वा, अणंतगुणमब्भहिए वा।

कृष्णवर्ण (काला वर्ण) पर्यायों की अपेक्षा से (एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से) कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है, तो अनन्त भाग हीन, असंख्यात भाग हीन या संख्यात भाग हीन होता है, अथवा संख्यातगुण हीन, असंख्यातगुण हीन या अनन्तगुण हीन होता है। यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक, असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक होता है, अथवा संख्यातगुण अधिक, असंख्यातगुण अधिक या अनन्तगुण अधिक होता है।

णीलवण्ण पज्जवेहिं, लोहियवण्ण पज्जवेहिं, हालिद्दवण्ण पज्जवेहिं, सुक्किल्लवण्ण पज्जवेहिं, छट्ठाणवडिए, सुब्भिगंध पज्जवेहिं, दुब्भिगंध पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए। तित्तरस पज्जवेहिं, कडुयरस पज्जवेहिं, कसायरस पज्जवेहिं, अंबिलरस पज्जवेहिं, महुररस पज्जवेहिं, छट्ठाणवडिए।

नीलवर्ण पर्यायों, रक्तवर्ण (लाल) पर्यायों, हारिद्रवर्ण (पीतवर्ण-पीला वर्ण) पर्यायों और शुक्लवर्ण (सफेद) पर्यायों की अपेक्षा से (एक नैरयिक, दूसरे नैरयिक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। सुगन्ध पर्यायों और दुर्गन्ध पर्यायों की अपेक्षा से (एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक है। तिक्त (तीखा) रस पर्यायों, कटु (कड़वा) रस पर्यायों, काषाय (कषैला) रस पर्यायों, आम्ल (खट्टा) रस पर्यायों तथा मधुर (मीठा) रस पर्यायों की अपेक्षा से (एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है।

कक्खडफास पज्जवेहिं, मउयफास पज्जवेहिं, गरुयफास पज्जवेहिं, लहुयफास पज्जवेहिं, सीयफास पज्जवेहिं, उसिणफास पज्जवेहिं, णिद्धफास पज्जवेहिं, लुक्खफास पज्जवेहिं, छट्ठाणवडिए।

कर्कश (कठोर) स्पर्श-पर्यायों, मृदु (कोमल) स्पर्श पर्यायों, गुरु (भारी) स्पर्श पर्यायों, लघु (हलका) स्पर्श पर्यायों, शीत (ठण्डा) स्पर्श पर्यायों, उष्ण (गरम) स्पर्श पर्यायों, स्निग्ध (चिकना) स्पर्श पर्यायों तथा रूक्ष (रूखा) स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा से (एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है।

आभिणिबोहियणाण पज्जवेहिं, सुयणाण पज्जवेहिं, ओहिणाण पज्जवेहिं, मइअण्णाण पज्जवेहिं, सुयअण्णाण पज्जवेहिं, विभंगणाण पज्जवेहिं, चक्खुदंसण पज्जवेहिं, अचक्खुदंसण पज्जवेहिं, ओहिदंसण पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! एवं वुच्चइ-'णेरइयाणं णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता पज्जवा पण्णत्ता'॥ २४८॥

इसी प्रकार आभिनिबोधिकज्ञान पर्यायों, श्रुतज्ञान पर्यायों, अवधिज्ञान पर्यायों, मति-अज्ञान पर्यायों, श्रुत-अज्ञान पर्यायों, विभंगज्ञान (अवधि अज्ञान) पर्यायों, चक्षुदर्शन पर्यायों, अचक्षुदर्शन पर्यायों तथा अवधिदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से (एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से) षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है।

हे गौतम! इस हेतु से ऐसा कहा जाता है, कि 'नैरयिकों के पर्याय संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त कहे गये हैं।'

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अवगाहना, स्थिति, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श एवं क्षायोपशमिक भाव रूप ज्ञानादि के पर्यायों की अपेक्षा से हीनाधिकता का प्रतिपादन करके नैरयिकों के अनन्त पर्यायों को सिद्ध किया गया है।

द्रव्य की अपेक्षा से नैरयिकों में तुल्यता - प्रत्येक नैरयिक दूसरे नैरयिक से द्रव्य की दृष्टि से तुल्य है, अर्थात्-प्रत्येक नैरयिक एक-एक जीव-द्रव्य है। द्रव्य की दृष्टि से उनमें कोई भेद नहीं है। इस कथन के द्वारा यह भी सूचित किया है कि प्रत्येक नैरयिक अपने आप में परिपूर्ण एवं स्वतंत्र जीव द्रव्य है। यद्यपि कोई भी द्रव्य, पर्यायों से सर्वथा रहित कदापि नहीं हो सकता, तथापि पर्यायों की विवक्षा न करके केवल शुद्ध द्रव्य की विवक्षा की जाए तो एक नैरयिक से दूसरे नैरयिक में कोई विशेषता नहीं है।

प्रदेशों की अपेक्षा से नैरयिकों में तुल्यता - प्रदेशों की अपेक्षा से भी सभी नैरयिक परस्पर तुल्य हैं, क्योंकि प्रत्येक नैरयिक जीव लोकाकाश के बराबर असंख्यातप्रदेशी होता है। किसी भी नैरयिक के जीव प्रदेशों में किञ्चित् भी न्यूनाधिकता नहीं है।

अवगाहना की अपेक्षा से नैरयिकों में हीनाधिकता - अवगाहना का अर्थ सामान्यतया आकाशप्रदेशों को अवगाहन करना-उनमें समाना (समावेश) होता है। यहाँ उसका अर्थ है - शरीर की ऊँचाई। अवगाहना (शरीर की ऊँचाई) की अपेक्षा से सब नैरयिक तुल्य नहीं हैं। जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के नैरयिकों के वैक्रियशरीर की जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट सात धनुष, तीन हाथ और छह अंगुल (७।॥ धनुष ६ अंगुल) की है। आगे-आगे की नरक पृथ्वियों में उत्तरोत्तर दुगुनी-दुगुनी अवगाहना होती है। सातवीं नरकपृथ्वी में अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की है। इस दृष्टि से किसी नैरयिक से किसी नैरयिक की अवगाहना हीन है, किसी की अधिक है, जबकि किसी की तुल्य भी है। यदि कोई नैरयिक अवगाहना से हीन (न्यून) होगा तो वह असंख्यात भाग या संख्यात भाग हीन होगा, अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन होगा, किन्तु यदि कोई नैरयिक अवगाहना में अधिक होगा तो असंख्यात भाग या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संख्यातभाग अधिक होगा, अथवा संख्यातगुण अधिक या असंख्यातगुण अधिक होगा। यह हीनाधिकता चतु:स्थानपतित कहलाती है।

अवगाहना की अपेक्षा नैरयिक असंख्यात भाग हीन या संख्यात भाग हीन अथवा संख्यात भाग अधिक या असंख्यात भाग अधिक इस प्रकार से होते हैं, जैसे - एक नैरयिक की अवगाहना ५०० धनुष की है और दूसरे की अवगाहना है - अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की। अंगुल का असंख्यातवां भाग पांच सौ धनुष का असंख्यातवाँ भाग है। अतः जो नैरयिक अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला है, वह पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले नैरयिक की अपेक्षा असंख्यात भाग हीन है और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला दूसरे नैरयिक से असंख्यात भाग अधिक है। इसी प्रकार एक नैरयिक ५०० धनुष की अवगाहना वाला है, जबकि दूसरा उससे दो धनुष कम है, अर्थात् ४९८ धनुष की अवगाहना वाला है। दो धनुष, पांच सौ धनुष का संख्यातवाँ भाग है। इस दृष्टि से दूसरा नैरयिक पहले नैरयिक से संख्यातभाग हीन हुआ, जबकि पहला (पांच सौ धनुष वाला) नैरयिक दूसरे नैरयिक (४९८ धनुष वाले) से संख्यात भाग अधिक अवगाहना वाला हुआ। इसी प्रकार कोई नैरयिक एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाला है और दूसरा पूरे पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला है। एक सौ पच्चीस धनुष के चौगुने पांच सौ धनुष होते हैं। इस दृष्टि से १२५ धनुष की अवगाहना वाला ५०० धनुष की अवगाहना वाले नैरयिक से संख्यात गुण हीन हुआ और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला, एक सौ पच्चीस धनुष की अवगाहना वाले नैरयिक से संख्यात गुण अधिक हुआ। इसी प्रकार कोई नैरयिक अपर्याप्तक अवस्था में अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाला है और दूसरा नैरयिक पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला है। अंगुल का असंख्यातवां भाग असंख्यात से गुणा करने पर ५०० धनुष बनता है। अतः अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाला नैरयिक परिपूर्ण पांच सौ धनुष की अवगाहना वाले नैरयिक से असंख्यात गुण हीन हुआ और पांच सौ धनुष की अवगाहना वाला नैरयिक, अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना वाले नैरयिक से असंख्यात गुण अधिक हुआ।

स्थिति की अपेक्षा से नैरयिकों की हीनाधिकता - स्थिति (आयुष्य की अनुभूति) की अपेक्षा से कोई नैरयिक किसी दूसरे नैरयिक से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। अवगाहना की तरह स्थिति की अपेक्षा से भी एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से असंख्यात भाग या संख्यात भाग हीन अथवा संख्यात गुण या असंख्यात गुण हीन होता है, अथवा असंख्यात भाग या संख्यात भाग अधिक अथवा संख्यात गुण या असंख्यात गुण अधिक स्थिति वाला चतु:स्थान पतित होता है। जैसे कि एक नैरयिक ३३ सागरोपम की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा नैरयिक एक-दो समय कम तेतीस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सागरोपम की स्थिति वाला है। अतः एक-दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नैरयिक पूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिक से असंख्यात भाग हीन हुआ, जबकि परिपूर्ण तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला नैरयिक एक दो समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिक से असंख्यात भाग अधिक हुआ। क्योंकि एक-दो समय, सागरोपम के असंख्यातवें भाग मात्र हैं। इसी प्रकार एक नैरयिक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है और दूसरा पल्योपम कम तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है। दस कोटाकोटी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। इस दृष्टि से पल्योपमों से हीन स्थिति वाला नैरयिक, पूर्ण तेतीस सागरोपम स्थिति वाले नैरयिक से संख्यातभाग हीन स्थिति वाला हुआ, जबकि दूसरा पहले से संख्यात भाग अधिक स्थिति वाला हुआ। इसी प्रकार एक नैरयिक तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा एक सागरोपम की स्थिति वाला है इनमें एक सागरोपम की स्थिति वाला तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिक से संख्यात गुण-हीन हुआ। क्योंकि एक सागरोपम को तेतीस सागरोपम से गुणा करने पर तेतीस सागर होते हैं। इसके विपरीत तेतीस सागरोपम स्थिति वाला नैरयिक एक सागरोपम स्थिति वाले नैरयिक से संख्यात गुण अधिक हुआ। इसी प्रकार एक नैरयिक दस हजार वर्ष की स्थिति वाला है, जबकि दूसरा नैरयिक है- तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला। दस हजार को असंख्यात वार गुणा करने पर तेतीस सागरोपम होते हैं। अतएव दस हजार वर्ष की स्थिति वाला नैरयिक, तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिक की अपेक्षा असंख्यात गुण हीन स्थिति वाला हुआ, जबकि उसकी अपेक्षा तेतीस सागरोपम की स्थिति वाला असंख्यात गुण अधिक स्थिति वाला हुआ।

भाव की अपेक्षा से नैरयिकों की षट्स्थानपतित हीनाधिकता - पुद्गल-विपाकी नामकर्म के उदय से होने वाले औदयिक भाव का आश्रय लेकर वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की हीनाधिकता की प्ररूपणा की गई है। यथा - १. कृष्ण (काला) वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से अनन्त भाग हीन, असंख्यात भाग हीन, संख्यात भाग हीन होता है, अथवा संख्यात गुण हीन, असंख्यात गुण हीन या अनन्त गुण हीन होता है। यदि अधिक होता है तो अनन्त भाग, असंख्यात भाग या संख्यात भाग अधिक होता है अथवा संख्यात गुण, असंख्यात गुण या अनन्त गुण अधिक होता है। यह षट्स्थानपतित हीनाधिकता है। इस षट्स्थानपतित हीनाधिकता में जो जिससे अनन्त भाग-हीन होता है, वह सर्वजीवानन्तक (सर्व जीव रूप अनन्त राशि) से भाग करने पर जो प्राप्त हो, उसे अनन्तवें भाग से हीन समझना चाहिए। जो जिससे असंख्यात भाग हीन है, असंख्यात लोकाकाशप्रदेश प्रमाणराशि से भाग करने पर जो प्राप्त हो, उतने भाग कम समझना चाहिए। जो जिससे संख्यातभाग हीन हो, उसे उत्कृष्ट संख्यंक से भाग करने पर जो प्राप्त हो, उससे हीन समझना चाहिए। गुणनसंख्या में जो जिससे

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

संख्येय गुणा होता है, उसे उत्कृष्टसंख्यक के साथ गुणित करने पर जो (गुणनफल) राशि प्राप्त हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे असंख्यात गुणा है, उसे असंख्यातलोकाकाश प्रदेशों के प्रमाण जितनी राशि से गुणित करना चाहिए और गुणाकार करने पर जो राशि प्राप्त हो, उतना समझना चाहिए। जो जिससे अनन्त गुणा है, उसे सर्वजीवानन्तक से गुणित करने पर जो संख्या प्राप्त हो, उतना समझना चाहिए। इसी तरह नीलादि वर्णों के पर्यायों की अपेक्षा से एक नैरयिक से दूसरे नैरयिक की षट्स्थानपतित हीनाधिकता घटित कर लेनी चाहिए।

इसी प्रकार सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायों की अपेक्षा से भी एक नैरयिक दूसरे नैरयिक की अपेक्षा षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। वह भी पूर्ववत् समझना लेना चाहिए। तिक्त (तीखा) आदि रस के पर्यायों की अपेक्षा से भी एक नैरयिक दूसरे नैरयिक से षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है, इसी तरह कर्कश आदि स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा भी हीनाधिकता होती है, यह समझ लेना चाहिए।

क्षायोपशमिक भावरूप पर्यायों की अपेक्षा से हीनाधिकता - मति आदि तीन ज्ञान, मति अज्ञानादि तीन अज्ञान और चक्षुदर्शनादि तीन दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से भी कोई नैरयिक किसी अन्य नैरयिक से हीन, अधिक या तुल्य होता है। इनकी हीनाधिकता भी वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से उक्त हीनाधिकता की तरह षट्स्थानपतित के अनुसार समझ लेनी चाहिए। आशय यह है कि जिस प्रकार पुद्गलविपाकी नामकर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले औदयिकभाव को लेकर नैरयिकों को षट्स्थानपतित कहा है, उसी प्रकार जीवविपाकी ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले क्षायोपशमिक भाव को लेकर आभिनिबोधिक ज्ञान आदि पर्यायों की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित हानि-वृद्धि समझ लेनी चाहिए।

षट्स्थानपतित (छट्ठाणवडिया) का स्वरूप - यद्यपि कृष्ण (काले) वर्ण के पर्यायों का परिमाण अनन्त है, तथापि असत्कल्पना से उसे दस हजार मान लिया जाए और सर्वजीवानन्तक को सौ मान लिया जाए तो दस हजार में सौ का भाग देने पर सौ की संख्या प्राप्त होती है। इस दृष्टि से एक नैरयिक के कृष्ण (काले) वर्ण पर्यायों का परिमाण मान लो दस हजार है और दूसरे के सौ कम दस हजार है। सर्वजीवानन्तक में भाग देने पर सौ की संख्या प्राप्त होने से वह अनन्तवाँ भाग है, अत: जिस नैरयिक के कृष्ण (काले) वर्ण के पर्याय सौ कम दस हजार हैं वह पूरे दस हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्यायों वाले नैरयिक की अपेक्षा अनन्तभागहीन कहलाता है। उसकी अपेक्षा से दूसरा पूर्ण दस हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्यायों वाला नैरयिक अनन्तभाग अधिक है। इसी प्रकार दस हजार परिमित कृष्ण वर्ण के पर्यायों में लोकाकाश के प्रदेशों के रूप में कल्पित पचास से भाग दिया जाए तो दो सौ संख्या आती है, यह असंख्यातवां भाग कहलाता है। इस दृष्टि से किसी नैरयिक के कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो सौ कम दस हजार हैं और किसी के पूरे दस हज़ार हैं। इनमें से दो सौ कम दस हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाला नैरयिक पूर्ण दस हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाले नैरयिक से असंख्यात भाग हीन कहलाता है और परिपूर्ण कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाला नैरयिक दो सौ कम दस हज़ार वाले की अपेक्षा असंख्यात भाग अधिक कहलाता है। इसी प्रकार पूर्वोक्त दस हजार संख्यक कृष्ण (काले) वर्ण पर्यायों में संख्यात परिमाण के रूप में कल्पित दस संख्या का भाग दिया जाए तो एक हजार संख्या प्राप्त होती है। यह संख्या दस हजार का संख्यातवां भाग है। मान लो, किसी नैरयिक के कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय में संख्यात परिमाण के रूप में कल्पित दस संख्या का भाग दिया जाए तो एक हजार संख्या प्राप्त होती है। यह संख्या दस हजार का संख्यातवां भाग है। मान लो, किसी नैरयिक के कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय ९ हजार हैं और दूसरे नैरयिक के दस हजार हैं, तो नौ हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाला नैरयिक, पूर्ण दस हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाले नैरयिक से संख्यात भाग हीन हुआ तथा उसकी अपेक्षा परिपूर्ण दस हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाला नैरयिक से संख्यात भाग अधिक हुआ। इसी प्रकार एक नैरयिक के कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय एक हजार हैं, दूसरे नैरयिक के दस हजार हैं। यहाँ उत्कृष्ट संख्या के रूप में कल्पित दस संख्या को हजार से गुणा करने पर दस हजार संख्या आती है। इस दृष्टि से एक हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय एक हजार हैं, दूसरे नैरयिक के दस हजार हैं। यहाँ उत्कृष्ट संख्या के रूप में कल्पित दस संख्या को हजार से गुणा करने पर दस हजार संख्या आती है। इस दृष्टि से एक हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाला नैरयिक, दस हजार संख्यक कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाले नैरयिक से संख्यात गुण हीन है और उसकी अपेक्षा दस हज़ार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाला नैरयिक संख्यात गुण अधिक है। इसी प्रकार एक नैरयिक के कृष्ण (काले) वर्ण पर्यायों का परिमाण दो सौ है और दूसरे के कृष्ण वर्णपर्यायों का परिमाण दस हजार है। दो सौ का यदि असंख्यात रूप में कल्पित पचास के साथ गुणा किया जाए तो दस हजार होता है। अतः दो सौ कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाला नैरयिक दस हजार कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय वाले नैरयिक की अपेक्षा असंख्यात गुण हीन है और उसकी अपेक्षा दस हजार कृष्ण वर्ण पर्याय वाला नारक असंख्यात गुण अधिक है। इसी प्रकार मान लो, एक नैरयिक के कृष्ण (काले) वर्ण पर्याय सौ हैं, और दूसरे के दस हजार हैं। सर्वजीवान्तक परिमाण के रूप में परिकल्पित सौ को सौ से गुणा किया जाए तो दस हजार संख्या होती है। अतएव सौ कृष्ण वर्ण पर्याय वाला नैरयिक दस हज़ार कृष्ण (काले) वर्ण वाले नैरयिक से अनन्त गुण हीन हुआ और उसकी अपेक्षा दूसरा अनन्त गुण अधिक हुआ।

यहाँ कृष्ण वर्ण आदि पर्यायों में षट्स्थानपतित हीनाधिकता बतलायी गई है उससे यह स्पष्ट होता है कि जब एक कृष्ण (काले) वर्ण की ही अनंत पर्यायें होती हैं तो सभी वर्णों की पर्यायों का क्या कहना? अर्थात् वे भी अनंत होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असुरकुमार आदि देवों के पर्याय

असुरकुमाराणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमारों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।'

गोयमा! असुरकुमारे असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, एवं णीलवण्णपज्जवेहिं लोहियवण्णपज्जवेहिं हालिद्दवण्णपज्जवेहिं सुक्किलवण्ण-पज्जवेहिं, सुब्भिगंधपज्जवेहिं दुब्भिगंधपज्जवेहिं, तित्तरसपज्जवेहिं कडुयरसपज्जवेहिं कसायरसपज्जवेहिं अंबिलरसपज्जवेहिं महुररसपज्जवेहिं, कक्खडफासपज्जवेहिं मउयफासपज्जवेहिं गरुयफासपज्जवेहिं लहुयफासपज्जवेहिं सीयफासपज्जवेहिं उसिणफासपज्जवेहिं णिद्धफासपज्जवेहिं लुक्खफासपज्जवेहिं।

कठिन शब्दार्थ - चउट्ठाणवडिए - चतुःस्थानपतित।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'असुरकुमारों के पर्याय अनन्त हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से-द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्ण (काले) वर्ण पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, इसी प्रकार नीलवर्ण-पर्यायों, रक्त (लोहित) वर्ण पर्यायों, हारिद्रवर्ण-पर्यायों, शुक्लवर्ण-पर्यायों की अपेक्षा से तथा सुगन्ध और दुर्गन्ध के पर्यायों की अपेक्षा से, तिक्त (तीखा) रस पर्यायों, कटुरस-पर्यायों, काषायरस-पर्यायों, आम्लरस-पर्यायों एवं मधु रस-पर्यायों की अपेक्षा से तथा कर्कशस्पर्श-पर्यायों, मृदुस्पर्श-पर्यायों, गुरुस्पर्श पर्यायों, लघुस्पर्श-पर्यायों, शीतस्पर्श-पर्यायों, उष्णस्पर्श-पर्यायों, स्निग्धस्पर्श-पर्यायों और रूक्षस्पर्श पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिक है।

आभिणिबोहिय णाण पज्जवेहिं सुयणाण पज्जवेहिं ओहिणाण पज्जवेहिं, मइअण्णाण पज्जवेहिं सुयअण्णाण पज्जवेहिं विभंगणाण पज्जवेहिं, चक्खुदंसण पज्जवेहिं अचक्खुदंसण पज्जवेहिं ओहिदंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'। एवं जहा णेरइया, जहा असुरकुमारा तहा णागकुमारा वि जाव थणियकुमारा॥ २४९॥

आभिनिबोधिकज्ञान-पर्यायों, श्रुतज्ञान-पर्यायों, अवधिज्ञान पर्यायों, मति अज्ञान पर्यायों, श्रुत-अज्ञान-पर्यायों, विभंगज्ञान पर्यायों, चक्षुदर्शन पर्यायों, अचक्षुदर्शन पर्यायों और अवधिदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिक है।

हे गौतम! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि असुरकुमारों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं। इसी प्रकार जैसे नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं और असुरकुमारों के कहे गये हैं, उसी प्रकार नागकुमारों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों तक के अनन्त पर्याय कहने चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक के भवनपतियों के अनन्तपर्यायों का निरूपण किया गया है। एक असुरकुमार दूसरे असुरकुमार से पूर्वोक्त सूत्रानुसार द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना और स्थिति के पर्यायों की दृष्टि के पूर्ववत् चतुःस्थानपतित हीनाधिक हैं तथा कृष्णादिवर्ण, सुगन्ध-दुर्गन्ध, तिक्त आदि रस, कर्कश आदि स्पर्श एवं ज्ञान, अज्ञान एवं दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपतित हैं। इसलिये असुरकुमार आदि भवनपति देवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

पृथ्वीकायिकों के पर्याय

पुढवीकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'पुढवीकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! पुढवीकाइए पुढवीकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्जइ भागहीणे वा संखिज्जइ भागहीणे वा संखिज्जइ गुणहीणे वा असंखिज्जइ गुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखिज्जइ भागअब्भहिए वा संखिज्जइ भागअब्भहिए वा संखिज्ज गुणअब्भहिए वा असंखिज्ज गुणअब्भहिए वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - गौतम! एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यात भाग हीन है अथवा संख्यात भाग हीन है अथवा संख्यात गुण हीन है, या असंख्यात गुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है या संख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यात गुण अधिक है अथवा असंख्यात गुण अधिक है।

ठिईए तिट्ठाणवडिए, सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्ज भागहीणे वा संखिज्ज भागहीणे वा संखिज्ज गुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखिज्जइ भागअब्भहिए वा संखिज्जइ भागअब्भहिए वा संखिज्ज गुणअब्भहिए वा। वण्णेहिं, गंधेहिं, रसेहिं, फासेहिं, मइअण्णाणपज्जवेहिं, सुयअण्णाणपज्जवेहिं, अचक्खुदंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए॥ २५०॥

कठिन शब्दार्थ - तिट्ठाणवडिए - त्रिस्थानपतित।

भावार्थ - स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यात भाग हीन है, या संख्यात भाग हीन है, अथवा संख्यात गुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है, या संख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यात गुण अधिक है। वर्णों के पर्यायो गन्धों, रसों और स्पर्शों के पर्यायों) की अपेक्षा से, मति-अज्ञान-पर्यायों, श्रुत अज्ञान पर्यायों एवं अचक्षुदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से षट्स्थानपतित है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वीकायिक की अनन्त पर्यायों का निरूपण किया गया है।

मूलपाठ में अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित तथा समस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से एवं मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से पूर्ववत् षट्स्थानपतित हीनाधिकता बता कर पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय सिद्ध किये गए हैं।

अवगाहना में चतुःस्थानपतित हीनाधिकता - एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से असंख्यात भाग, संख्यात भाग अथवा संख्यात गुण या असंख्यात गुण हीन होता है, अथवा असंख्यात भाग, संख्यात भाग अथवा संख्यात गुण या असंख्यात गुण अधिक होता है। यद्यपि पृथ्वीकायिक जीवों की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है, किन्तु अंगुल के असंख्यातवें भाग के भी असंख्यात भेद होते हैं, इस कारण पृथ्वीकायिक जीवों की पूर्वोक्त चतुःस्थानपतित हीनाधिकता में कोई विरोध नहीं है।

स्थिति में त्रिस्थानपतित हीनाधिकता - एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से असंख्यात भाग या संख्यात भाग हीन अथवा संख्यात गुण हीन होता है अथवा असंख्यात भाग अधिक, संख्यात

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाग अधिक या संख्यात गुण अधिक होता है। इनकी स्थिति में चतुःस्थानपतित हीनाधिकता नहीं होती, क्योंकि इनमें असंख्यात गुणहानि और असंख्यात गुणवृद्धि संभव नहीं है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीकायिक की सर्वजघन्य आयु क्षुल्लकभव ग्रहणपरिमित है। क्षुल्लकभव का परिमाण दो सौ छप्पन आवलिकामात्र है। दो घड़ी का एक मुहूर्त्त होता है और इस एक मुहूर्त्त में ६५५३६ भव होते हैं। इसके अतिरिक्त पृथ्वीकाय की उत्कृष्ट स्थिति भी संख्यात हजारों वर्षों की ही होती है। अतः इनमें असंख्यात गुण हानि-वृद्धि (न्यूनाधिकता) नहीं हो सकती। असंख्यात भाग, संख्यात भाग और संख्यात गुण हानिवृद्धि इस प्रकार है। जैसे-एक पृथ्वीकायिक की स्थिति परिपूर्ण २२ हजार वर्ष की है और दूसरे की एक समय कम २२००० वर्ष की है, इनमें से परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति वाले पृथ्वीकायिक की अपेक्षा, एक समय कम २२००० वर्ष की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक असंख्यात भाग हीन कहलाएगा, जबकि दूसरा असंख्यात भाग अधिक कहलाएगा। इसी प्रकार एक की परिपूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति है, जबकि दूसरे की अन्तर्मुहूर्त्त आदि कम २२००० वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि बाईस हजार वर्ष का संख्यातवां भाग है। अतः पूर्ण २२ हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त्त कम २२ हजार वर्ष की स्थिति वाला संख्यात भाग हीन है और उसकी अपेक्षा पूर्ण २२००० वर्ष की स्थिति वाला संख्यात भाग अधिक है। इसी प्रकार एक पृथ्वीकायिक की पूरी २२००० वर्ष की स्थिति है और दूसरे की अन्तर्मुहूर्त्त की, एक मास की, एक वर्ष की या एक हजार वर्ष की है। अन्तर्मुहूर्त्त आदि किसी नियत संख्या से गुणा करने पर २२००० वर्ष की संख्या होती है। अतः अन्तर्मुहूर्त्त आदि की आयुवाला पृथ्वीकायिक, पूर्ण बाईस हजार वर्ष की स्थिति वाले की अपेक्षा संख्यात गुण हीन है और इसकी अपेक्षा २२००० वर्ष की स्थिति वाला पृथ्वीकायिक संख्यात गुण अधिक है।

भावों (वर्णादि या मति-अज्ञानादि के पर्यायों) की अपेक्षा से षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता होती है, वहाँ उसे इस प्रकार समझना चाहिए-एक पृथ्वीकायिक, दूसरे पृथ्वीकायिक से अनन्तभागहीन, असंख्यात भागहीन और संख्यात भागहीन अथवा संख्यात गुणहीन, असंख्यात गुणहीन और अनन्त गुणहीन तथा अनन्त भाग-अधिक, असंख्यात भाग अधिक और संख्यात भाग अधिक तथा संख्यात गुणा, असंख्यात गुणा और अनन्त गुणा अधिक है।

अप्कायिकों के पर्याय

आउकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अप्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! अप्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'आउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! आउकाइए आउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास-मइअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए॥ २५१॥

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि अप्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक अप्कायिक दूसरे अप्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थान-पतित है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

तेजस्कायिकों के पर्याय

तेउकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तेजस्कायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! तेजस्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'तेउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! तेउकाइए तेउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास-मइअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए॥ २५२॥

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि तेजस्कायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक तेजस्कायिक, दूसरे तेजस्कायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वायुकायिकों के पर्याय

वाउकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! वायुकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'वाउकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! वाउकाइए वाउकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए वण्ण-गंध-रस-फास-मइअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए॥ २५३॥

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि 'वायुकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक वायुकायिक, दूसरे वायुकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों को अपेक्षा से तुल्य है किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

वनस्पतिकायिकों के पर्याय

वणस्सइकाइयाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायकि जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! वणस्सइकाइए वणस्सइकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास-मइअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसण-पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'वणस्सइकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'॥ २५४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक वनस्पतिकायिक दूसरे वनस्पतिकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है किन्तु वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के तथा मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थान-पतित है।

इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा जाता है कि वनस्पतिकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में क्रमशः अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों की अनंत-अनंत पर्यायों का वर्णन किया गया है।

इन जीवों में अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की अपेक्षा से एवं मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा षट्स्थान पतित हीनाधिकता पृथ्वीकायिक जीवों (सूत्र क्रमांक २५०) के अनुसार समझ लेनी चाहिए।

बेइन्द्रियों के पर्याय

बेइंदियाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! बेइंदिए बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्जइ भागहीणे वा संखिज्जइ भागहीणे वा संखिज्जइ गुणहीणे वा असंखिज्जइ गुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखिज्ज भाग अब्भहिए वा संखिज्जइ भाग अब्भहिए वा संखिज्ज गुणमब्भहिए वा असंखिज्जइ गुणमब्भहिए वा। ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास-आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-मइअण्णाण-सुयअण्णाण-अचक्खुदंसण पज्जवेहिं य छट्ठाणवडिए। एवं तेइंदिया वि। एवं चउरिंदिया वि, णवरं दो दंसणा, चक्खुदंसणं अचक्खुदंसणं च। पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पज्जवा जहा णेरइयाणं तहा भाणियव्वा॥ २५५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि बेइन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक बेइन्द्रिय जीव दूसरे बेइन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु अवगाहना की दृष्टि से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित अधिक है। यदि हीन होता है तो या तो असंख्यातभाग हीन होता है, या संख्यातभाग हीन होता है, अथवा संख्यातगुण हीन या असंख्यातगुण हीन होता है। अगर अधिक होता है तो असंख्यातभाग अधिक या संख्यातभाग अधिक अथवा संख्यातगुण या असंख्यातगुण अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हीनाधिक होता है तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श के तथा आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार तेइन्द्रिय जीवों के पर्यायों की अनन्तता के विषय में समझना चाहिए। इसी तरह चउरिन्द्रिय जीवों के पर्यायों की अनन्तता होती है। विशेष यह है कि उनमें चक्षुदर्शन भी होता है। अतएव इनके पर्यायों की अपेक्षा से भी चउरिन्द्रिय की अनन्तता समझ लेनी चाहिए। पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों के पर्यायों का कथन नैरयिकों के समान कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय एवं तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्यायों का निरूपण किया गया है।

विकलेन्द्रिय एवं तिर्यंचपंचेन्द्रिय में द्रव्य और प्रदेश की अपेक्षा परस्पर समानता होने पर भी अवगाहना की दृष्टि से पूर्ववत् चतुःस्थानपतित, स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित एवं वर्णादि के तथा मतिज्ञानादि के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता होती है, इस कारण इनके पर्यायों की अनन्तता स्पष्ट है।

मनुष्यों के पर्याय

मणुस्साणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! मणुस्से मणुसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास-आभिणिबोहियणाण-सुयणाण-ओहिणाण-मणपज्जवणाण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, केवलणाण पज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलदंसण पज्जवेहिं तुल्ले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की दृष्टि से भी चतुःस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान एवं मनःपर्यवज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा केवलज्ञान के पर्यायों की दृष्टि से तुल्य है, तीन अज्ञान तथा तीन दर्शन के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपतित है और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अवगाहना और स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित तथा वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, आभिनिबोधिक आदि चार ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हीनाधिकता बता कर तथा द्रव्य, प्रदेश तथा केवलज्ञान-केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से परस्पर तुल्यता बता कर मनुष्यों के अनन्त पर्याय सिद्ध किये गए हैं।

पांच ज्ञानों में से चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन क्षायोपशमिक हैं। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न होते हैं, किन्तु सब मनुष्यों का क्षयोपशम समान नहीं होता। क्षयोपशम में तरतमता को लेकर,अनन्त भेद होते हैं। अतएव इनके पर्याय षट्स्थानपतित हीनाधिक कहे गये हैं, किन्तु केवलज्ञान और केवलदर्शन क्षायिक हैं। वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण के सर्वथा क्षीण होने पर ही उत्पन्न होते हैं, अतएव उनमें किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं होती। जैसा एक मनुष्य का केवलज्ञान या केवलदर्शन होता है, वैसा ही सभी का होता है, इसीलिए केवलज्ञान और केवलदर्शन के पर्याय तुल्य कहे गये हैं।

स्थिति से चउट्ठाणवडिया - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों की स्थिति अधिक से अधिक तीन पल्योपम की होती है। पल्योपम असंख्यात हजार वर्षों का होता है। अतः उसमें असंख्यातगुणी वृद्धि और हानि सम्भव होने से उसे चतुःस्थानपतित कहा गया है।

वाणव्यंतर आदि देवों के पर्याय

वाणमंतरा ओगाहणट्ठयाए ठिईए चउट्ठाणवडिया, वण्णाईहिं छट्ठाणवडिया। जोइसिया वेमाणिया वि एवं चेव, णवरं ठिईए तिट्ठाणवडिया॥ २५६॥

भावार्थ - वाणव्यन्तर देव अवगाहना और स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित कहे गए हैं तथा वर्ण आदि की अपेक्षा से षट्स्थानपतित कहे गये हैं।

ज्योतिष्क और वैमानिक देवों के पर्यायों की हीनाधिकता भी इसी प्रकार पूर्वसूत्रानुसार समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि इन्हें स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - वाणव्यन्तरों की स्थिति जघन्य १० हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक पल्योपम की होती है, अत: वह भी चतु:स्थानपतित हो सकती है, किन्तु ज्योतिष्कों और वैमानिकों की स्थिति में त्रिस्थान पतित हीनाधिकता ही होती है, क्योंकि ज्योतिष्कों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग की और उत्कृष्ट एक लाख वर्ष अधिक पल्योपम की है। अतएव उनमें असंख्यात गुणी हानि-वृद्धि संभव नहीं है। वैमानिकों की स्थिति जघन्य पल्योपम की और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की है। एक सागरोपम दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का होता है। अतएव वैमानिकों में भी असंख्यात गुणी हानि वृद्धि संभव नहीं है। इसी कारण ज्योतिष्क और वैमानिकदेव स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होते हैं।

जघन्य आदि अवगाहना वाले नैरयिकों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! णेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्टेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णोगाहणए णेरइए जहण्णोगाहणस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास पज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिए।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है किन्तु स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थान पतित है और वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

उक्कोसोगाहणगाणं भंते! णेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'उक्कोसोगाहणगाणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! उक्कोसोगाहणए णेरइए उक्कोसोगाहणस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले। ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्ज भागहीणे वा संखिज्ज भागहीणे वा, अह अब्भहिए असंखिज्जइ भागअब्भहिए वा संखिज्ज भागअब्भहिए वा। वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं, छट्ठाणवडिए।

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक उत्कृष्ट अवगाहना वाला नैरयिक, दूसरे उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है किन्तु स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यात भाग हीन है या संख्यात भाग हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यात भाग अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते! णेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं - अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए णेरइए अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्ज भागहीणे वा संखिज्ज भागहीणे वा संखिज्ज गुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखिज्ज भाग अब्भहिए वा संखिज्ज भाग अब्भहिए वा संखिज्ज गुण अब्भहिए वा असंखिज्ज गुण अब्भहिए वा। ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्ज भागहीणे वा संखिज्ज भागहीणे वा संखिज्ज गुणहीणे वा असंखिज्जगुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखिज्ज भाग अब्भहिए वा संखिज्ज भाग अब्भहिए वा संखिज्ज गुण अब्भहिए वा असंखिज्ज गुण अब्भहिए वा। वण्ण-गंध-रस-फास पज्जवेहिं, तिहिं णाणेहिं, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए,

से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'॥ २५७॥

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?'

उत्तर - हे गौतम! मध्यम अवगाहना वाला एक नैरयिक, अन्य मध्यम अवगाहना वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो, असंख्यात भाग हीन है अथवा संख्यात भाग हीन है, या संख्यात गुण हीन है, अथवा असंख्यात गुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है अथवा संख्यात भाग अधिक है, अथवा संख्यात गुण अधिक है, या असंख्यात गुण अधिक है। स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो असंख्यात भाग हीन है, अथवा संख्यात भाग हीन है अथवा संख्यात गुण हीन है, या असंख्यात गुण हीन है। यदि अधिक है तो असंख्यात भाग अधिक है अथवा संख्यात भाग अधिक है, या संख्यात गुण अधिक है, अथवा असंख्यात गुण अधिक है। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

हे गौतम! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'मध्यम अवगाहना वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।'

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना आदि से युक्त नैरयिकों के पर्यायों का कथन किया गया है।

जघन्य एवं उत्कृष्ट अवगाहना वाला एक नैरयिक, दूसरे नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्योंकि 'प्रत्येक द्रव्य अनन्त पर्याय वाला होता है' इस न्याय से नैरयिक जीव द्रव्य एक होते हुए भी अनन्त पर्याय वाला हो सकता है। अनन्त पर्याय वाला होते हुए भी वह द्रव्य से एक है, जैसे कि अन्य नैरयिक एक-एक हैं। इसी प्रकार प्रत्येक नैरयिक जीव लोकाकाश प्रमाण असंख्यात प्रदेशों वाला होता है, इसलिए प्रदेशों की अपेक्षा से भी वह तुल्य है तथा अवगाहना की दृष्टि से भी तुल्य है, क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना का एक ही स्थान है, उसमें तरतमता-हीनाधिकता संभव नहीं है।

स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित - जघन्य अवगाहना वाले नैरयिकों की स्थिति में समानता का नियम नहीं है। क्योंकि एक जघन्य अवगाहना वाला नैरयिक १० हजार वर्ष की स्थिति वाला रत्नप्रभापृथ्वी में होता है और एक उत्कृष्ट स्थिति वाला नैरयिक सातवीं पृथ्वी में होता है। इसलिए जघन्य या उत्कृष्ट अवगाहना वाला नैरयिक स्थिति की अपेक्षा असंख्यात भाग या संख्यात भाग हीन अथवा संख्यात गुण या असंख्यात गुण हीन भी हो सकता है। अथवा असंख्यात भाग या संख्यात भाग अधिक अथवा संख्यात गुण या असंख्यात गुण अधिक भी हो सकता है। इसलिए स्थिति की अपेक्षा से नैरयिक चतुःस्थानपतित होते हैं।

कोई गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव नैरयिकों में उत्पन्न होता है, तब वह नरकायु के वेदन के प्रथम समय में ही पूर्व प्राप्त औदारिकशरीर का परिशाटन करता है, उसी समय सम्यग्दृष्टि को तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को तीन अज्ञान उत्पन्न होते हैं। तत्पश्चात् अविग्रह से या विग्रह से गमन करके वह वैक्रियशरीर धारण करता है, किन्तु जो सम्मूर्च्छिम असंज्ञीपंचेन्द्रिय जीव नरक में उत्पन्न होता है, उसे उस समय विभंगज्ञान नहीं होता। इस कारण जघन्य अवगाहना वाले नैरयिक को भजना से दो या तीन अज्ञान होते हैं, ऐसा समझ लेना चाहिए।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिक स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित - उत्कृष्ट अवगाहना वाले सभी नैरयिकों की स्थिति समान ही हो, या असमान ही हो, ऐसा नियम नहीं है। असमान होते हुए यदि हीन हो तो वह या तो असंख्यात भागहीन होता है या संख्यात भागहीन और अगर अधिक हो तो असंख्यात भाग अधिक या संख्यात भाग अधिक होता है। इस प्रकार स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित हीनाधिकता समझनी चाहिए। यहाँ संख्यात गुण और असंख्यात गुण हीनाधिकता नहीं होती, इसलिए चतुःस्थानपतित संभव नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिक ५०० धनुष की ऊँचाई वाले सातवीं नरक में ही पाए जाते हैं और वहाँ जघन्य बाईस और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति है। अतएव इस स्थिति में संख्यात-असंख्यात भाग हानि वृद्धि हो सकती है, किन्तु संख्यात-असंख्यात गुण हानि-वृद्धि की संभावना नहीं है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमतः होते हैं, भजना से नहीं क्योंकि उत्कृष्ट अवगाहना वाले नैरयिकों में सम्मूर्च्छिम असंज्ञीपंचेन्द्रिय की उत्पत्ति नहीं होती। अतः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट अवगाहना वाला नैरयिक यदि सम्यग्दृष्टि हो तो तीन ज्ञान और मिथ्यादृष्टि हो तो तीन अज्ञान नियमतः होते हैं।

मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना का अर्थ - जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के बीच की अवगाहना अजघन्य-अनुत्कृष्ट या मध्यम अवगाहना कहलाती है। इस अवगाहना का जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना के समान नियत एक स्थान नहीं है। सर्वजघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग की और उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष की होती है। इन दोनों के बीच की जितनी भी अवगाहनाएँ होती हैं, वे सब मध्यम अवगाहना की कोटि में आती है। तात्पर्य यह है कि मध्यम अवगाहना सर्वजघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग अधिक से लेकर अंगुल के असंख्यातवें भाग कम पांच सौ धनुष की समझनी चाहिए। यह अवगाहना सामान्य नैरयिक की अवगाहना के समान चतुःस्थानपतित हो सकती है।

जहण्णठिइयाणं भंते! णेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णठिइयाणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णठिइए णेरइए जहण्णठिइयस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं, तिहिं णाणेहिं, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसठिइए वि। अजहण्णमणुक्कोसठिइए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए॥ २५८॥

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला नैरयिक दूसरे जघन्य स्थिति वाले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एवं तीन दर्शनों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिक के विषय में भी यथायोग्य तुल्य, चतुःस्थानपतित षट्स्थानपतित आदि कहना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मध्यम स्थिति वाले नैरयिक के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

विवेचन - जघन्य स्थिति वाले एक नैरयिक से, जघन्यस्थिति वाला दूसरा नैरयिक स्थिति की अपेक्षा से समान होता है क्योंकि जघन्य स्थिति का एक ही स्थान होता है, उसमें किसी प्रकार की हीनाधिकता संभव नहीं है।

एक जघन्य स्थिति वाला नैरयिक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले नैरयिक से अवगाहना में पूर्वोक्त व्याख्यानुसार चतुःस्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योंकि उनमें अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर उत्कृष्ट ७ धनुष तक पाई जाती है।

जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति वाले नैरयिकों की स्थिति तो परस्पर तुल्य कही गई है, मगर मध्यम स्थिति वाले नैरयिकों की स्थिति में परस्पर चतुःस्थानपतित हीनाधिक्य है, क्योंकि मध्यम स्थिति तारतम्य से अनेक प्रकार की है। मध्यमस्थिति में एक समय अधिक दस हजार वर्ष से लेकर एक समय कम तेतीस सागरोपम की स्थिति परिगणित है। इसलिए इसका चतुःस्थानपतित हीनाधिक होना स्वाभाविक है।

जहण्णगुणकालगाणं भंते! णेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्यगुण काले नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्यगुण काले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णगुणकालगाणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णगुणकालए णेरइए जहण्णगुणकालगस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्ण पज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फास-पज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए,

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्यगुण काला नैरयिक, दूसरे जघन्यगुण काले नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है किन्तु अवशिष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। इस कारण से हे गौतम! ऐसा कहा गया है कि 'जघन्यगुण काले नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।'

से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'जहण्णगुणकालगाणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'। एवं उक्कोसगुणकालए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं अवसेसा चत्तारि वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणियव्वा॥ २५९॥

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले नैरयिकों के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार मध्यम गुण काले नैरयिक के पर्यायों के विषय में जान लेना चाहिए। विशेष इतना ही है कि काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित होता है।

इसी प्रकार काले वर्ण के पर्यायों की तरह शेष चारों वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श की अपेक्षा से भी समझ लेना चाहिए।

विवेचन - जिस नैरयिक में कृष्णवर्ण का सर्वजघन्य अंश पाया जाता है, वह दूसरे सर्वजघन्य अंश कृष्णवर्ण वाले के तुल्य ही होता है, क्योंकि जघन्य का एक ही रूप है, उसमें विविधता या हीनाधिकता नहीं होती।

जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते! णेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णाभिणिबोहियणाणी णेरइए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स णेरइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियणाण पज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाण पज्जवेहिं ओहिणाण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि। अजहण्णमणुक्कोसाभिणि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोहियणाणी वि एवं चेव, णवरं आभिणिबोहियणाण पज्जवेहिं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं सुयणाणी ओहिणाणी वि, णवरं जस्स णाणा तस्स अण्णाणा णत्थि। जहा णाणा तहा अण्णाणा वि भाणियव्वा, णवरं जस्स अण्णाणा तस्स णाणा ण भवंति।

प्रश्न - हे भगवन्! किस हेतु से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से भी चतुःस्थानपतित है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा तीन दर्शनों की अपेक्षा भी षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) आभिनिबोधिक ज्ञानी के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की की अपेक्षा से भी स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार (आभिनिबोधिकज्ञानी-पर्यायवत्) जानना चाहिए। विशेष यह है कि जिसके ज्ञान होता है, उसके अज्ञान नहीं होता।

जिस प्रकार त्रिज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में कहा, उसी प्रकार त्रिअज्ञानी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए। विशेष यह है कि जिसके अज्ञान होते हैं, उसके ज्ञान नहीं होते।

विवेचन - जिस नैरयिक में ज्ञान होता है, उसमें अज्ञान नहीं होता और जिसमें अज्ञान होता है उसमें ज्ञान नहीं होता, क्योंकि ये दोनों परस्पर विरुद्ध हैं। सम्यगदृष्टि को ज्ञान और मिथ्यादृष्टि को अज्ञान होता है। जो सम्यग्दृष्टि होता है, वह मिथ्यादृष्टि नहीं होता और जो मिथ्यादृष्टि होता है, वह सम्यक् दृष्टि नहीं होता।

जहण्णचक्खुदंसणीणं भंते! णेरइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिकों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णचक्खुदंसणीणं णेरइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णचक्खुदंसणी णं णेरइए जहण्णचक्खुदंसणिस्स णेरइयस्स दव्वट्टयाए तुल्ले, पएसट्टयाए तुल्ले, ओगाहणट्टयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास-पज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं तिहिं अण्णाणेहिं छट्ठाणवडिए, चक्खुदंसण पज्जवेहिं तुल्ले, अचक्खुदंसण पज्जवेहिं ओहिदंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसचक्खुदंसणी वि। अजहण्णमणुक्कोसचक्खुदंसणी वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं अचक्खुदंसणी वि ओहिदंसणी वि॥ २६०॥

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक, दूसरे जघन्य चक्षुदर्शनी नैरयिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तथा तीन ज्ञान और तीन अज्ञान की अपेक्षा से, षट्स्थानपतित है। चक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, तथा अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट चक्षुदर्शनी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

मध्यम चक्षुदर्शनी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेष इतना ही है कि स्वस्थान में भी वह षट्स्थानपतित होता है।

चक्षुदर्शनी नैरयिकों के पर्यायों की तरह ही अचक्षुदर्शनी नैरयिकों एवं अवधिदर्शनी नैरयिकों के पर्यायों के विषय में भी जान लेना चाहिए।

जघन्य आदि अवगाहना वाले देवों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! असुरकुमाराणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ 'जहण्णोगाहणगाणं असुरकुमाराणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णोगाहणए असुरकुमारे जहण्णोगाहणस्स असुरकुमारस्स दव्वट्ठयाए तुले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाईहिं छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियणाण पज्जवेहिं सुयणाण पज्जवेहिं ओहिणाण पज्जवेहिं, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसोगाहणए वि। एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि णवरं उक्कोसोगाहणए वि असुरकुमारे ठिइए चउट्ठाणवडिए (सेसं जहा णेरइयाणं) एवं जाव थणियकुमारा॥ २६१ ॥

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमारों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला असुरकुमार, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असुरकुमार से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है किन्तु स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्ण आदि की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान एवं अवधिज्ञान के पर्यायों, तीन अज्ञानों तथा तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमारों के पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए। तथा इसी प्रकार मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) अवगाहना वाले असुरकुमारों के पर्यायों के सम्बन्ध में भी जान लेना चाहिए। विशेष यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले असुरकुमार भी स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है। शेष पूरा वर्णन नैरयिकों के समान समझना चाहिये।

असुरकुमारों के पर्यायों की वक्तव्यता की तरह ही यावत् स्तनितकुमारों तक के पर्यायों की वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवगाहना वाले दश प्रकार के भवनपतियों के अनन्त पर्यायों का निरूपण किया गया है।

जघन्य आदि अवगाहना वाले पृथ्वीकायिकों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ- 'जहण्णोगाहणगाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णोगाहणए पुढविकाइयाणं जहण्णोगाहणस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास पज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसण पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसोगाहणए वि। अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, दो अज्ञानों की अपेक्षा से एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायों की दृष्टि से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों का कथन भी करना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीव स्वस्थान में अर्थात् अवगाहना की अपेक्षा से भी चतुःस्थानपतित हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, उत्कृष्ट तथा मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक जीवों का पर्यायविषयक कथन किया गया है।

जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना वाला एक पृथ्वीकायिक दूसरे पृथ्वीकायिक से अवगाहना की अपेक्षा से परस्पर तुल्य होता हैं। किन्तु मध्यम अवगाहना वाले दो पृथ्वीकायिक जीव अवगाहना की अपेक्षा से स्वस्थान में परस्पर चतुःस्थानपतित होते हैं। अर्थात्-एक मध्यम अवगाहना वाला पृथ्वीकायिकादि दूसरे मध्यम अवगाहना वाले पृथ्वीकायिक से अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है, क्योंकि सामान्यरूप से मध्यम अवगाहना होने पर भी वह विविध प्रकार की होती है। जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना की भाँति उसका एक ही स्थान नहीं होता। कारण यह है कि पृथ्वीकायिक आदि के भव में पहले उत्पत्ति हुई हो, उसे स्वस्थान कहते हैं। इस प्रकार के स्वस्थान में असंख्यात वर्षों का आयुष्य संभव होने से असंख्यात भागहीन संख्यात भागहीन अथवा संख्यात गुणहीन या असंख्यात गुणहीन होता है अथवा असंख्यात भाग अधिक, संख्यात भाग अधिक या संख्यात गुण अधिक अथवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंख्यात गुण अधिक होता है, इस प्रकार चतुःस्थानपतित होता है। इसी प्रकार स्थिति, वर्णादि, मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान एवं अचक्षुदर्शन से युक्त पृथ्वीकायिकादि की हीनाधिकता अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होती है।

जहण्णठिइयाणं भंते! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णठिइयाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णठिइए पुढविकाइए जहण्णठिइयस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फास पज्जवेहिं मइअण्णाण पज्जवेहिं सुयअण्णाण पज्जवेहिं अचक्खुदंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसठिइए वि। अजहण्णमणुक्कोसठिइए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे तिट्ठाणवडिए।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की तथा मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और अचक्षु दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों की पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पृथ्वीकायिक जीवों की पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि वे स्वस्थान में त्रिस्थानपतित हैं।

विवेचन - स्थिति की अपेक्षा से जघन्य स्थिति वाला एक पृथ्वीकायिक जघन्य स्थिति वाले दूसरे पृथ्वीकायिक से तुल्य होता है, किन्तु अवगाहना, वर्णादि तथा मति अज्ञान, श्रुतअज्ञान के एवं अचक्षुदर्शन की पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य नहीं होता है, क्योंकि पृथ्वीकायिक की स्थिति संख्यातवर्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की होती है, यह बात पहले समुच्चय पृथ्वीकायिकों की वक्तव्यता के प्रसंग में कही जा चुकी है। जघन्य स्थिति वाले पृथ्वीकायिक की तरह उत्कृष्ट स्थिति वाले पृथ्वीकायिक के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

जहण्णगुणकालगाणं भंते! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णगुणकालगाणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?'

गोयमा! जहण्णगुणकालए पुढविकाइए जहण्णगुणकालयस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, कालवण्ण पज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसण पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणकालए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं पंच वण्णा दो गंधा पंच रसा अट्ठ फासा भाणियव्वा।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण काला एक पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य गुण काले पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवशिष्ट वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एवं दो अज्ञानों और अचक्षुदर्शन की पर्यायों से भी षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों के पर्यायों के विषय में कथन करना चाहिए।

मध्यम (अजघन्य-अनुत्कृष्ट) गुण काले पृथ्वीकायिक जीवों की पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार पृथक्-पृथक् जघन्य, मध्यम और उत्कृष्टगुण वाले पांच वर्णों, दो गन्धों, पांच रसों और आठ स्पर्शों से युक्त पृथ्वीकायिकों की पर्यायों के विषय में भी पूर्वोक्त सूत्रानुसार कह देना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - जैसे जघन्य और उत्कृष्ट गुण काले वर्ण आदि का स्थान एक ही होता है, उनमें न्यूनाधिकता का संभव नहीं, उस प्रकार से मध्यम गुण कृष्णवर्ण का स्थान एक नहीं है। एक अंश वाला काला वर्ण आदि जघन्य होता है और सर्वाधिक अंशों वाला काला वर्ण आदि उत्कृष्ट कहलाता है। इन दोनों के मध्य में काले वर्ण आदि के अनन्त विकल्प होते हैं। जैसे - दो गुण काला, तीन गुण काला, चार गुण काला, दस गुण काला, संख्यात गुण काला, असंख्यात गुण काला, अनन्त गुण काला। इसी प्रकार अन्य वर्णों तथा गन्ध, रस और स्पर्शों के बारे में समझ लेना चाहिए। अतएव जघन्य गुण काले से ऊपर और उत्कृष्ट गुण काले से नीचे काले वर्ण के मध्यम पर्याय अनन्त हैं। तात्पर्य यह है कि जघन्य और उत्कृष्ट गुण वाले काले आदि वर्ण रस इत्यादि का पर्याय एक है, किन्तु मध्यम गुण काले वर्ण आदि के पर्याय अनन्त हैं। यही कारण है कि दो पृथ्वीकायिक जीव यदि मध्यम गुण काले वर्ण हों, तो भी उनमें अनन्त गुणहीनता और अधिकता हो सकती है। इसी अभिप्राय से यहाँ स्वस्थान में भी सर्वत्र षट्स्थानपतित न्यूनाधिकता बताई गई है। इसी प्रकार आगे भी सर्वत्र षट्स्थानपतित समझ लेना चाहिए।

जहण्णमइअण्णाणीणं भंते! पुढविकाइयाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - हे भगवन्! जघन्य मति अज्ञानी पृथ्वीकायिकों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य मति अज्ञानी पृथ्वीकायिकों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णमइअण्णाणीणं पुढविकाइयाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णमइअण्णाणी पुढविकाइए जहण्णमइअण्णाणिस्स पुढविकाइयस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, मइअण्णाण पज्जवेहिं तुल्ले सुयअण्णाण पज्जवेहिं अचक्खुदंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसमइअण्णाणी वि। अजहण्णमणुक्कोस मइअण्णाणी वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं सुयअण्णाणी वि अचक्खुदंसण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोस मइअण्णाणी वि। अजहण्णमणुक्कोस मइअण्णाणी वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं सुयअण्णाणी वि अचक्खुदंसणी वि एवं चेव एवं जाव वणप्फइकाइयाणं॥ २६३॥

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य मति अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य मति अज्ञानी पृथ्वीकायिक, दूसरे जघन्य मति अज्ञानी पृथ्वीकायिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। मति अज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है किन्तु श्रुत अज्ञान के पर्यायों तथा अचक्षु दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट मति अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों की पर्यायों के विषय में कथन करना चाहिए।

अजघन्य अनुत्कृष्ट मति अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों की पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि यह स्वस्थान अर्थात् मति अज्ञान की पर्यायों में भी षट्स्थानपतित है।

जिस प्रकार जघन्य मति अज्ञानी पृथ्वीकायिक जीवों की पर्यायों के विषय में कहा गया है। उसी प्रकार श्रुत अज्ञानी तथा अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक जीवों की पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।

जिस प्रकार जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम, मति अज्ञानी, श्रुतअज्ञानी एवं अचक्षुदर्शनी पृथ्वीकायिक की पर्यायों के विषय में कहा गया है। उसी प्रकार अप्कायिक से लेकर यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए।

विवेचन - पूर्वोक्त पृथ्वीकायिक आदि में दो अज्ञान और अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा की गई है क्योंकि पृथ्वीकायिक आदि में सभी मिथ्यादृष्टि होते हैं, इनमें सम्यक्त्व नहीं होता और न सम्यग्दृष्टि जीव पृथ्वीकायिकादि में उत्पन्न होता है। अतएव उनमें दो अज्ञान ही पाए जाते हैं। इसी कारण यहाँ दो अज्ञानों की ही प्ररूपणा की गई है। इसी प्रकार पृथ्वीकाय में चक्षुरिन्द्रिय का अभाव होने से चक्षुदर्शन भी नहीं होता इसलिए यहाँ केवल अचक्षुदर्शन की ही प्ररूपणा की गई है।

पृथ्वीकायिकों की तरह अन्य एकेन्द्रियों का पर्याय विषयक निरूपण सूत्र में बताये अनुसार पृथ्वीकायिक सूत्र की तरह अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीवों के जघन्य, उत्कृष्ट एवं मध्यम, द्रव्य, प्रदेश, अवगाहना, स्थिति, वर्णादि तथा ज्ञान-अज्ञानादि की अपेक्षा से पर्यायों की यथायोग्य हीनाधिकता समझ लेनी चाहिए।

जघन्य आदि अवगाहना वाले बेइन्द्रियों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले बेइन्द्रिय जीवों की कितने पर्याय कहे गए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले बेइन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ- 'जहण्णोगाहणगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णोगाहणए बेइंदिए जहण्णोगाहणगस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसण पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोसोगाहणए वि, णवरं णाणा णत्थि। अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए जहा जहण्णोगाहणए, णवरं सट्ठाणे ओगाहणाए चउट्ठाणवडिए।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले बेइन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला बेइन्द्रिय, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले बेइन्द्रिय जीव से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य हैं, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हैं, वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श के पर्यायों, दो ज्ञानों, दो अज्ञानों तथा अचक्षु दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले बेइन्द्रिय जीवों का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। किन्तु उत्कृष्ट अवगाहना वाले में ज्ञान नहीं होता, इतना अन्तर है।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले बेइन्द्रिय जीवों की पर्यायों के विषय में जघन्य अवगाहना वाले बेइन्द्रिय जीवों की पर्यायों की तरह कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

विवेचन - मध्यम अवगाहना वाला एक बेइन्द्रिय, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले बेइन्द्रिय से अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य नहीं होता, अपितु चतुःस्थानपतित होता है, क्योंकि मध्यम अवगाहना सब एक-सी नहीं होती, एक मध्यम अवगाहना दूसरी मध्यम अवगाहना से संख्यात भाग हीन, असंख्यात भाग हीन, संख्यात गुण हीन या असंख्यात गुण हीन तथा इसी प्रकार चारों प्रकार से अधिक भी हो सकती है। मध्यम अवगाहना अपर्याप्त अवस्था के प्रथम समय के बाद ही प्रारम्भ हो जाती है। अतएव अपर्याप्त दशा में भी उसका सद्भाव होता है। इस कारण सास्वादन सम्यक्त्व भी मध्यम अवगाहना के समय संभव है। इसी से यहाँ दो ज्ञानों का भी सद्भाव हो सकता है। जिन बेइन्द्रियों जीवों में सास्वादन सम्यक्त्व नहीं होता, उनमें दो अज्ञान होते हैं।

जहण्णठिइयाणं भंते! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले बेइन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले बेइन्द्रियों जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णठिइयाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?'

गोयमा! जहण्णठिइए बेइंदिए जहण्णठिइयस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसण पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसठिइए वि, णवरं दो णाणा अब्भहिया। अजहण्णमणुक्कोसठिइए जहा उक्कोसठिइए, णवरं ठिईए तिट्ठाणवडिए।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले बेइन्द्रिय के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला बेइन्द्रिय, दूसरे जघन्य स्थिति वाले बेइन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है तथा वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो अज्ञानों एवं अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले बेइन्द्रिय जीवों का भी पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि इनमें दो ज्ञान अधिक कहना चाहिए।

जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले बेइन्द्रिय जीवों की पर्याय के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार मध्यम स्थिति वाले बेइन्द्रिय जीवों के पर्याय के विषय में कहना चाहिए। अन्तर इतना ही है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है।

विवेचन - जघन्य स्थिति वाले बेइन्द्रिय जीवों में दो अज्ञान ही पाए जाते हैं, दो ज्ञान नहीं, क्योंकि जघन्य स्थिति वाला बेइन्द्रिय जीव लब्धि अपर्याप्तक (अपर्याप्त अवस्था में मरने वाला) होता है, लब्धि अपर्याप्तकों के सास्वादन सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता, इसका कारण यह है कि लब्धि अपर्याप्तक जीव अत्यन्त संक्लिष्ट होता है और सास्वादन सम्यक्त्व किंचित् शुभ परिणाम रूप है। अतएव सास्वादन सम्यग्दृष्टि का जघन्य स्थिति वाले बेइन्द्रिय रूप में उत्पाद नहीं होता।

उत्कृष्ट स्थिति वाले बेइन्द्रिय जीवों में सास्वादन सम्यक्त्व वाले जीव भी उत्पन्न हो सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतएव जो वक्तव्यता जघन्य स्थितिक बेइन्द्रियों के पर्यायविषय में कही है, वही उत्कृष्ट स्थिति वाले बेइन्द्रियों की भी समझनी चाहिए, किन्तु उनमें दो ज्ञानों के पर्यायों की भी प्ररूपणा करना चाहिए।

मध्यम स्थिति वाले बेइन्द्रियों की वक्तव्यता उत्कृष्ट स्थिति वाले बेइन्द्रियों के समान समझनी चाहिए, किन्तु इनमें स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित कहना चाहिए, क्योंकि सभी मध्यम स्थिति वालों की स्थिति तुल्य नहीं होती।

जहण्णगुणकालगाणं भंते! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण काले वर्ण वाले बेइन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण काले बेइन्द्रियों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णगुणकालगाणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णगुणकालए बेइंदिए जहण्णगुणकालगस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, कालवण्ण पज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहि वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं दोहिं अण्णाणेहिं अचक्खुदंसण पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणकालए वि। अजहण्णमणुक्कोस गुणकालए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं पंच वण्णा, दो गंधा, पंच रसा, अट्ठ फासा भाणियव्वा।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि 'जघन्य गुण काले बेइन्द्रियों के अनन्त पर्याय कहे हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण काला बेइन्द्रिय जीव, दूसरे जघन्य गुण काले बेइन्द्रिय जीव से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित (न्यूनाधिक) है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, कृष्णवर्ण पर्याय की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्णों तथा गंध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से दो ज्ञान, दो अज्ञान एवं अचक्षुदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले बेइन्द्रियों के पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट गुण काले बेइन्द्रियों जीवों का पर्यायविषयक कथन भी इस प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी तरह पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्शों का पर्याय विषयक कथन करना चाहिए।

विवेचन - एक जघन्यगुण काला, दूसरे जघन्य गुण काले से स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, क्योंकि बेइन्द्रिय की स्थिति संख्यात वर्षों की होती है, इसलिए वह चतु:स्थानपतित नहीं हो सकता।

जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते! बेइंदियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ - 'जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं बेइंदियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णाभिणिबोहियणाणी बेइंदिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स बेइंदियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्णगंधरस-फासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि। अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि, एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं सुयणाणी वि, मइ अण्णाणी वि, सुयअण्णाणी वि, अचक्खुदंसणी वि, णवरं जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दंसणं तत्थ णाणा वि, अण्णाणा वि। एवं तेइंदियाण वि। चउरिंदियाण वि, एवं चेव, णवरं चक्खुदंसणं अब्भहियं॥ २६४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित है, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा अचक्षुदर्शन पर्यायों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय जीवों की पर्यायों के विषय में कहना चाहिए।

मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार से करना चाहिए किन्तु वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार श्रुतज्ञानी, मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी और अचक्षुदर्शनी बेइन्द्रिय जीवों की पर्यायों के विषय में कहना चाहिए। विशेषता यह है कि जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ अज्ञान नहीं होते, जहाँ अज्ञान होता है, वहाँ ज्ञान नहीं होते। जहाँ दर्शन होता है, वहाँ ज्ञान भी हो सकते हैं और अज्ञान भी।

बेइन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कई अपेक्षाओं से कहा गया है, उसी प्रकार तेइन्द्रिय के पर्याय-विषय में भी कहना चाहिए।

चउरिन्द्रिय जीवों की पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। अन्तर केवल इतना है कि इनके चक्षुदर्शन अधिक है। शेष सब बातें बेइन्द्रिय की तरह हैं।

विवेचन - मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय की और सब प्ररूपणा तो जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी के समान ही है, किन्तु विशेषता इतनी ही है कि वह स्वस्थान में भी षट्स्थानपतित हीनाधिक होता है। जैसे उत्कृष्ट और जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय का एक-एक ही पर्याय है, वैसे मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी बेइन्द्रिय का नहीं, क्योंकि उसके तो अनन्त हीनाधिक रूप पर्याय होते हैं। तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों की प्ररूपणा यथायोग्य बेइन्द्रियों की तरह समझ लेना चाहिए।

प्रस्तुत सूत्रों में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय के अनन्त पर्यायों की सयुक्तिक प्ररूपणा की गई है।

जघन्य आदि अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रियों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ- 'जहण्णोगाहणगाणं पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता'?

गोयमा! जहण्णोगाहणए पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं जहण्णोगाहणयस्स पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं, दोहिं णाणेहिं, दोहिं अण्णाणेहिं, दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, णवरं तिहिं णाणेहिं, तिहिं अण्णाणेहिं तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए। जहा उक्कोसोगाहणए तहा अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि, णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा किस अपेक्षा से कहा जाता कि 'जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो ज्ञानों, दो अज्ञानों और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार कहना चाहिए, विशेषता इतनी ही है कि तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्-स्थानपतित है।

जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का पर्यायविषयक कथन किया गया है, उसी प्रकार अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का पर्याय विषयक कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि ये अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हैं तथा स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा त्रिस्थानपतित - जघन्य अवगाहना वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित होता है, चतुःस्थानपतित नहीं, क्योंकि जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच संख्यात वर्षों की आयु वाला ही होता है, असंख्यातवर्षों की आयु वाले के जघन्य अवगाहना नहीं होती। इसी कारण यहाँ जघन्य अवगाहनावान् तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित कहा गया है, जिसका स्वरूप पहले बताया जा चुका है।

जघन्य अवगाहना वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय में अवधि या विभंगज्ञान नहीं - जघन्य अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त होता है और अपर्याप्त होकर अल्पकाय वाले जीवों में उत्पन्न होता है, इसलिए उसमें अवधिज्ञान या विभंगज्ञान संभव नहीं। इस कारण से यहाँ दो ज्ञानों और दो अज्ञानों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही उल्लेख है। यद्यपि आगे कहा जाएगा कि कोई जीव विभंगज्ञान के साथ नरक से निकल कर संख्यात वर्षों की आयु वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होता है, किन्तु वह महाकायवालों में ही उत्पन्न हो सकता है, अल्पकाय वालों में नहीं। इसलिए कोई विरोध नहीं समझना चाहिए। अवगाहना में षट्स्थानपतित होता ही नहीं है।

मध्यम अवगाहना वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच अवगाहना एवं स्थिति की दृष्टि से चतुःस्थानपतित- चूंकि मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार की होती है, अतः उसमें संख्यात-असंख्यात गुणहीनाधिकता हो सकती है तथा मध्यम अवगाहना वाला असंख्यात वर्ष की आयु वाला भी हो सकता है, इसलिए स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतुःस्थानपतित हो सकता है।

जहण्णठिइयाणं भंते! पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जहण्णठिइयाणं पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?'

गोयमा! जहण्णठिइए पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए जहण्णठिइयस्स पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं, दोहिं अण्णाणेहिं, दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

उक्कोसठिइए वि एवं चेव, णवरं दो णाणा, दो अण्णाणा, दो दंसणा।

अजहण्णमणुक्कोसठिइए वि एवं चेव, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए। तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा, तिण्णि दंसणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि 'जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला पंचेन्द्रिय तिर्यंच दूसरे जघन्य स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुः-स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों, दो अज्ञान एवं दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्कृष्ट स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का पर्याय विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि इसमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शनों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का पर्याय विषयक कथन भी इसी प्रकार पूर्ववत् करना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से यह चतु:स्थानपतित हैं तथा इनमें तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की प्ररूपणा करनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायों की प्ररूपणा की गयी है।

उत्कृष्ट स्थिति वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच तीन पल्योपम की स्थिति वाले होते हैं। अतः उनमें दो ज्ञान दो अज्ञान होते हैं। जो ज्ञान वाले होते हैं, वे वैमानिक की आयु बांध लेते हैं, तब दो ज्ञान होते हैं। इस आशय से उसमें दो ज्ञान अथवा दो अज्ञान कहे गये हैं।

मध्यम स्थिति वाला तिर्यंच पंचेन्द्रिय संख्यात अथवा असंख्यात वर्ष की आयु वाला भी हो सकता है, क्योंकि एक समय कम तीन पल्योपम की आयु वाला भी मध्यम स्थितिक कहलाता है। अतः वह चतु:स्थानपतित होता है।

जहण्णगुणकालगाणं भंते! पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण काला पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण काला पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणकालगाणं पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकालए पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए जहण्णगुणकालगस्स पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण-गंध-रस-फासपज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं पंच वण्णा, दो गंधा, पंच रसा, अट्ठ फासा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि "जघन्य गुण काला पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अनन्त पर्याय हैं?"

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण काला पंचेन्द्रिय तिर्यंच, दूसरे जघन्य गुण काले पंचेन्द्रिय तिर्यंच से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है, शेष वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के तथा तीन ज्ञान, तीन अज्ञान एवं तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के पर्यायों के विषय में भी समझना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि वे स्वस्थान काले गुण पर्याय में भी षट्स्थानपतित हैं।

इसी प्रकार पांचों वर्णों, दो गन्धों, पांच रसों और आठ स्पर्शों से युक्त तिर्यंच पंचेन्द्रियों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए।

जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते! पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णाभिणिबोहियणाणी पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियणाणपज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, चक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, अचक्खुदंसणपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि, णवरं ठिईए तिट्ठाणवडिए, तिण्णि णाणा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णि दंसणा, सट्ठाणे तुल्ले, सेसेसु छट्ठाणवडिए। अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए। सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं सुयणाणी वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि 'जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, श्रुतज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय-तिर्यंचों का पर्याय विषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है, तीन ज्ञान, तीन दर्शन तथा स्वस्थान में तुल्य है, शेष सब में षट्स्थानपतित है।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यञ्च पंचेन्द्रियों का पर्याय विषयक कथन, उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की तरह समझना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जिस प्रकार जघन्यादि विशिष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यंचपंचेन्द्रिय के पर्यायों के विषय में कहा है, उसी प्रकार जघन्यादि-युक्त श्रुतज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रियों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायों की प्ररूपणा की गयी है।

आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित - असंख्यात वर्ष की आयु वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंच में भी अपनी भूमिका के अनुसार जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान पाए जाते हैं। इसी प्रकार संख्यात वर्ष की आयु वालों में जघन्य मति श्रुत ज्ञान संभव होने से यहाँ स्थिति की अपेक्षा से इसे चतुःस्थानपतित कहा गया है।

मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की अपेक्षा से षट्स्थानपतित - क्योंकि आभिनिबोधिक ज्ञान के तरतमरूप पर्याय अनन्त होते हैं। अतएव उनमें अनन्त गुणहीनता अधिकता भी हो सकती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णोहिणाणीणं भंते! पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं केवइय पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रियतिर्यंचयोनिक जीवों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोहिणाणीणं पंचिंदिय तिरिक्खजोणियाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णोहिणाणी पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए जहण्णोहिणाणिस्स पंचिंदिय तिरिक्खजोणियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं आभिणिबोहियणाणसुयणाण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, ओहिणाणपज्जवेहिं तुल्ले। अण्णाणा णत्थि। चक्खुदंसण पज्जवेहिं अचक्खुदंसणपज्जवेहिं ओहिदंसणपज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोसोहिणाणी वि।

अजहण्णुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य, जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि, चक्खुदंसणी अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहिय-णाणी, ओहिदंसणी जहा ओहिणाणी, जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि अत्थि त्ति भाणियव्वं ॥ २६४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि 'जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक, दूसरे जघन्य अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों और आभिनिबोधिक ज्ञान तथा श्रुत ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है। इसमें अज्ञान नहीं कहना चाहिए। चक्षुदर्शन-पर्यायों और अचक्षुदर्शन-पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों का पर्याय विषयक कथन करना चाहिए।

मध्यम अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की भी पर्यायप्ररूपणा इसी प्रकार करनी चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जिस प्रकार आभिनिबोधिक ज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता है, उसी प्रकार मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी की है, जैसी अवधिज्ञानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों की पर्यायों की प्ररूपणा है, वैसी ही विभंगज्ञानी की भी है। चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता आभिनिबोधिक ज्ञानी की तरह है। अवधिदर्शनी की पर्याय-वक्तव्यता अवधिज्ञानी की तरह है। विशेष बात यह है कि जहाँ ज्ञान हैं, वहाँ अज्ञान नहीं है, जहाँ अज्ञान हैं, वहाँ ज्ञान नहीं हैं, जहाँ दर्शन हैं, वहाँ ज्ञान भी हो सकते हैं और अज्ञान भी हो सकते हैं, ऐसे कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट अवधिज्ञानी, विभंगज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रियों की विभिन्न अपेक्षाओं से पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

अजघन्य अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवधिज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्वस्थान में षट्स्थानपतित - इसका मतलब है-वह स्वस्थान अर्थात् मध्यम अवधि ज्ञान में षट्स्थानपतित होता है। एक मध्यम अवधिज्ञानी दूसरे मध्यम-अवधिज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय से षट्स्थानपतित हीन और अधिक हो सकता है।

क्योंकि अवधि ज्ञान और विभंग ज्ञान असंख्यात वर्ष की आयु वाले को नहीं होता, अतः विभंगज्ञानी तिर्यंच पंचेन्द्रिय स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित नियम से होता ही है।

जघन्य आदि अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ - 'जहण्णोगाहणगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?'

गोयमा! जहण्णोगाहणए मणुस्से जहण्णोगाहणस्स मणुसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए तिट्ठाणवडिए वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं तिहिं णाणेहिं, दोहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, णवरं ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्जइभागहीणे, अह अब्भहिए असंखिज्जइभागअब्भहिए। दो णाणा दो अण्णाणा दो दंसणा।

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए ठिईए चउट्ठाणवडिए, आइल्लेहिं चउहिं णाणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलणाण पज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए केवलदंसण पज्जवेहिं तुल्ले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण कहते हैं कि 'जघन्य अवगाहना वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है तथा अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से एवं तीन ज्ञान, दो अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो असंख्यात भाग हीन होता है, यदि अधिक हो तो असंख्यात भाग अधिक होता है। उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन होते हैं।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले मनुष्यों का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा षट्स्थानपतित है, केवल ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा तीन अज्ञान और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य के पर्यायों की विविध अपेक्षाओं से प्ररूपणा की गई है।

जघन्य-अवगाहना युक्त मनुष्य स्थिति की दृष्टि से त्रिस्थानपतित - जघन्य अवगाहना वाला मनुष्य नियम से संख्यात वर्ष की आयु वाला ही होता है, इस दृष्टि से वह त्रिस्थानपतित हीनाधिक ही होता है, अर्थात् वह असंख्यात भाग और संख्यात भाग एवं संख्यात गुण हीनाधिक ही होता है।

जघन्य-अवगाहना युक्त मनुष्यों में तीन ज्ञानों और दो अज्ञानों की प्ररूपणा - किसी तीर्थंकर का अथवा अनुत्तरौपपातिक देव का अप्रतिपाती अवधिज्ञान के साथ जघन्य अवगाहना में उत्पाद होता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, तब जघन्य अवगाहना में भी अवधिज्ञान पाया जाता है। अतएव यहाँ तीन ज्ञानों का कथन किया गया है, किन्तु नरक से निकले हुए जीव का जघन्य अवगाहना में उत्पाद नहीं होता, क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए जघन्य अवगाहना में विभंग ज्ञान नहीं पाया जाता, इस कारण यहाँ मूलपाठ में दो अज्ञानों की ही प्ररूपणा की गई है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य की स्थिति की अपेक्षा से हीनाधिक तुल्यता - उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों की अवगाहना तीन गव्यूति (कोस) की होती है और उनकी स्थिति होती है - जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम तीन पल्योपम की और उत्कृष्ट पूरे तीन पल्योपम की। तीन पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग, तीन पल्योपमों का असंख्यातवाँ ही भाग है। अतएव पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग कम तीन पल्योपम वाला मनुष्य तीन पल्योपम की-स्थिति वाले मनुष्य से असंख्यात भाग हीन होता है और पूर्ण तीन पल्योपम वाला मनुष्य उससे असंख्यात भाग अधिक स्थिति वाला होता है। इनमें अन्य किसी प्रकार की हीनता या अधिकता संभव नहीं है। इस प्रकार के किन्हीं दो मनुष्यों में कदाचित् स्थिति की तुल्यता भी होती है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों में दो ज्ञान और दो अज्ञान की प्ररूपणा - उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्यों में मति और श्रुत, ये दो ही ज्ञान अथवा मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान, ये दो ही अज्ञान और दो ही दर्शन पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि उत्कृष्ट अवगाहना वाले मनुष्य असंख्यात वर्ष की आयु वाले ही होते हैं और असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य में न तो अवधिज्ञान ही हो सकता है और न ही विभंगज्ञान, क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है।

मध्यम अवगाहना वाले मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित - मध्यम अवगाहना संख्यात वर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है और असंख्यात वर्ष की आयु वाले की भी हो सकती है। असंख्यात वर्ष की आयु वाला मनुष्य भी एक या दो गव्यूत (गाऊ) की अवगाहना वाला होता है। अतः अवगाहना की अपेक्षा से इसे चतुःस्थानपतित कहा गया है।

चारों ज्ञानों की अपेक्षा से मध्यम-अवगाहना युक्त मनुष्य षट्स्थानपतित - मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यव, ये चारों ज्ञान द्रव्य आदि की अपेक्षा रखते हैं तथा क्षयोपशमजन्य हैं। क्षयोपशम में विचित्रता होती है, अतएव उनमें तरतमता होना स्वाभाविक है। इसी कारण चारों ज्ञानों की अपेक्षा से मध्यम अवगाहना युक्त मनुष्यों में षट्स्थानपतित हीनाधिकता बताई गई है।

केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से वे तुल्य हैं - चार घाती कर्मों के आवरणों के पूर्णतया क्षय से उत्पन्न होने वाले केवल ज्ञान में किसी प्रकार की तरतमता नहीं होती, इसलिए केवल ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से मध्यम अवगाहना युक्त मनुष्य तुल्य हैं।

जहण्णठिइयाणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णठियाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठिइए मणुस्से जहण्णा ठिइयस्स मणुसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं दोहिं अण्णाणेहिं, दोहि दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोसठिइए वि, णवरं दो णाणा, दो अण्णाणा, दो दंसणा।

अजहण्णमणुक्कोसठिइए वि एवं चेव, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, आइल्लेहिं चउहिं णाणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलणाण पज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलदंसण पज्जवेहिं तुल्ले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला मनुष्य, दूसरे जघन्य स्थिति वाले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से, दो अज्ञानों और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन पाए जाते हैं।

मध्यम स्थिति वाले मनुष्यों का पर्याय विषयक कथन भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा आदि के चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवलज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, एवं तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्य के पर्यायों की विभिन्न अपेक्षाओं से प्ररूपणा की गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों में दो अज्ञान ही क्यों ? – सिद्धान्तानुसार सम्मूर्च्छिम मनुष्य ही जघन्य स्थिति के होते हैं और वे नियमतः मिथ्यादृष्टि होते हैं। इस कारण जघन्य स्थिति वाले मनुष्यों में दो अज्ञान ही हो सकते हैं, ज्ञान नहीं। अतः वहाँ ज्ञानों का उल्लेख नहीं किया गया है।

उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों में दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन क्यों? – उत्कृष्ट स्थिति वाले मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम की होती है और वे युगलिक होते हैं। अतएव उनमें दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ही पाए जाते हैं। जो ज्ञान वाले होते हैं वे वैमानिक की आयु का बन्ध करते हैं, तब उनमें दो ज्ञान होते हैं। असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में अवधिज्ञान, अवधिदर्शन या विभंगज्ञान का अभाव होता है। इस कारण इनमें दो ज्ञानों, दो अज्ञानों और दो दर्शनों का उल्लेख किया गया है, तीन ज्ञानों, तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों का नहीं।

जहण्णगुणकालगाणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण काले मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण काले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुण कालगाणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकालए मणुस्से जहण्णगुणकालगस्स मणुसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिइए चउट्ठाणवडिए, कालवण्ण पज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, चउहिं णाणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलणाण पज्जवेहिं तुल्ले, तिहिं अण्णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, केवलदंसण, पज्जवेहिं तुल्ले।

एवं उक्कोसगुणकालए वि।

अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं पंच वण्णा, दो गंधा, पंच रसा, अट्ठ फासा भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जघन्य गुण काले मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण काला मनुष्य दूसरे जघन्य गुण काले मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है, काला (कृष्ण) वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा शेष वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, चार ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, केवल ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा तीन अज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और केवल दर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी समझना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले मनुष्यों का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेष यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

इसी प्रकार पांच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस एवं आठ स्पर्श वाले मनुष्यों का पर्याय विषयक कथन करना चाहिए।

विवेचन - मध्यम गुण काले वर्ण के अनन्त तरतमरूप होते हैं, इस कारण मध्यम गुण काला मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित होता है।

जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णाभिणिबोहियणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णाभिबोहियणाणी मणुस्से जहण्णाभिणिबोहियणाणिस्स मणुसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, आभिणिबोहियणाण पज्जवेहिं तुल्ले, सुयणाण पज्जवेहिं दोहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसाभिणिबोहियणाणी वि, णवरं आभिणिबोहियणाण पज्जवेहिं तुल्ले, ठिईए तिट्ठाणवडिए, तिहिं णाणेहिं, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

अजहण्णमणुक्कोसाभिणिबोहियणाणी जहा उक्कोसाभिणिबोहियणाणी, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए, सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं सुयणाणी वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य दूसरे जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, किन्तु श्रुत ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से और दो दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों की पर्यायों के विषय में जानना चाहिए। विशेष यह है कि वह आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा तीन ज्ञानों और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों की तरह ही कहना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हैं तथा स्वस्थान में षट्स्थानपतित हैं।

इसी प्रकार जघन्य उत्कृष्ट मध्यम श्रुत ज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में सारा पाठ कहना चाहिए।

जहण्णोहिणाणीणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवधि ज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवधि ज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्टेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोहिणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णोहिणाणी मणुस्से जहण्णोहिणाणीस्स मणुसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं दोहिं णाणेहिं छट्ठाणवडिए ओहि णाण पज्जवेहिं तुल्ले मणपज्जवणाण पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, तिहिं दंसणेहिं छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोसोहिणाणी वि।

अजहण्णामणुक्कोसोहिणाणी वि एवं चेव, णवरं ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि जघन्य अवधि ज्ञानी मनुष्यों के अनन्त-पर्याय कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवधि ज्ञानी मनुष्य, दूसरे जघन्य अवधि ज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों एवं दो ज्ञानों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवधिज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, मनःपर्यवज्ञान के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और तीन दर्शनों की अपेक्षा से षट्- स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवधि ज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

इसी प्रकार मध्यम अवधि ज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि - 'अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जहा ओहिणाणी तहा मणपज्जवणाणी वि भाणियव्वे, णवरं ओगाहणट्ठयाए तिट्ठाणवडिए। जहा आभिणिबोहियणाणी तहा मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी वि भाणियव्वे। जहा ओहिणाणी तहा विभंगणाणी वि भाणियव्वे, चक्खुदंसणी, अचक्खुदंसणी य जहा आभिणिबोहियणाणी, ओहिदंसणी जहा ओहिणाणी। जत्थ णाणा तत्थ अण्णाणा णत्थि, जत्थ अण्णाणा तत्थ णाणा णत्थि, जत्थ दंसणा तत्थ णाणा वि अण्णाणा वि।

भावार्थ - जैसा जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में कहा गया है, वैसा ही जघन्यादि युक्त मनःपर्यायज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से वह त्रिस्थानपतित है। जैसा जघन्यादि युक्त आभिनिबोधिक ज्ञानियों के पर्यायों के विषय में कहा गया है, वैसा ही मति-अज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए। जिस प्रकार जघन्यादि विशिष्ट अवधिज्ञानी मनुष्यों की पर्यायों के विषय में कथन किया गया है, उसी प्रकार विभंगज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में भी कथन कर देना चाहिए।

चक्षु दर्शनी और अचक्षु दर्शनी मनुष्यों का पर्यायविषयक कथन आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के समान है। अवधि दर्शनी का पर्यायविषयक कथन अवधि ज्ञानी मनुष्यों के पर्यायविषयक कथन के समान है। जहाँ ज्ञान होते हैं, वहाँ अज्ञान नहीं होते हैं, जहाँ अज्ञान होते हैं, वहाँ ज्ञान नहीं होते और जहाँ दर्शन हैं, वहाँ ज्ञान एवं अज्ञान दोनों में से कोई भी संभव है।

केवलणाणीणं भंते! मणुस्साणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! केवलज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! केवलज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'केवलणाणीणं मणुस्साणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?'

गोयमा! केवलणाणी मणुस्से केवलणाणिस्स मणुसस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तिट्ठाणवडिए, वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, केवलणाणपज्जवेहिं केवलदंसणपज्जवेहिं च तुल्ले। एवं केवलदंसणी वि मणुस्से भाणियव्वे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! केवलज्ञानी मनुष्यों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! केवलज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि 'केवलज्ञानी मनुष्यों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक केवलज्ञानी मनुष्य, दूसरे केवलज्ञानी मनुष्य से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की दृष्टि से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एवं केवलज्ञान के पर्यायों और केवलदर्शन के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है।

जैसे केवलज्ञानी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में कहा गया है, वैसे ही केवलदर्शनी मनुष्यों के पर्यायों के विषय में कह देना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यम ज्ञान आदि वाले मनुष्यों के पर्यायों की विविध अपेक्षाओं से प्ररूपणा की गई है।

जघन्य और उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्यों में ज्ञानादि का अन्तर - जघन्य आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य के प्रबल ज्ञानावरणीय कर्म का उदय होने से उसमें अवधिज्ञान और मनः पर्यायज्ञान नहीं होते जबकि उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य में तीन ज्ञान और तीन दर्शन होते हैं।

उत्कृष्ट आभिनिबोधिक मनुष्य त्रिस्थानपतित - क्योंकि उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य नियमतः संख्यातवर्ष की आयु वाला ही होता है। संख्यातवर्ष की आयु वाला मनुष्य स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित ही होता है, किन्तु जो असंख्यातवर्ष की आयु वाला होता है, उसमें भवस्वभाव के कारण उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञान नहीं होता।

मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य स्वस्थान में षट्स्थानपतित - जैसे एक उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी मनुष्य, दूसरे उत्कृष्ट आभिनिबोधिक ज्ञानी से तुल्य होता है, वैसे मध्यम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिनिबोधिक ज्ञानी, मध्यम आभिनिबोधिक ज्ञानी के तुल्य ही हो, ऐसा नियम नहीं है। इसलिए उनमें स्वस्थान में षट्स्थानपतित हीनाधिकता संभव है।

जघन्य और उत्कृष्ट अवधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित क्यों? - मनुष्यों में सर्वजघन्य अवधिज्ञान पारभविक (पूर्वभव से साथ आया हुआ) नहीं होता, किन्तु वह तद्भव (उसी भव) सम्बन्धी होता है और वह भी पर्याप्त-अवस्था में होता है किन्तु अपर्याप्त अवस्था में उसके योग्य विशुद्धि नहीं होती है तथा उत्कृष्ट अवधिज्ञान भाव से चारित्रवान् मनुष्य को होता है। इस कारण जघन्य अवधिज्ञानी और उत्कृष्ट अवधिज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा त्रिस्थानपतित ही होते हैं, किन्तु मध्यम अवधिज्ञानी चथु:स्थानपतित होता है, क्योंकि मध्यम अवधिज्ञान पारभविक भी हो सकता है, अतएव अपर्याप्त अवस्था में भी संभव है।

स्थिति की अपेक्षा से जघन्यादि युक्त अवधिज्ञानी मनुष्य त्रिस्थानपतित क्यों? - अवधिज्ञान असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में संभव नहीं क्योंकि वे युगलिक होते हैं। वह संख्यातवर्ष की आयु वालों को ही होता है। अत: जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम अवधिज्ञानी मनुष्यों में संख्यात वर्ष की आयु की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हीनाधिकता ही हो सकती है, चतु:स्थानपतित नहीं।

जघन्यादि युक्त मन:पर्यवज्ञानी स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित - मन:पर्यायज्ञान चारित्रवान् मनुष्यों को ही होता है और चारित्रवान् मनुष्य संख्यातवर्ष की आयु वाले ही होते हैं। अत: जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट मन:पर्यायज्ञानी मानव स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित ही होते हैं।

केवलज्ञानी मनुष्य अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित क्यों और कैसे ? - यह कथन केवली समुद्घात की अपेक्षा से है, क्योंकि केवली समुद्घात करता हुआ केवलज्ञानी मनुष्य, अन्य केवली मनुष्यों की अपेक्षा असंख्यात गुणी अधिक अवगाहना वाला होता है और उसकी अपेक्षा अन्य केवली असंख्यात गुण हीन अवगाहना वाले होते हैं। अत: अवगाहना की दृष्टि से केवलज्ञानी मनुष्य चतु:स्थानपतित होते हैं।

स्थिति की अपेक्षा केवली मनुष्य त्रिस्थानपतित - सभी केवली संख्यात वर्ष की आयु वाले ही होते हैं, अतएव उनमें स्थिति की अपेक्षा चतु:स्थानपतित हीनाधिकता संभव नहीं है। इस कारण वे त्रिस्थानपतित हीनाधिक हैं।

वाणमंतरा जहा असुरकुमारा। एवं जोइसिय वेमाणिया, णवरं सट्ठाणे ठिईए तिट्ठाणवडिए भाणियव्वा। से तं जीवपज्जवा॥ २६५॥

भावार्थ - वाणव्यन्तर देवों में पर्यायों की प्ररूपणा असुरकुमार देवों के समान समझ लेनी चाहिए। ज्योतिषी देवों और वैमानिक देवों में पर्यायों की प्ररूपणा भी इसी प्रकार की समझनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विशेष बात यह है कि वे स्वस्थान में स्थिति की अपेक्षा से त्रिस्थानपतित हैं। यह जीव के पर्यायों की प्ररूपणा समाप्त हुई।

विवेचन - वाणव्यन्तर देवों के, ज्योतिषी देवों के और वैमानिक देवों के पर्यायों की प्ररूपणा - पूर्वोक्त सूत्रानुसार तीनों प्रकार के देवों के पर्यायों का कथन अतिदेशपूर्वक किया गया है। इस प्रकार जीव पर्याय संबंधी समस्त पृच्छाएं २१३८ बताई गई है।

उपर्युक्त पाठ में वैमानिकों के लिए असुरकुमारों का अतिदेश (भलावण) दिया गया है। इससे वैमानिक देवों के उत्कृष्ट अवधिज्ञान में स्थिति त्रिस्थान पतित होती है। (असुरकुमारों की भलावण देकर वैमानिकों में सर्वत्र स्थिति त्रिस्थान पतित कहना चाहिये ऐसा मूल पाठ में **'णवरं'** शब्द कह कर बताया गया है।)उत्कृष्ट अवधिज्ञान क्षेत्र की अपेक्षा तो अनुत्तर विमान के देवों को ही संभव है। जबकि उनमें परस्पर स्थिति में द्विस्थान पतित फर्क ही होता है। मूलपाठ में त्रिस्थान पतित फर्क बताया गया है इसका आशय आगमज्ञ महापुरुष इस प्रकार समझाते हैं - "यहाँ पर उत्कृष्ट अवधिज्ञान क्षेत्र व काल की अपेक्षा नहीं समझ कर द्रव्य व पर्यायों की अपेक्षा समझने से आगम पाठ की संगति हो सकती है। इस प्रकार का उत्कृष्ट अवधिज्ञान सातवें देवलोक के देवों के भी संभव हो सकने से त्रिस्थान पतित स्थिति के आगम पाठ में कोई भी बाधा नहीं आती है।" अतः इस प्रकार समझना चाहिये।

अजीव पर्याय

अजीव पज्जवा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - रूवि अजीव पज्जवा य अरूवि अजीव पज्जवा य ॥ २६६ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अजीव पर्याय कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! अजीव पर्याय दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. रूपी अजीव के पर्याय और २. अरूपी अजीव के पर्याय।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अजीव पर्याय के मुख्य दो भेदों का निरूपण किया गया है।

रूपी अजीव पर्याय और अरूपी अजीव पर्याय की परिभाषा - रूपी - जिसमें रूप (वर्ण) गन्ध, रस और स्पर्श हो, उसे रूपी कहते हैं। रूप आदि युक्त अजीव को रूपी अजीव कहते हैं। रूपी अजीव पुद्गल ही होता है, इसलिए रूपी अजीव के पर्याय का अर्थ हुआ-पुद्गल के पर्याय। **अरूपी** का अर्थ है - जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श का अभाव हो, जो अमूर्त हो। अतः अरूपी अजीव-पर्याय का अर्थ हुआ-अमूर्त्त अजीव के पर्याय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अरूपी अजीव पर्याय के भेद

अरूवि अजीव पज्जवा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! अरूवि अजीव पज्जवा दसविहा पण्णत्ता। तंजहा - धम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थिकायस्स पएसा, अहम्मत्थिकाए, अहम्मत्थिकायस्स देसे, अहम्मत्थिकायस्स पएसा, आगासत्थिकाए, आगासत्थिकायस्स देसे, आगासत्थिकायस्स पएसा, अद्धासमए॥ २६७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अरूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! अरूपी अजीव के पर्याय दस प्रकार कहे गये हैं - यथा - १. धर्मास्तिकाय २. धर्मास्तिकाय का देश ३. धर्मास्तिकाय के प्रदेश ४. अधर्मास्तिकाय ५. अधर्मास्तिकाय का देश ६. अधर्मास्तिकाय के प्रदेश ७. आकाशास्तिकाय ८. आकाशास्तिकाय का देश ९. आकाशास्तिकाय के प्रदेश और १०. अद्धासमय-काल।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अरूपी अजीव के पर्यायों का निरूपण किया गया है। जिनके भेदों का स्वरूप इस प्रकार हैं - **धर्मास्तिकाय** - धर्मास्तिकाय का असंख्यातप्रदेशों का सम्पूर्ण (अखण्डित) पिण्ड (अवयवी द्रव्य)। **धर्मास्तिकाय देश** - धर्मास्तिकाय का अर्द्ध आदि भाग। **धर्मास्तिकाय प्रदेश**- धर्मास्तिकाय के निरंश (सूक्ष्मतम) अंश। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय आदि के तीन तीन भेद समझ लेना चाहिए। अद्धासमय अप्रदेशी काल द्रव्य।

पर्यायों की प्ररूपणा के प्रसंग में यहाँ पर्यायों का कथन करना उचित था, उसके बदले द्रव्यों का कथन इसलिए किया गया है कि पर्याय और पर्यायी द्रव्य कथंचित् अभिन्न हैं, इस बात की प्रतीति हो। वस्तुतः धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय देश आदि पदों के उल्लेख से उन-उन धर्मास्तिकायादि के तीन तीन भेद तथा अद्धासमय के पर्याय ही विवक्षित हैं, द्रव्य नहीं।

अरूपी अजीव पर्याय के भेदों में - धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों के दस भेद किये हैं। यहाँ पर द्रव्यों की अगुरुलघु आदि पर्यायों को ही उपचार से द्रव्य कह दिया है। वास्तव में तो यहाँ पर 'तात्स्थ्यात् तद्‌धपदेशः' न्याय से पर्यायों की ही पृच्छा समझनी चाहिये।

'अरूपी अजीव पर्याय अनन्त होते हैं या नहीं?' यद्यपि अरूपी अजीवों के भी अनन्त अगुरुलघु आदि पर्यायें होने से अनन्त पर्याय हो सकते हैं तथापि ये पर्यायें वचन गोचर नहीं होने से एवं श्रद्धा मात्र से ही गम्य होती है (छद्मस्थ इन्हें समझ नहीं सकता) अतः द्रव्य क्षेत्रादि से उनके भेद प्रभेद नहीं बताये हैं। अगुरुलघु पर्यायें तो सभी द्रव्यों की आधार भूत एवं उनके द्रव्यत्व को टिकाये रखती है। **'धम्मत्थिकायस्स देसे'** - यह असमासान्त (व्यस्त) पद है। क्योंकि धर्मास्तिकाय आदि ३ द्रव्यों में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्पूर्ण एक ही द्रव्य रूप होने से यहाँ पर कल्पना से जो उसका अर्द्ध भाग, चतुर्थ भाग आदि होता है वह उसका 'देश' एवं उसका सूक्ष्मतम भाग 'प्रदेश' शब्द से विवक्षित है। एक ही द्रव्य होने से उसके अलग-अलग (जुदे जुदे) स्वतंत्र विभाग नहीं होते हैं।

रूपी अजीव पर्याय के भेद

रूवि अजीव पज्जवा णं भंते! कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! रूवि अजीव पज्जवा चउव्विहा पण्णत्ता। तंजहा - खंधा, खंध देसा, खंध पएसा, परमाणु पुग्गले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रूपी अजीव के पर्याय कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! रूपी अजीव के पर्याय चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा - १. स्कन्ध २. स्कन्ध देश ३. स्कन्ध प्रदेश और ४. परमाणु पुद्गल।

विवेचन - यहाँ पर रूपी अजीव पर्याय के भेदों में स्कन्ध देश, स्कन्ध प्रदेश, इस प्रकार भेद किये गये हैं। उनका आशय इस प्रकार समझना चाहिये - स्कन्ध के साथ में सम्बन्धित रहा हुआ ही उसका अर्द्ध चतुर्थ आदि विभाग को स्कन्ध देश कहते हैं तथा स्कन्ध के साथ में सम्बन्धित (जुड़ा हुआ) सूक्ष्मतम विभाग को स्कन्ध प्रदेश कहते हैं। स्कन्ध से असम्बन्धित पुद्गल या तो स्वतंत्र स्कन्ध (कम से कम दो प्रदेशी होने पर) या परमाणु के रूप में कहा जाता है। इस प्रकार धर्मास्तिकाय के देश प्रदेशों से स्कन्ध के देश प्रदेशों में विशेषता बताने के लिए वहाँ पर स्कन्ध देश, स्कन्ध प्रदेश ये समास युक्त पद दिये गये हैं। रूपी पुद्गलों के द्रव्य अनन्त होने से अनन्त स्कन्ध, अनन्त देश और अनन्त प्रदेश हो जाते हैं।

ते णं भंते! किं संखिज्जा असंखिज्जा अणंता?

गोयमा! णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या वे पूर्वोक्त रूपी अजीवपर्याय-स्कन्ध, स्कन्ध देश, स्कन्ध प्रदेश और परमाणु पुद्गल ये चार संख्यात हैं, असंख्यात हैं, अथवा अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे पूर्वोक्त चतुर्विध (चारों प्रकार के) रूपी अजीव पर्याय संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता?'

गोयमा! अणंता परमाणुपुग्गला, अणंता दुपएसिया खंधा जाव अणंता दस पएसिया खंधा, अणंता संखिज्ज पएसिया खंधा, अणंता असंखिज्ज पएसिया खंधा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणंता अणंत पएसिया खंधा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'ते णं णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता'॥ २६८॥

प्रश्न - हे भगवन्! किस हेतु से आप ऐसा कहते हैं कि वे पूर्वोक्त चतुर्विध रूपी अजीवपर्याय संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! परमाणु-पुद्गल अनन्त हैं, द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, यावत् दश प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, संख्यात प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं, असंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं और अनन्त प्रदेशिक स्कन्ध अनन्त हैं। हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वे न संख्यात हैं, न ही असंख्यात हैं, किन्तु अनन्त हैं।

परमाणु पुद्गल के पर्याय

परमाणु पोग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! परमाणु पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'परमाणुपुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?'

गोयमा! परमाणु पुग्गले परमाणु पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे असंखिज्जइ भागहीणे वा, संखिज्जइ भागहीणे वा, संखिज्जइ गुणहीणे वा, असंखिज्जइ गुणहीणे वा। अह अब्भहिए असंखिज्जइ भाग अब्भहिए वा, संखिज्जइ भाग अब्भहिए वा, संखिज्ज गुण अब्भहिए वा, असंखिज्ज गुण अब्भहिए वा। काल वण्ण पज्जवेहिं सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए। जइ हीणे अणंत भागहीणे वा, असंखिज्जइ भागहीणे वा, संखिज्जइ भागहीणे वा, संखिज्ज गुणहीणे वा, असंखिज्ज गुणहीणे वा, अणंत गुण हीणे वा। अह अब्भहिए अणंत भाग अब्भहिए वा असंखिज्जइ भाग अब्भहिए वा, संखिज्जइ भाग अब्भहिए वा, संखिज्ज गुण अब्भहिए वा, असंखिज्ज गुण अब्भहिए वा, अणंत गुण अब्भिहिए वा। एवं अवसेस वण्ण गंध रस फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। फासाणं सीय उसिण णिद्धलुक्खेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'परमाणुपोग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।'

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि परमाणुपुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक परमाणुपुद्गल, दूसरे परमाणुपुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से भी तुल्य है, किन्तु स्थिति की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है, कदाचित् अभ्यधिक है। यदि हीन है, तो असंख्यात भाग हीन है, संख्यात भाग हीन है अथवा संख्यात गुण हीन है, अथवा असंख्यात गुण हीन है, यदि अधिक है, तो असंख्यात भाग अधिक है अथवा संख्यात भाग अधिक है या संख्यात गुण अधिक है अथवा असंख्यात गुण अधिक है। कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन है तो अनन्त भाग हीन है या असंख्यात भाग-हीन है अथवा संख्यात भाग हीन है, अथवा संख्यात गुण हीन है, असंख्यात गुण हीन है या अनन्त गुण-हीन है। यदि अधिक है तो अनन्तभाग अधिक है, असंख्यात भाग अधिक है अथवा संख्यात भाग अधिक है। अथवा संख्यात गुण अधिक है, असंख्यात गुण अधिक है या अनन्त गुण अधिक है। इसी प्रकार काले वर्ण के सिवाय बाकी के वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। स्पर्शों में शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। हे गौतम! इस हेतु से ऐसा कहा गया है कि परमाणु-पुद्गलों के अनन्त पर्याय प्ररूपित हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में परमाणु पुद्गलों की पर्याय का वर्णन किया गया है।

परमाणु द्रव्य और प्रत्येक द्रव्य अनन्त पर्यायों से युक्त होता है। एक परमाणु दूसरे परमाणु से द्रव्य प्रदेश और अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य होता है, क्योंकि प्रत्येक परमाणु एक-एक स्वतंत्र द्रव्य है। वह निरंश ही होता है तथा नियमतः आकाश के एक ही प्रदेश में अवगाहन करके रहता है इसलिए इन तीनों की अपेक्षा से वह तुल्य है। किन्तु स्थिति की अपेक्षा से एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतुःस्थानपतित हीनाधिक होता है, क्योंकि परमाणु की जघन्य स्थिति एक समय की और उत्कृष्ट असंख्यात काल की होती है अर्थात् - कोई पुद्गल परमाणु रूप पर्याय में कम से कम एक समय तक रहता है और अधिक से अधिक असंख्यात काल तक रह सकता है। इसलिए सिद्ध है कि एक परमाणु दूसरे परमाणु से चतुःस्थानपतित हीन या अधिक होता है तथा वर्ण, गन्ध, रस एवं स्पर्श, विशेषतः चतुःस्पर्शों की अपेक्षा परमाणु-पुद्गल में षट्स्थानपतित हीनाधिकता होती है। अर्थात्-वह अनन्त भाग हीन, असंख्यात भाग हीन, संख्यात भाग हीन या संख्यात गुण हीन, असंख्यातगुण हीन होता है अथवा अनन्त भाग अधिक, असंख्यात भाग अधिक और संख्यात भाग अधिक अथवा संख्यात गुण अधिक, असंख्यात गुण अधिक, अनन्त गुण अधिक होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश हीन परमाणु में अनन्त पर्याय कैसे? - परमाणु को जो 'अप्रदेशी' कहा गया है, वह सिर्फ द्रव्य की अपेक्षा से है, काल और भाव की अपेक्षा से वह अप्रदेशी या निरंश नहीं है।

परमाणु चतुःस्पर्शी और षट्स्थानपतित - एक परमाणु में आठ स्पर्शों में से सिर्फ चार स्पर्श ही होते हैं। वे ये हैं - शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष। बल्कि असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध तक में ये चार ही स्पर्श होते हैं। कोई-कोई (सूक्ष्म) अनन्त प्रदेशी स्कन्ध भी चार स्पर्श वाले होते हैं। इसी प्रकार एक प्रदेशावगाढ़ से लेकर संख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल स्कन्ध भी चार स्पर्शों वाले होते हैं। अतः इन अपेक्षाओं से परमाणु को षट्स्थानपतित समझना चाहिए।

द्वि प्रदेशी स्कन्ध के पर्याय

दुपएसियाणं पुग्गलाणं भंते ! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! दुपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! द्विप्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्विप्रदेशिक स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ दुपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! दुपएसिए दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसमब्भहिए। ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाईहिं उवरिल्लेहिं चउफासेहिं य छट्ठाणवडिए।

एवं तिपएसिए वि, णवरं ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए। जइ हीणे, पएसहीणे वा, दुपएसहीणे वा, अह अब्भहिए पएसमब्भहिए वा, दुपएसमब्भहिए वा। एवं जाव दसपएसिए, णवरं ओगाहणाए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दसपएसिए, णवरं णवपएसहीणेत्ति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि द्विप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक द्विप्रदेशिक स्कन्ध, दूसरे द्विप्रदेशिक स्कन्ध से, द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य है और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है। यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है, वर्ण आदि की अपेक्षा से और शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष। स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार त्रिप्रदेशिक स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन या द्विप्रदेशों से हीन होता है। यदि अधिक हो तो एकप्रदेश अधिक अथवा दो प्रदेश अधिक होता है।

इसी प्रकार यावत् दश प्रदेशिक स्कन्धों तक का पर्याय विषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से प्रदेशों की क्रमशः वृद्धि करना चाहिए, यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध नौ प्रदेश-हीन तक होता है।

विवेचन - द्विप्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की अपेक्षा से हीन, अधिक और तुल्यः क्यों और कैसे? - जब दो द्विप्रदेशी स्कन्ध आकाश के दो-दो प्रदेशों या दोनों-एक-एक प्रदेश में अवगाढ हों, तब उनकी अवगाहना तुल्य होती है। किन्तु जब एक द्विप्रदेशी स्कन्ध एक प्रदेश में अवगाढ हो और दूसरा दो प्रदेशों में, तब उनमें अवगाहना की अपेक्षा से हीनाधिकता होती है। जो एक प्रदेश में अवगाढ़ है, वह दो प्रदेशों में अवगाढ स्कन्ध की अपेक्षा एक प्रदेश हीन अवगाहना वाला कहलाता है, जबकि दो प्रदेशों में अवगाढ स्कन्ध एक प्रदेशावगाढ की अपेक्षा एक प्रदेश-अधिक अवगाहना वाला कहलाता है। द्विप्रदेशी स्कन्धों की अवगाहना में इससे अधिक हीनाधिकता संभव नहीं है।

त्रिप्रदेशी स्कन्धों में हीनाधिकता : अवगाहना की अपेक्षा से - तीन प्रदेशों का पिण्ड त्रिप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। वह आकाश के एक प्रदेश में भी रह सकता है, दो प्रदेशों में भी और तीन आकाश प्रदेशों में भी रह सकता है। तीन आकाशप्रदेशों से अधिक में उसकी अवगाहना संभव नहीं ऐसी स्थिति में यदि त्रिप्रदेशी स्कन्धों की अवगाहना में हीनता और अधिकता हो तो एक या दो आकाश प्रदेशों की ही हो सकती है अधिक की नहीं।

दशप्रदेशी स्कन्ध तक की हीनाधिकता : अवगाहना की अपेक्षा से - जब दो त्रिप्रदेशी स्कन्ध तीन-तीन प्रदेशों में, दो-दो प्रदेशों में या एक-एक प्रदेश में अवगाढ होते हैं, तब वे अवगाहना की अपेक्षा से परस्पर तुल्य होते हैं, किन्तु जब एक त्रिप्रदेशीस्कन्ध त्रिप्रदेशावगाढ और दूसरा द्विप्रदेशावगाढ होता है, तब वह एकप्रदेशहीन होता है। यदि दूसरा एक प्रदेशावगाढ होता है तो वह द्विप्रदेशहीन होता है और वह त्रिप्रदेशावगाढ़ द्विप्रदेशावगाढ़ से एकप्रदेशाधिक और एकप्रदेशावगाढ़ से द्विप्रदेशाधिक होता है। इस प्रकार एक-एक प्रदेश बढ़ा कर चार प्रदेशी से दश प्रदेशी तक के स्कन्धों में अवगाहना की अपेक्षा से हानि वृद्धि का कथन कर लेना चाहिए। इस अपेक्षा से दश प्रदेशी स्कन्ध में हीनाधिकता इस प्रकार कही जाएगी-दश प्रदेशी स्कन्ध जब हीन होता है तो एक प्रदेश हीन, द्विप्रदेश हीन यावत् नौ प्रदेश हीन होता है और अधिक तो एक प्रदेशाधिक यावत् नव प्रदेशाधिक होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संख्यात प्रदेशी स्कन्ध के पर्याय

संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संख्यातप्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! संखिज्जपएसिए खंधे संखिज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे संखिज्जभागहीणे वा संखेज्जगुणहीणे वा, अह अब्भहिए एवं चेव। ओगाहणट्ठयाए वि दुट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ उवरिल्ल चउफास पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो, संख्यात भाग हीन या संख्यात गुण हीन होता है। यदि अधिक हो तो संख्यात भाग अधिक या संख्यात गुण अधिक होता है। अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है। वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

विवेचन - संख्यातप्रदेशी स्कन्ध की अनन्तपर्यायता - संख्यात प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे संख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य होता है। वह द्रव्य है, इस कारण अनन्तपर्याय वाला भी है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य अनन्तपर्याय युक्त होता है। प्रदेशों की अपेक्षा से वह हीन, तुल्य या अधिक भी हो सकता है। यदि हीन या अधिक हो तो संख्यातभाग हीन या संख्यात गुण हीन अथवा संख्यात भाग अधिक या संख्यातगुण अधिक होता है। इसीलिए इसे द्विस्थानपतित कहा है। अवगाहना की अपेक्षा से भी वह द्विस्थानपतित है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है। वर्णादि में तथा पूर्वोक्त चतुःस्पर्शों में षट्स्थानपतित समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध के पर्याय

असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंख्यात प्रदेशिक स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! असंख्यात प्रदेशिक स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! असंखिज्जपएसिए खंधे असंखिज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ उवरिल्ल चउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि असंख्यात प्रदेशिक स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक असंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध दूसरे असंख्यात प्रदेशिक स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

अनंत प्रदेशी स्कन्ध के पर्याय

अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंतपएसिए खंधे अणंत पएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण-गंध रस फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए॥ २६९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्त प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

विवेचन - अनन्त प्रदेशी स्कन्ध अवगाहना की दृष्टि से चतु:स्थानपतित ही क्यों ? अनन्त प्रदेशी स्कन्ध भी अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित ही होता है, षट्स्थानपतित नहीं, क्योंकि लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश ही हैं और अनन्त प्रदेशी स्कन्ध भी अधिक से अधिक असंख्यात प्रदेशों में ही अवगाहन करता है। अतएव उसमें अनन्त भाग एवं अनन्त गुण हानि-वृद्धि की संभावना नहीं है। इस कारण वह षट्:स्थानपतित नहीं हो सकता। हाँ, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से एक अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे अनन्त प्रदेशी स्कन्ध से वर्णादि की अपेक्षा से अनन्त भाग हीन, असंख्यात भाग हीन और संख्यात भाग हीन अथवा संख्यात गुण हीन या असंख्यात गुण हीन और अनन्त गुण हीन तथा इसी प्रकार अधिक भी हो सकता है। इसलिए इसमें षट्स्थानपतित हो सकता है।

एक प्रदेशावगाढ़ पुद्गल के पर्याय

एगपएसोगाढाणं पुग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक प्रदेश में अवगाढ़ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ एगपएसोगाढाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! एगपएसोगाढे पुग्गले एगपएसोगाढस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ उवरिल्ल चउफासेहि य छट्ठाणवडिए। एवं दुपएसोगाढे वि जाव दसपएसोगाढे वि।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि एक प्रदेश में अवगाढ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक प्रदेश में अवगाढ़ एक पुद्गल, दूसरे एक प्रदेश में अवगाढ़ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार द्विप्रदेशावगाढ से दशप्रदेशावगाढ स्कन्धों तक के पर्यायों की वक्तव्यता समझ लेना चाहिए।

विवेचन - एकप्रदेशावगाढ़ परमाणु प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हानिवृद्धिशील - द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य होने पर भी प्रदेशों की अपेक्षा से इसमें षट्स्थानपतित हीनाधिकता है, क्योंकि एक प्रदेशी परमाणु भी एक प्रदेश में रहता है और अनन्त प्रदेशी स्कन्ध भी एक ही प्रदेश में रह सकता है। किन्तु अवगाहना की दृष्टि से तुल्य है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि एवं चतुःस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

एक प्रदेशावगाढ़ - द्विप्रदेशी से अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक प्रत्येक स्कन्ध में वर्णादि ५ बोल (१ वर्ण, १ गंध, १ रस, २ स्पर्श) ही होते हैं। (इस प्रकार का अनन्त प्रदेशी स्कन्ध 'द्रव्य से अनन्तप्रदेशी होता है परन्तु वर्णादि से तो 'भावपरमाणु' कहलाता है।) पांचों वर्णादि वाले स्कन्ध कम से कम पांच प्रदेशावगाढ़ होने ही चाहिये। वर्णादि २० बोल तो असंख्यात प्रदेशावगाढ़ होने पर ही हो सकते हैं। एक वर्ण वाले स्कन्धों में भी एक गुणता से अनन्तगुणता तक हो सकती है। परन्तु उन स्कन्धों की पृच्छा 'एक गुण काले वर्ण' में नहीं होगी। उस स्कन्ध में जो सबसे ज्यादा गुण होगा वह गुण ही उस पूरे स्कन्ध में गिना जायेगा। एक गुण कालापनामी उस अनन्त गुण काले में समावेश हो जाते हैं।

संख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल के पर्याय

संखिज्ज पएसोगाढाणं पुग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संख्यात प्रदेशावगाढ स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! संख्यात प्रदेशावगाढ़ स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ संखिज्ज पएसोगाढाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! संखिज्जपएसोगाढे पुग्गले संखिज्जपएसोगाढस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ उवरिल्ल चउफासेहि य छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते है कि संख्यात प्रदेशावगाढ़ स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक संख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल, दूसरे संख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

असंख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल के पर्याय

असंखिज्ज पएसोगाढाणं पुग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! असंख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ असंखिज्ज पएसोगाढाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! असंखिज्जपएसोगाढे पुग्गले असंखेज्जपएसोगाढस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ अट्ठफासेहिं छट्ठाणवडिए॥ २७०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि असंख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक असंख्यात प्रदेशावगाढ़ पुद्गल, दूसरे असंख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित हैं, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

विवेचन - असंख्यातप्रदेशावगाढ़ पुद्गल अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित - क्योंकि लोकाकाश के असंख्यात ही प्रदेश हैं, जिनमें पुद्गलों का अवगाहन है। अतः अनन्तप्रदेशों में किसी भी पुद्गल की अवगाहना संभव नहीं है।

एक समय आदि की स्थिति वाले पुद्गल के पर्याय

एगसमयठिइयाणं पुग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ एगसमयठिइयाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! एगसमयठिइए पुग्गले एगसमयठिइयस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्णाइ अट्ठ फासेहिं छट्ठाणवडिए। एवं जाव दस समय ठिईए। संखिज्ज समय ठिइयाणं एवं चेव, णवरं ठिईए दुट्ठाणवडिए। असंखिज्ज समय ठिइयाणं एवं चेव, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए॥ २७१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक समय की स्थिति वाला एक पुद्गल, दूसरे एक समय की स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इस प्रकार यावत् दस समय की स्थिति वाले पुद्गलों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।

संख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों का पर्याय विषयक कथन भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है।

असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार है। विशेषता यह है कि वह स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक समय की स्थिति वाले पुद्गलों से लेकर असंख्यात समय की स्थिति वाले पुद्गलों की पर्यायों का कथन किया गया है।

एक गुण काले आदि पुद्गलों के पर्याय

एगगुणकालगाणं पुग्गलाणं भंते! केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! एगगुणकालगाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक गुण काले पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक गुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ एगगुणकालगाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! एगगुणकालए पुग्गले एगगुणकालगस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण गन्ध रस फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, अट्ठहिं फासेहिं छट्ठाणवडिए। एवं जाव दस गुण कालए। संखिज्ज गुण कालए वि एवं चेव। णवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिए। एवं असंखिज्ज गुण कालए वि, णवरं सट्ठाणे चउट्ठाणवडिए। एवं अणंत गुण कालए वि, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं जहा काल वण्णस्स वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि वण्ण गंध रस फासाणं वत्तव्वया भाणियव्वा जाव अणंत गुण लुक्खे॥ २७२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि एक गुण काले पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक गुण काला एक पुद्गल, दूसरे एक गुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, कृष्णवर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा कृष्ण (काला) वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है एवं अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से भी षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार यावत् दश गुण काले पुद्गलों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।

संख्यात गुण काले पुद्गलों का पर्याय विषयक कथन भी इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेषता यह है कि वे स्वस्थान में द्विस्थानपतित होते हैं।

इसी प्रकार असंख्यात गुण काले पुद्गलों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि वे स्वस्थान में चतुःस्थानपतित होते हैं।

इसी तरह अनन्तगुण काले पुद्गलों की पर्यायसम्बन्धी वक्तव्यता जान लेनी चाहिए। विशेषता यह है कि वे स्वस्थान में षट्स्थानपतित होते हैं।

इसी प्रकार जैसे कृष्ण (काले) वर्ण वाले पुद्गलों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता कही गयी है, वैसे ही शेष सब वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों वाले पुद्गलों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता यावत् अनन्तगुण रूक्ष पुद्गलों की पर्यायों सम्बन्धी वक्तव्यता तक कह देनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक गुण काला से अनन्तगुण काले पुद्गलों के विषय में तथा शेष वर्ण गन्ध रस स्पर्श पुद्गलों के विषय में पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संख्यात गुण काला पुद्गल स्वस्थान में द्विस्थानपतित - संख्यात गुण काला पुद्गल या तो संख्यात भाग हीन काला होता है अथवा संख्यात गुण हीन काला होता है। अगर अधिक हो तो संख्यात भाग अधिक या संख्यात गुण अधिक होता है।

असंख्यात गुण काला पुद्गल स्वस्थान में चतुःस्थानपतित - असंख्यात गुण काला पुद्गल असंख्यात भाग हीन, संख्यातभाग हीन, संख्यातगुण हीन, असंख्यात गुण हीन काला वर्ण का हो सकता है इसी प्रकार अधिक में भी चतुःस्थान पतितता समझ लेनी चाहिये।

अनन्त गुण काला पुद्गल स्वस्थान में षट्स्थानपतित - अनन्त गुण काले एक पुद्गल में दूसरा अनन्त गुण काला पुद्गल अनन्त भाग हीन, असंख्यात भाग हीन, संख्यात भाग हीन अथवा संख्यात गुण हीन, असंख्यात गुण हीन अनन्त गुण हीन होता है। यानी वह षट्स्थानपतित होता है।

जघन्य आदि अवगाहना वाले द्विप्रदेशी आदि पुद्गलों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! दुपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! दुपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं?

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं दुपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णोगाहणए दुपएसिए खंधे जहण्णोगाहणस्स दुपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सेस वण्ण गंध रस पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीय उसिण णिद्ध लुक्ख फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ- 'जहण्णोगाहणगाणं दुपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता।' उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव। अजहण्णमणुक्कोसोगाहणओ णत्थि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से तुल्य है किन्तु स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शेष वर्ण, गन्ध और रस के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। हे गौतम! इस कारण से मैं ऐसा कहता हूँ कि जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशिक पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं। उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गल-स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कह देना चाहिए। अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध नहीं होते।

विवेचन - जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित- जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों में शीत, उष्ण, रूक्ष और स्निग्ध, ये चार स्पर्श ही पाए जाते हैं, इनमें शेष कर्कश, कठोर, हलका और भारी, ये चार स्पर्श नहीं पाए जाते। इनमें षट्स्थानपतित हीनाधिकता पाई जाती है।

द्विप्रदेशी स्कन्ध में मध्यम अवगाहना नहीं होती - दो परमाणुओं का पिण्ड द्विप्रदेशी स्कन्ध कहलाता है। उसकी अवगाहना या तो आकाश के एक प्रदेश में होगी अथवा अधिक से अधिक दो आकाशप्रदेशों में होगी। एक प्रदेश में जो अवगाहना होती है, वह जघन्य अवगाहना है और दो प्रदेशों में जो अवगाहना है, वह उत्कृष्ट है। इन दोनों के बीच की कोई अवगाहना नहीं होती। अतएव मध्यम अवगाहना का अभाव है।

जघन्य आदि अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! तिपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता ?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं तिपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहा दुपएसिए जहण्णोगाहणए, उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, एवं अजहण्ण-मणुक्कोसोगाहणए वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जैसे जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों की पर्यायविषयक वक्तव्यता कही है, वैसी ही वक्तव्यता जघन्य अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के विषय में कह देनी चाहिए।

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

इसी तरह मध्यम अवगाहना वाले त्रिप्रदेशी पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

जघन्य आदि अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! चउपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहा जहण्णोगाहणए दुपएसिए तहा जहण्णोगाहणए चउप्पएसिए, एवं जहा उक्कोसोगाहणए दुपएसिए तहा उक्कोसोगाहणए चउप्पएसिए वि। एवं अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि चउप्पएसिए, णवरं ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसअब्भहिए। एवं जाव दसपएसिए णेयव्वं, णवरं अजहण्णुक्कोसोगाहणए पएसपरिवुड्ढी कायव्वा जाव दस पएसियस्स सत्त पएसा परिवड्ढिज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय जघन्य अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के पर्याय की तरह समझना चाहिए।

जिस प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले द्विप्रदेशी पुद्गलों के पर्यायों का कथन किया गया है, उसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी पुद्गल-पर्यायों का कथन करना चाहिये।

इसी प्रकार मध्यम अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी स्कन्ध का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य, कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एक प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है।

इसी प्रकार यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक का पर्यायविषयक कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि मध्यम अवगाहना वाले के एक-एक प्रदेश की परिवृद्धि करनी चाहिए। इस प्रकार यावत् दश प्रदेशी तक सात प्रदेश बढ़ते हैं।

विवेचन - मध्यम अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी स्कन्धों की हीनाधिकता - चतुःप्रदेशी स्कन्ध की जघन्य अवगाहना एक प्रदेश में और उत्कृष्ट अवगाहना चार प्रदेशों में होती है। मध्यम अवगाहना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो प्रकार की है- दो प्रदेशों में और तीन प्रदेशों में। अतएव मध्यम अवगाहना वाले एक चतुःप्रदेशी स्कन्ध से दूसरा चतुःप्रदेशी स्कन्ध यदि अवगाहना से हीन होगा तो एक प्रदेशहीन ही होगा और अधिक होगा तो एक प्रदेश अधिक ही होगा। इससे अधिक हीनाधिकता उनमें नहीं हो सकती।

जघन्य आदि अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी पुद्गलों के पर्याय

मध्यम अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी से लेकर दशप्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेशवृद्धि हानि - मध्यम अवगाहना वाले चतुःप्रदेशी स्कन्ध से लेकर दश प्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर एक-एक प्रदेश की वृद्धि-हानि होती है। तदनुसार चतुःप्रदेशी स्कन्ध में एक, पंच प्रदेशी स्कन्ध में दो, षट् प्रदेशी स्कन्ध में तीन, सप्त प्रदेशी स्कन्ध में चार, अष्ट प्रदेशी स्कन्ध में पांच, नव प्रदेशी स्कन्ध में छह और दश प्रदेशी स्कन्ध में सात प्रदेशों की वृद्धि-हानि होती है।

जहण्णोगाहणगाणं भंते! संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी पुद्गलों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णोगाहणगए संखिज्जपएसिए जहण्णोगाहणगस्स संखेज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ चउ फास पज्जवेहिं च छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसोगाहणए वि। अजहण्णमणुक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे दुट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि 'जघन्य अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी पुद्गलों (स्कन्धों) के अनन्त पर्याय हैं?'

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला संख्यात प्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्णादि चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) अवगाहना वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों का पर्याय विषयक कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्वस्थान में अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है।

विवेचन - जघन्य अवगाहना वाला संख्यात प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों से द्विस्थानपतित- जघन्य अवगाहना वाला संख्यात प्रदेशी एक स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से संख्यात भाग प्रदेशहीन या संख्यात गुण प्रदेशहीन होता है, यदि अधिक हो तो संख्यात भाग प्रदेशाधिक अथवा संख्यात गुण प्रदेशाधिक होता है। इसीलिए इसे प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित कहा गया है।

मध्यम अवगाहना वाला संख्यात प्रदेशी स्कन्ध स्वस्थान में द्विस्थानपतित - एक मध्यम अवगाहना वाला संख्यातप्रदेशी स्कन्ध दूसरे मध्यम अवगाहना वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की अपेक्षा से संख्यात भाग हीन या संख्यात गुण हीन होता है, अथवा संख्यात भाग अधिक या संख्यात गुण अधिक होता है।

जघन्य आदि अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णोगाहणगए असंखिज्जपएसिए खंधे जहण्णोगाहणगस्स असंखिज्जपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ उवरिल्ल फासेहिं च छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसोगाहणगए वि। अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छउट्ठाणवडिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है अवगाहना की अपेक्षा तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थान पतित है और वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

मध्यम अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों का पर्याय-विषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि वह स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

विवेचन - मध्यम अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध के पर्यायों की प्ररूपणा - इसके पर्यायों की प्ररूपणा-जघन्य अवगाहना वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध के पर्यायों की प्ररूपणा के समान ही है। मध्यम अवगाहना वाले अर्थात्-आकाश के दो से लेकर असंख्यात प्रदेशों में स्थित पुद्गलस्कन्ध के पर्यायों की प्ररूपणा इसी प्रकार है, किन्तु विशेष बात यह है कि स्वस्थान में चतुःस्थानपतित है।

जघन्य आदि अवगाहना वाले अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णोगाहणए अणंतपएसिए खंधे जहण्णोगाहणस्स अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ उवरिल्ल चउ फासेहिं छट्ठाणवडिए। उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, णवरं ठिईए वि तुल्ले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के अनन्त पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा भी तुल्य है।

मध्यम अवगाहना वाले अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते! अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के कितने पर्याय कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणाए अणंतपएसिए खंधे अजहण्ण-मणुक्कोसोगाहणगस्स अणंतपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ अट्ठ फासेहिं छट्ठाणवडिए॥ २७३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि मध्यम अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक मध्यम अवगाहना वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यम अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - मध्यम अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध का अर्थ - आकाश के दो आदि प्रदेशों से लेकर असंख्यात प्रदेशों में रहे हुए मध्यम अवगाहना वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध कहलाते हैं। प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट अवगाहना वाले परमाणु पुद्गलों के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

उत्कृष्ट अवगाही स्कन्ध अचित्त महास्कन्ध रूप एवं सम्पूर्ण लोक व्यापी होता है तथा सूक्ष्म परिणाम परिणत होने से उसमें वर्णादि १६ बोल ही होते हैं। वर्णादि २० बोल नहीं बताये हैं - क्योंकि यहाँ आत्मप्रदेश रहित केवल अचित्त पुद्गलों की ही विवक्षा की गई है। यद्यपि केवली समुद्घात करते समय तेजस शरीर सम्पूर्ण लोक व्यापी होने से अष्ट स्पर्शी स्कन्ध भी सम्पूर्ण लोक व्यापी हो सकता है परन्तु यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की गई है।

अचित्त महास्कन्ध स्थिति तुल्यता आदि के कारण तथा सूक्ष्म स्कन्ध होने से एक साथ अनेक होवे तो भी बाधा नहीं है। जैसे धूप, छाया, अन्धकारादि के अनेक बादर स्कन्ध भी एक साथ हो सकते हैं तो फिर सूक्ष्म स्कन्धों में तो बाधा ही क्या है।

उत्कृष्ट अवगाही स्कन्ध लोक व्यापी होने से उनकी अवगाहना तो समान होती है। परन्तु प्रदेश तो छट्ठाणवडिया बताये हैं - क्योंकि अवगाहना के कम ज्यादा का उसमें कोई कारण नहीं होता है। जैसे - एक आकाश प्रदेश पर एक परमाणु भी रह जाता है और अनंत प्रदेशी स्कन्ध भी रह सकता है। इसी प्रकार उत्कृष्ट अवगाही स्कन्धों के प्रदेशों में भी अनन्त गुणहीनाधिकता फर्क पड़ सकता है। अतः इनमें प्रदेशों की अपेक्षा 'षट्स्थानापतित'' बताया है।

अचित्त महास्कन्ध विस्रसा (स्वाभाविक) परिणाम परिणत होता है। वह सम्पूर्ण लोक व्यापी तो चतुर्थ समय में ही होता है। परन्तु प्रारम्भ के तीन समयों में भी वह 'अवगाहना वृद्धि रूप' कार्य करने से 'चलमाणे चलिए' न्याय से उसकी (उत्कृष्ट अवगाही अनंत प्रदेशी स्कन्ध की) स्थिति तुल्य (४ समय की) कही जाती है।

जघन्य आदि स्थिति वाले परमाणु पुद्गलों के पर्याय

जहण्णट्ठिइयाणं भंते! परमाणु पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले परमाणु पुद्गल के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले परमाणुपुद्गल के पर्याय अनन्त कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णट्ठिइयाणं परमाणु पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णठिइए परमाणु पुग्गले जहण्णठिइयस्स परमाणु पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहट्ठणयाए तुल्ले, ठिईए तुल्ले, वण्णाइ दु फासेहिं च छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोस ठिइए वि। अजहण्णमणुक्कोस ठिइए वि एवं चेव, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले परमाणु पुद्गलों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला परमाणु पुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले परमाणु पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है तथा स्थिति की अपेक्षा से भी तुल्य है एवं वर्णादि तथा दो स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले परमाणु पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

मध्यम स्थिति वाले परमाणु पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कह देना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

विवेचन - यहाँ पर परमाणु पुद्गलों में दो स्पर्श बताये हैं, जबकि प्रथम द्वार में परमाणु पुद्गलों में चार स्पर्श बताये हैं। दोनों स्थानों पर आगमकारों की भिन्न-भिन्न विवक्षा है। सभी परमाणुओं में मिलाकर चार स्पर्श होते हैं। एक एक परमाणु में तो चार स्पर्शों में से दो स्पर्श (शीत, उष्ण में से एक और स्निग्ध रूक्ष में से एक) ही पाते हैं। दो या चार तो अपेक्षा विशेष से कहे गये हैं। आशय तो एक ही है। वर्णादि भी एक परमाणु में तो एक ही होता है परन्तु समुच्चय पृच्छा होने से वर्णादि १६ बोल बता दिये गये हैं।

जघन्य आदि स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णठिइयाणं भंते! दुपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णठिइयाणं दुपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठिइए दुपएसिए जहण्णठिइयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए। जइ हीणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसअब्भहिए। ठिईए तुल्ले, वण्णाइ चउ फासेहि य छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोस ठिइए वि। अजहण्णमणुक्कोस ठिइए वि एवं चेव, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए। एवं जाव दसपएसिए, णवरं पएसपरिवुड्ढी कायव्वा। ओगाहणट्ठयाए तिसु वि गमएसु जाव दसपएसिए,णव पएसा परिवड्ढिज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन और यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है और वर्णादि तथा चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

मध्यम स्थिति वाले द्विप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से वह चतुःस्थानपतित हीनाधिक होता है।

इसी प्रकार यावत् दश प्रदेशी स्कन्ध तक के पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए। विशेष यह है कि इसमें एक-एक प्रदेश की क्रमशः परिवृद्धि करनी चाहिए। अवगाहना के तीनों आलापकों में यावत् दशप्रदेशी स्कन्ध तक ऐसे ही कहना चाहिए। क्रमशः नौ प्रदेशों की वृद्धि हो जाती है।

जघन्य आदि स्थिति वाले संख्यात प्रदेशी पुद्गलों के पर्याय

जहण्णठिइयाणं भंते! संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णठिइयाणं संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठिइए संखिज्ज पएसिए खंधे जहण्णठिइयस्स संखिज्ज पएसियस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्णाइ चउ फासेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोस ठिइए वि। अजहण्णमणुक्कोस ठिइए वि एवं चेव, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला संख्यात प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा चतुःस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

मध्यम स्थिति वाले संख्यातप्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है।

जघन्य आदि स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी पुद्‌गलों के पर्याय

जहण्णठिइयाणं असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णठिइयाणं असंखिज्ज पएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठिइए असंखिज्ज पएसिए जहण्ण ठिइयस्स असंखिज्ज पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्णाइ उवरिल्ल चउ फासेहिं च छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोस ठिइए वि। अजहण्णमणुक्कोस ठिइए वि एवं चेव, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है, वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

मध्यम स्थिति वाले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कह देना चाहिए। विशेष यह है कि स्थिति की अपेक्षा चतुःस्थानपतित है।

जघन्य आदि स्थिति वाले अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णठिइयाणं अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णठिइयाणं अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठिइए अणंतपएसिए जहण्णठिइयस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्णाइ अट्ठ फासेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसठिइए वि। अजहण्णमणुक्कोस ठिइए वि एवं चेव, णवरं ठिईए चउट्ठाणवडिए॥ २७४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला अनन्तप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य स्थिति वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) स्थिति वाले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों का पर्याय विषयक कथन भी इसी प्रकार कर देना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम स्थिति वाले परमाणु पुद्गलों तथा द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक, यावत् संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

जघन्यस्थितिक संख्यात प्रदेशी स्कन्ध प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित - यदि हीन हो तो संख्यात भाग हीन या संख्यात गुण हीन होता है, यदि अधिक हो तो संख्यात भाग अधिक या संख्यात गुण अधिक होता है। इसलिए यह द्विस्थानपतित है।

जघन्य गुण काले आदि परमाणु पुद्गलों के पर्याय

जहण्णगुणकालगाणं परमाणु पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पणत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण काले परमाणु पुद्गलों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्यगुण काले परमाणु पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणकालगाणं परमाणु पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पणत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकालए परमाणु पुग्गले जहण्णगुणकालयस्स परमाणु पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसा वण्णा णत्थि। गंध रस फास पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणकालए वि। एवं जहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुण काले परमाणुपुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण काला परमाणु पुद्गल दूसरे जघन्यगुण काले परमाणु पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्ण नहीं होते तथा गन्ध, रस और (दो) स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले परमाणु पुद्गलों के पर्यायों की प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार मध्यम गुण काले परमाणु पुद्गलों के पर्यायों-प्ररूपणा भी समझ लेनी चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित होता है।

विवेचन - परमाणु के लिए ऐसा कहा गया है -

कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।

एक रस वर्ण गन्धो, द्विस्पर्शः कार्यलिङ्गश्च॥ १॥

अर्थ - द्वि प्रदेशी स्कन्ध से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक सब स्कन्धों का अन्तिम कारण अर्थात् मूल कारण परमाणु है। अर्थात् सब स्कन्ध परमाणुओं से ही बनते हैं। परमाणु नित्य है और सूक्ष्म है। छद्मस्थों के दुष्टिगोचर नहीं होता है। एक परमाणु में एक वर्ण, एक गंध, एक रस और दो स्पर्श (शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष इन चार में से अविरोधी दो स्पर्श) वाला होता है। स्कन्ध रूप कार्य से परमाणु रूप कारण का अनुमान होता है।

जघन्य गुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णगुणकालगाणं भंते! दुपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण काले द्विप्रदेशिक स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण काले द्विप्रदेशिक स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणकालगाणं दुपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकालए दुपएसिए जहण्णगुणकालगस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे सिय तुल्ले सिय अब्भहिए। जइ हीणे पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसअब्भहिए। ठिईए चउट्ठाणवडिए, काल वण्ण पज्जवेहिं तुल्ले, अवसेस वण्णाइ उवरिल्ल चउ फासेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणकालए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं जाव दसपएसिए, णवरं पएसपरिवुड्ढी, ओगाहणा तहेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण काला द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण काले द्वि प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हीन कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित होता है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्णादि तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों की पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इस प्रकार उत्कृष्ट गुण काले परमाणुपुद्गलों की पर्याय-प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले द्विप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय विषयक कथन भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित कहना चाहिए।

इसी प्रकार यावत् दश प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि प्रदेश की उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिए। अवगाहना की अपेक्षा से पहले कहा गया उसी प्रकार है।

विवेचन - अवगाहना की अपेक्षा से द्विप्रदेशी स्कन्ध की हीनाधिकता - एक द्विप्रदेशी स्कन्ध दूसरे द्विप्रदेशी स्कन्ध से अवगाहना की अपेक्षा से यदि हीन हो तो एक प्रदेश कम अवगाहना वाला हो सकता है और यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक अवगाहना वाला हो सकता है। तात्पर्य यह है कि द्विप्रदेशी स्कन्ध की अवगाहना में एक प्रदेश से अधिक न्यूनाधिक अवगाहना का सम्भव नहीं है।

जघन्य गुण काले संख्यात प्रदेशी पुद्गलों के पर्याय

जहण्णगुणकालगाणं भंते! संखिज्ज पएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्यगुण काले संख्यात प्रदेशी पुद्गलों के कितने पर्याय कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्यगुण काले संख्यात प्रदेशी पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणकालगाणं संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकालए संखिज्ज पएसिए जहण्णगुणकालगस्स संखिज्ज पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्ण पज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णाइ उवरिल्ल चउ फासेहि य छट्ठाणवडिए, एवं उक्कोसगुणकालए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्यगुण काला संख्यात प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण काले संख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है तथा स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट (बाकी बचे हुए) वर्ण आदि तथा ऊपर कहे हुए चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण काले संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कह देना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

विवेचन - जघन्यगुण काला संख्यात प्रदेशी स्कन्ध प्रदेश एवं अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित - प्रदेश की अपेक्षा से वह द्विस्थानपतित होता है, अर्थात्-वह संख्यात भागहीन अथवा संख्यात गुणहीन या संख्यात भाग-अधिक अथवा संख्यात गुण-अधिक होता है। इसी प्रकार अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है।

जघन्य गुण काले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णगुणकालगाणं भंते! असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्यगुण काले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्यगुण काले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणकालगाणं असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकालए असंखिज्जपएसिए जहण्णगुणकालगस्स असंखिज्ज पएसयिस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णाइ उवरिल्ल चउ फासेहि य छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणकालए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्यगुण काले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्यगुण काला असंख्यात प्रदेशी पुद्गल स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण काले असंख्यात प्रदेशी पुद्गल स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित हैं, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष वर्ण आदि तथा ऊपर कहे हुए चार स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले असंख्यातप्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों-विषय में कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार मध्यम गुण काले असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए। विशेषता इतनी है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जघन्य गुण काले अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णगुणकालगाणं भंते! अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण काले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण काले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणकालगाणं अणंत पएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकालए अणंतपएसिए जहण्णगुणकालगस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्णाइ अट्ठ फासेहि य छट्ठाणवडिए।

एवं उक्कोसगुणकालए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं णील-लोहिय-हालिद्द-सुक्किल-सुब्भिगंध-दुब्भिगंध-तित्त-कडुय-कसाय-अंबिल-महुर-रसपज्जवेहि य वत्तव्वया भाणियव्वा, णवरं परमाणुपुग्गलस्स सुब्भिगंधस्स दुब्भिगंधो ण भण्णइ, दुब्भिगंधस्स सुब्भिगंधो ण भण्णइ, तित्तस्स अवसेसा ण भण्णंति, एवं कडुयाईण वि, सेसं तं चेव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य गुण काले अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण काला अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण काले अनन्त प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है तथा शेष वर्ण आदि एवं अष्टस्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्टगुण काले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी जानना चाहिए।

इसी प्रकार मध्यमगुण काले अनन्त प्रदेशी स्कन्धों का पर्याय-विषयक कथन भी कर देना चाहिए।

इसी प्रकार नील, रक्त, हारिद्र (पीत), शुक्ल (श्वेत), सुगन्ध, दुर्गन्ध, तिक्त (तीखा), कटु, काषाय, आम्ल (खट्टा), मधुर रस के पर्यायों से भी अनन्त प्रदेशी स्कन्धों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता कह देनी चाहिए। विशेषता यह है कि सुगन्ध वाले परमाणु पुद्गल में दुर्गन्ध नहीं कहना चाहिए और दुर्गन्ध वाले परमाणु पुद्गल में सुगन्ध नहीं कहना चाहिए। तिक्त (तीखे) रस वाले में शेष रस का कथन नहीं करना चाहिए, कटु आदि रसों के विषय में भी ऐसा ही समझना चाहिए। शेष सब बातें उसी तरह पूर्ववत् ही हैं।

विवेचन - कृष्ण, नील आदि पांच वर्णों, दो प्रकार के गन्धों, पांच प्रकार के रसों और आठ प्रकार के स्पर्शों के प्रत्येक के तरतमभाव की अपेक्षा से अनन्त-अनन्त विकल्प होते हैं। तदनुसार काले आदि वर्ण अनन्त-अनन्त प्रकार के हैं।

काले वर्ण की सबसे कम मात्रा जिसमें पाई जाती है, वह पुद्गल जघन्यगुण काला कहलाता है। यहाँ गुण शब्द अंश या मात्रा के अर्थ में प्रयुक्त है। जघन्यगुण का अर्थ है - सबसे कम अंश। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिस पुद्गल में केवल एक डिग्री का कालापन हो-जिससे कम कालापन का सम्भव ही न हो, वह जघन्यगुण काला समझना चाहिए। जिसमें कालेपन के सबसे अधिक अंश पाए जाएँ, वह उत्कृष्टगुण काला है। एक अंश कालेपन से अधिक और सबसे अधिक अन्तिम कालेपन से एक अंश कम तक का काला मध्यमगुणकाला कहलाता है। काले वर्ण की तरह ही जघन्य-उत्कृष्ट-मध्यमगुणयुक्त नीलादि वर्णों तथा गन्धों, रसों एवं स्पर्शों के विषय में समझना चाहिए।

जघन्य गुण कर्कश अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णगुणकक्खडाणं अणंतपएसियाणं खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण कर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण कर्कश अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणकक्खडाणं अणंतपएसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकक्खडे अणंतपएसिए जहण्णगुणकक्खडस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण गंध रसेहिं छट्ठाणवडिए, कक्खडफासपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्तफासपज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणकक्खडे वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणकक्खडे वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं मउय गरुय लहुए वि भाणियव्वे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य गुण कर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण कर्कश अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण कर्कश अनन्तप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है एवं वर्ण, गन्ध एवं रस की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, कर्कशस्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और अवशिष्ट सात स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण कर्कश अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

मध्यम गुण कर्कश अनन्त प्रदेशी स्कन्धों का पर्याय विषयक कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

मृदु, गुरु और लघु स्पर्श वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कथन कर देना चाहिए।

जघन्य गुण शीत परमाणु पुद्गलों के पर्याय

जहण्णगुणसीयाणं भंते! परमाणु पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण शीत (ठण्डा) परमाणु पुद्गलों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण शीत परमाणु पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणसीयाणं परमाणु पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणसीए परमाणु पुग्गले जहण्णगुणसीयस्स परमाणुपुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण गंध रसेहिं छट्ठाणवडिए, सीय फास पज्जवेहि य तुल्ले, उसिणफासो ण भण्णइ, णिद्ध लुक्ख फास पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणसीए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य गुण शीत परमाणु पुद्गलों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण शीत परमाणु पुद्गल दूसरे जघन्य गुण शीत परमाणु पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्ण, गन्ध और रसों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीत स्पर्श के अपेक्षा से तुल्य है। इसमें उष्ण स्पर्श का कथन नहीं करना चाहिए। क्योंकि शीत स्पर्श का विरोधी उष्ण स्पर्श है क्योंकि जहाँ शीत स्पर्श पाया जाता है वहाँ उष्ण स्पर्श नहीं पाया जाता है और जहाँ उष्ण स्पर्श पाया जाता है वहाँ शीत स्पर्श नहीं पाया जाता है। स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण शीत परमाणुपुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

मध्यम गुण शीत परमाणु पुद्गलों के पर्यायों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार कह देना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित हीनाधिक है।

जघन्य गुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णगुणसीयाणं दुपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण शीत द्विप्रदेशिक स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण शीत द्विप्रदेशिक स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणसीयाणं दुपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णगुणसीए दुपएसिए जहण्णगुणसीयस्स दुपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए। जइ हीणे, पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसअब्भहिए। ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्ण गंध रस पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीय फास पज्जवेहिं तुल्ले, उसिण णिद्ध लुक्ख फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणसीए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं जाव दस पएसिए, णवरं ओगाहणट्ठयाए पएस परिवुड्ढी कायव्वा जाव दस पएसियस्स णव पएसा वड्ढिज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य गुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्यगुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्यगुणशीत द्विप्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन, कदाचित् तुल्य और कदाचित् अधिक होता है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है, यदि अधिक हो तो एक प्रदेश अधिक होता है एवं शीत स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित होता है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्धों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।

मध्यम गुण शीत द्विप्रदेशी स्कन्धों का पर्याय सम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार यावत् दश प्रदेशी स्कन्धों तक का पर्याय सम्बन्धी वक्तव्य समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि अवगाहना की अपेक्षा से पर्यायों की वृद्धि करनी चाहिए। इस अपेक्षा से यावत् दश प्रदेशी स्कन्ध तक नौ प्रदेश बढ़ते हैं।

विवेचन - द्विप्रदेशी स्कन्ध से दश प्रदेशी स्कन्ध तक उत्तरोत्तर प्रदेश वृद्धि - इनकी पर्याय-वक्तव्यता द्विप्रदेशी स्कन्ध के समान है, किन्तु उनमें उत्तरोत्तर प्रदेशों की वृद्धि करनी चाहिए। अर्थात् दश प्रदेशी स्कन्ध तक क्रमशः नौ प्रदेशों की वृद्धि कहनी चाहिए।

जघन्य गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णगुणसीयाणं संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणसीयाणं संखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणसीए संखिज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स संखिज्जपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए दुट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए वण्णाईहिं च छट्ठाणवडिए, सीय फास पज्जवेहिं तुल्ले, उसिण णिद्ध लुक्खेहिं च छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणसीए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि जघन्य गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से द्विस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है तथा शीत स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष स्पर्श की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्धों की भी पर्याय सम्बन्धी प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए।

अजघन्य-अनुत्कृष्ट (मध्यम) गुण शीत संख्यात प्रदेशी स्कन्धों का पर्याय सम्बन्धी कथन भी ऐसा ही समझना चाहिए। विशेषता यह कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जघन्य गुण शीत असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णगुणसीयाणं असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण शीत असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण शीत असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणसीयाणं असंखिज्जपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णगुणसीए असंखिज्जपएसिए जहण्णगुणसीयस्स असंखिज्ज पएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीय फास पज्जवेहिं तुल्ले उसिण णिद्ध लुक्ख फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणसीए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य गुण शीत असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण शीत असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण शीत असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीत स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और उष्ण, स्निग्ध एवं रूक्ष स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण शीत असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों की पर्याय सम्बन्धी प्ररूपणा कर देनी चाहिए।

मध्यम गुण शीत असंख्यात प्रदेशी स्कन्धों का पर्यायविषयक कथन भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि वह स्वस्थान में षट्स्थानपतित होता है।

जघन्य गुण शीत अनंत प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णगुणसीयाणं अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य गुण शीत अनन्तप्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य गुण शीत अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणसीयाणं अणंतपएसियाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणसीए अणंतपएसिए जहण्णगुणसीयस्स अणंतपएसियस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए, सीय फास पज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं सत्त फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसगुणसीए वि। अजहण्ण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणुक्कोसगुणसीए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं उसिण णिद्ध लुक्खे जहा सीए। परमाणु पुग्गलस्स तहेव पडिवक्खो सव्वेसिं ण भण्णइ त्ति भाणियव्वं॥ २७५॥

कठिन शब्दार्थ - पडिवक्खो - प्रतिपक्ष।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य गुण शीत अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य गुण शीत अनन्त प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे जघन्य गुण शीत अनन्त प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, वर्णादि के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, शीत स्पर्श के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है और शेष सात स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण शीत अनन्त प्रदेशी स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

मध्यम गुण शीत अनन्त प्रदेशी स्कन्धों की पर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा भी इसी प्रकार करनी चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जिस प्रकार जघन्यादि युक्त शीत स्पर्श-स्कन्धों के पर्यायों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार उष्ण स्निग्ध और रूक्ष स्पर्शों वाले उन-उन स्कन्धों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए। इसी प्रकार परमाणु पुद्गल में इन सभी का प्रतिपक्ष नहीं कहा जाता, यह कहना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में काला आदि वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों के परमाणु पुद्गलों, द्विप्रदेशी से संख्यात-असंख्यात-अनन्त प्रदेशी स्कन्धों तक के पर्यायों की प्ररूपणा की गई है।

परस्पर विरोधी गन्ध, रस और स्पर्श का परमाणु पुद्गल में अभाव - जिस परमाणु पुद्गल में सुरभिगन्ध होती है, उसमें दुरभिगन्ध नहीं होती और जिसमें दुरभिगन्ध होती है, उसमें सुरभिगन्ध नहीं होती, क्योंकि परमाणु एक गन्ध वाला ही होता है। इसलिए जिस गन्ध का कथन किया जाए वहाँ दूसरी गन्ध का अभाव कहना चाहिए। इसी प्रकार जहाँ एक रस का कथन हो, वहाँ दूसरे रसों का अभाव समझना चाहिए। अर्थात् - जहाँ तिक्त रस हो, वहाँ शेष कटु आदि रस नहीं होते, क्योंकि उनमें परस्पर विरोध है। इसी प्रकार जहाँ पुद्गल परमाणु में शीत स्पर्श का कथन हो, वहाँ उष्ण स्पर्श का कथन नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये दोनों स्पर्श परस्पर विरोधी हैं। इसी प्रकार अन्यान्य स्पर्शों के बारे में समझ लेना चाहिए। जैसे - स्निग्ध और रूक्ष, मृदु और कर्कश, लघु और गुरु परस्पर विरोधी स्पर्श हैं। एक ही परमाणु में ये परस्पर विरोधी स्पर्श भी नहीं रहते। अतएव परमाणु में इनका उल्लेख नहीं करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

जहण्णपएसियाणं भंते! खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णपएसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णपएसिए खंधे जहण्णपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए। जइ हीणे, पएसहीणे, अह अब्भहिए पएसअब्भहिए। ठिईए चउट्ठाणवडिए। वण्ण गंध रस उवरिल्ल चउ फास पज्जवेहिं छट्ठाणवडिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य प्रदेशी स्कन्ध दूसरे जघन्य प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से कदाचित् हीन है, कदाचित् तुल्य हैं और कदाचित् अधिक है। यदि हीन हो तो एक प्रदेश हीन होता है और यदि अधिक हो तो भी एक प्रदेश अधिक होता है। स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है और वर्ण, गन्ध, रस तथा उपर्युक्त चार स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

उक्कोसपएसियाणं भंते! खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ उक्कोसपएसियाणं खंधाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! उक्कोसपएसिए खंधे उक्कोसपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए तुल्ले, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ अट्ठ फास पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से आप ऐसा कहते हैं कि उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से भी तुल्य है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से भी चतुःस्थानपतित है, किन्तु वर्णादि तथा अष्टस्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

विवेचन - उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्ध नियमा बादर परिणाम परिणत होने से उसमें वर्णादि २० ही बोल होते हैं। परन्तु ये संपूर्ण लोक व्यापी नहीं होते हैं। अवगाहना लोक के असंख्यातवें भाग जितनी होने से चउट्ठाणवडिया फर्क पड़ सकता है।

उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों में आठ स्पर्श कैसे होते हैं? अनेक परमाणु आदि में चार स्पर्श ही पाये जाते हैं। परन्तु अनन्त परमाणु का संयोग मिलने पर बादर परिणाम आ जाता है। अतः कर्कशादि संयोगजन्य चार स्पर्श उत्पन्न हो जाते हैं। शीतादि चार स्पर्श तो स्वाभाविक हैं व कर्कशादि चार स्पर्श संयोगजन्य होने से बादर परिणाम परिणत होने पर स्पर्शनेन्द्रिय को कर्कशादि रूप से अनुभव होने लगते हैं। जैसे गुड़, कफ का हेतु है। नागर (सूंठ) पित्त का हेतु है। लेकिन दोनों के मिश्रित होने पर कफ-पित्त दोनों के नाशक होते हैं। वैसे ही पुद्‌गल के संयोग से चार स्पर्श उत्पन्न हो जाते हैं। पुद्‌गलों का विचित्र परिणमन होता है। जैसे घड़ी के एक-एक पुर्जे में चलने रूप शक्ति नहीं होती। किन्तु सभी पुर्जों को यथावत् स्थिति करने से वह समय बताने लग जाती है। सूत के एक-एक धागे में हाथी को बांधने की शक्ति नहीं होती पर उसी से बने मजबूत रस्से से वह कार्य हो जाता है। इसी प्रकार अनेक परमाणुओं के संयोग से शेष चार स्पर्श उत्पन्न होते हैं। परमाणु से असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध तक तो चौफरसी होते हैं तथा और अधिक परमाणु इकट्ठे होने पर (बादर परिणाम परिणत होने पर) अट्ठ फरसी हो जाते हैं। फिर और अधिक परमाणु मिलने पर चार स्पर्शी हो जाते हैं जैसे भाषा मन आदि के स्कन्ध। इससे भी अधिक परमाणु इकट्ठे होवे तो अट्ठस्पर्शी हो जाते हैं। क्योंकि उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्ध को अट्ठस्पर्शी बताया गया है।

मध्यम प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय

अजहण्णमणुक्कोसपएसियाणं भंते! खंधाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ अजहण्णमणुक्कोसपएसियाणं खंधाणं अणंता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसपएसिए खंधे अजहण्णमणुक्कोसपएसियस्स खंधस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ अट्ठ फास पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए॥ २७६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मध्यम प्रदेशी स्कन्धों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक मध्यम प्रदेशी स्कन्ध, दूसरे मध्यम प्रदेशी स्कन्ध से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थान पतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित और वर्णादि तथा अष्ट स्पर्शों के पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

जघन्य अवगाहना वाले पुद्गल के पर्याय

जहण्णोगाहणगाणं भंते! पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णोगाहणगाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णोगाहणगए पुग्गले जहण्णोगाहणगस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए तुल्ले, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ उवरिल्ल फासेहि य छट्ठाणवडिए। उक्कोसोगाहणए वि एवं चेव, णवरं ठिईए तुल्ले।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य अवगाहना वाले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य अवगाहना वाला पुद्गल दूसरे जघन्य अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से तुल्य है, स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि और उपर्युक्त स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

उत्कृष्ट अवगाहना वाले पुद्गल-पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कह देना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है।

विवेचन - उत्कृष्ट अवगाहना वाले अनन्तप्रदेशी स्कन्ध की स्थिति तुल्य क्यों ? - उत्कृष्ट अवगाहना वाला, अनन्त प्रदेशी स्कन्ध सर्वलोक व्यापी होता है वह या तो अचित्त महास्कन्ध होता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथवा केवली समुद्घात की अवस्था में कर्मस्कन्ध हो सकता है। इन दोनों का काल दण्ड, कपाट, प्रतर और अन्तर पूरण रूप चार समय का ही होता है। अतएव इसकी स्थिति समान कही गई है।

मध्यम अवगाहना वाले पुद्गल के पर्याय

अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं भंते! पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगए पुग्गले अजहण्णमणुक्कोसोगाहणगस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, वण्णाइ अट्ठ फास पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए ॥ २७७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि मध्यम अवगाहना वाले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक मध्यम अवगाहना वाला पुद्गल दूसरे मध्यम अवगाहना वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुः-स्थानपतित है स्थिति की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है तथा वर्णादि और अष्ट स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

जघन्य स्थिति वाले पुद्गल के पर्याय

जहण्णठिइयाणं भंते! पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्य स्थिति वाले पुद्गलों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य स्थिति वाले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चई जहण्णठिइयाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णठिइए पुग्गले जहण्णठिइयस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए तुल्ले, वण्णाइ अट्ठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फास पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए। एवं उक्कोसठिइए वि। अजहण्णमणुक्कोसठिइए वि एवं चेव, णवरं ठिईए वि चउट्ठाणवडिए॥ २७८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्य स्थिति वाले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्य स्थिति वाला पुद्गल, दूसरे जघन्य स्थिति वाले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतुःस्थानपतित है, स्थिति की अपेक्षा से तुल्य है तथा वर्णादि और उपरोक्त स्पर्शों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है।

इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति वाले पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी कह देना चाहिए।

मध्यम स्थिति वाले पुद्गलों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता भी इसी प्रकार कह देना चाहिए। विशेषता यह है कि स्थिति की अपेक्षा से भी वह चतुःस्थानपतित है।

जघन्य गुण काले पुद्गलों के पर्याय

जहण्णगुणकालगाणं भंते! पुग्गलाणं केवइया पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! अणंता पज्जवा पण्णत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जघन्यगुण काले पुद्गलों के पर्याय कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जघन्यगुण काले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ जहण्णगुणकालगाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णगुणकालए पुग्गले जहण्णगुणकालगस्स पुग्गलस्स दव्वट्ठयाए तुल्ले, पएसट्ठयाए छट्ठाणवडिए, ओगाहणट्ठयाए चउट्ठाणवडिए, ठिईए चउट्ठाणवडिए, कालवण्णपज्जवेहिं तुल्ले, अवसेसेहिं वण्ण गंध रस फास पज्जवेहि य छट्ठाणवडिए तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'जहण्णगुणकालगाणं पुग्गलाणं अणंता पज्जवा पण्णत्ता' एवं उक्कोसगुणकालए वि। अजहण्णमणुक्कोसगुणकालए वि एवं चेव, णवरं सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। एवं जहा कालवण्णपज्जवाणं वत्तव्वया भणिया तहा सेसाण वि वण्ण गंध रस फासाणं वत्तव्वया भाणियव्वा जाव अजहण्णमणुक्कोस लुक्खे सट्ठाणे छट्ठाणवडिए। से तं रूवि अजीव पज्जवा। से तं अजीव पज्जवा॥ २७९॥

पण्णवणाए भगवईए पंचमं विसेसपयं (पज्जवपयं) समत्तं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक जघन्यगुण काला पुद्गल दूसरे जघन्यगुण काले पुद्गल से द्रव्य की अपेक्षा से तुल्य है, प्रदेशों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है, अवगाहना की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है स्थिति की अपेक्षा से चतु:स्थानपतित है, काले वर्ण के पर्यायों की अपेक्षा से तुल्य है, शेष वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों की पर्यायों की अपेक्षा से षट्स्थानपतित है। हे गौतम! इसी कारण से ऐसा कहा जाता है कि जघन्यगुण काले पुद्गलों के पर्याय अनन्त कहे गए हैं।

इसी प्रकार उत्कृष्ट गुण काले पुद्गलों की पर्याय-सम्बन्धी वक्तव्यता समझ लेनी चाहिए।

मध्यम गुण काले पुद्गलों के पर्यायों के विषय में भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेषता यह है कि स्वस्थान में षट्स्थानपतित है।

जिस प्रकार काले वर्ण के पर्यायों के विषय में वक्तव्यता कही गयी है उसी प्रकार शेष वर्णों, गन्धों, रसों और स्पर्शों की पर्याय सम्बन्धी वक्तव्यता भी कह देनी चाहिए, यावत् मध्यम गुण रूक्ष स्पर्श स्वस्थान में षट्स्थानपतित है, यहाँ तक कह देना चाहिए।

यह रूपी-अजीव-पर्यायों की प्ररूपणा पूरी हुई और इस प्रकार अजीवपर्याय-सम्बन्धी प्ररूपणा भी पूरी हुई।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट प्रदेशी स्कन्धों तथा जघन्यादि गुण विशिष्ट अवगाहना स्थिति तथा काले आदि वर्णों, गन्ध, रस, स्पर्शों के पर्यायों की विभिन्न अपेक्षाओं से प्ररूपणा की गई है।

मध्यम गुण काले पुद्गल स्वस्थान में षट्स्थानपतित हीनाधिक - एक मध्यम गुण काले पुद्गल से दूसरे मध्यम गुण काले पुद्गल में काले वर्ण की अनन्त भाग हीनता या अनन्त गुण हीनता तथा अनन्त भाग अधिकता अथवा अनन्त गुण अधिकता भी हो सकती है, क्योंकि मध्यम गुण के अनन्त विकल्प होते हैं।

इसी तरह मध्यम गुण वाले सभी वर्णादि स्पर्श पर्यन्त स्वस्थान में षट्स्थानपतित होते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त वर्णन में अजीव पर्यायों की सब मिलाकर १०७६ पृच्छाएं बताई गई है।

॥ प्रज्ञापना सूत्र का पंचम विशेषपद (पर्यायपद) समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठं वक्कंती पयं

छठा व्युत्क्रांति पद

उत्थानिका (उत्क्षेप) - पण्णवणा सूत्र के छठे पद का नाम "**वक्कंती**" पद है। इसकी संस्कृत छाया 'व्युत्क्रान्ति' होती है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है - संस्कृत में क्रमु धातु है 'क्रमु पादविक्षेपे'। क्राम्यति अथवा क्रामति इति 'क्रान्ति'। विशेषेण उत् प्राबल्येन क्रान्ति इति व्युत्क्रान्तिः। जिसका अर्थ है जीव का किसी गति में जाना और वहाँ आना जिस पद में बताया जाता हो उस पद का नाम व्युत्क्रान्ति पद है अर्थात् जीवों की गति आगति बताना।

इस पद में आठ द्वारों के माध्यम से गति आगति की विचारणा की गयी है।

आठ द्वारों का नाम और संक्षिप्त अर्थ यह है - १. द्वादश द्वार (जीवों का उत्पाद और उद्वर्तना का विरहकाल) २. चतुर्विंशति द्वार - (जीव के प्रभेदों के उपपात और उद्वर्तना का विरहकाल) ३. सान्तर द्वार - (जीव निरन्तर उत्पन्न होते हैं या सान्तर) ४. एक समय द्वार (एक समय में कितने जीव उत्पन्न होते हैं और वहाँ से उद्वर्तित होते हैं इसका विचार) ५. कुतः द्वार (जीव कहाँ कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं) ६. उद्वर्तना द्वार (जीव मरकर किस गति में उत्पन्न होता है?) ७. पारभविक आयुष्य द्वार (जीव वर्तमान भव में अगले भव का आयुष्य कब बांधता है इसकी विचारणा) ८. आकर्ष द्वार (जीव जब परभव का आयुष्य बान्धता है तब आयुष्य के साथ ये छह बोल भी बन्धते हैं यथा - १. जाति नाम २. गति नाम ३. स्थिति नाम ४. अवगाहना नाम ५. प्रदेश नाम और ६. अनुभाग (अनुभाव) जीव इन छह बोलों के साथ आयुष्य को कितने आकर्ष के द्वारा बान्धता है। आकर्ष (खींचना) एक से लेकर आठ तक होते हैं। अन्त में एक से लेकर आठ आकर्षों से आयुबन्ध करने वालों का अल्प बहुत्व बतलाया गया है।

इस व्युत्क्रान्ति पद का दूसरा नाम "उपपात उद्वर्तना पद" भी कहा जाता है।

पांचवें पद में औदयिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव के आश्रित पर्यायों के परिमाण का निर्णय किया गया है। अब इस छठे व्युत्क्रान्ति पद में औदयिक और क्षायोपशमिक भाव संबंधी प्राणियों के उपपात और विरह आदि का विचार आठ द्वारों से किया जाता है। जिसकी संग्रहणी गाथा इस प्रकार है -

बारस चउवीसाइं सअंतरं एगसमय कत्तो य।
उव्वट्टण परभवियाउयं च अट्ठेव आगरिसा॥ १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - उव्वट्टण - उद्‌वर्तन, **परभवियाउयं** - परभविकायुष-पर भव का आयुष्य, **आगरिसा** - आकर्ष (खींचना)।

भावार्थ - १. बारह मुहूर्त्त और २. चौबीस मुहूर्त्त का उपपात और उद्‌वर्तना-मरण की अपेक्षा विरहकाल ३. सान्तर-सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं? ४. एक समय-एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं और कितने मृत्यु को प्राप्त होते हैं ५. कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं ६. उद्‌वर्तना-मरण को प्राप्त होकर कहाँ उत्पन्न होते हैं ७. परभविकायुष-परभव का आयुष्य कब बाँधते हैं? और ८. आयुष्य बंध के संबंध में आठ आकर्ष - इन आठ द्वारों के द्वारा यह छठा पद कहा गया है।

प्रथम द्वादश द्वार

णिरय गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

कठिन शब्दार्थ - विरहिया - विरहित--उत्पत्ति से रहित।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नरक गति कितने काल तक नैरयिक जीवों की उत्पत्ति से रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नरक गति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक नैरयिक जीवों की उत्पत्ति से रहित कही गई है। अर्थात् बारह मुहूर्त्त तक नरक में कोई जीव उत्पन्न नहीं होता है।

तिरिय गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच गति कितने काल तक उपपात से विरहित-उत्पत्ति से रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच गति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उपपात से विरहित कही गयी है।

मणुय गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य गति कितने काल तक जीवों की उत्पत्ति से रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य गति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उपपात से विरहित कही गई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देव गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देव गति कितने काल तक जीवों की उत्पत्ति से रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उपपात से विरहित कही गई है।

सिद्धि गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया सिज्झणाए पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा ॥ २८० ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सिद्धि गति कितने काल तक जीवों की सिद्धि से रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक सिद्धि गति जीवों के सिद्ध होने से रहित कही गई है।

विवेचन - प्रश्न - उपपात किसे कहते हैं?

उत्तर - जीव पूर्व भव से आकर उत्पन्न हो, उसे 'उपपात' कहते हैं। अर्थात् किसी अन्य गति से मर कर नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य, देव रूप में उत्पन्न होना उपपात कहलाता है। सिद्ध भगवन्त तो उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु सिद्धि गति में जाकर आत्म स्वरूप में स्थित हो जाते हैं। इसको सिद्धत्व होना कहते हैं।

प्रश्न - नरक गति में उपपात विरह काल का क्या आशय है?

उत्तर - नरक गति में उपपात के विरह काल का अर्थ है - जितने समय तक किसी भी नये नैरयिक का जन्म नहीं होता अर्थात् नरक गति नये नैरयिक के जन्म से रहित जितने काल तक होती है वह नरक गति में उपपात विरह काल कहा गया है।

प्रस्तुत सूत्र में चारों ही गति के उपपात विरह काल का वर्णन किया गया है तथा सिद्धि गति में सिद्धत्व होने का विरह काल कहा गया है। नरक आदि चारों गतियों में जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उपपात का विरह पड़ता है। अर्थात् बारह मुहूर्त्त के बाद कोई न कोई जीव नरक आदि गतियों में उत्पन्न होता ही है। सिद्धि गति उत्कृष्ट छह मास तक सिद्धत्व होने रहित होती है। छह मास के बाद अवश्य ही कोई न कोई जीव सिद्ध होता ही है।

णिरय गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नरक गति कितने काल तक उद्वर्तना-मरण रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नरक गति जघन्य एक समय उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उद्वर्तना रहित कही गई है। अर्थात् बारह मुहूर्त्त तक सातों ही नरकों में से कोई भी जीव नहीं निकलता है।

तिरिय गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच गति कितने काल तक उद्वर्तना-मरण रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच गति जघन्य एक समय उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उद्वर्तना रहित कई गई है।

मणुय गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य गति कितने काल तक उद्वर्तना रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य गति जघन्य एक समय उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उद्वर्तना रहित कही गई है।

देव गई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता॥ १ दारं॥ १८१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देव गति कितने काल तक उद्वर्तना रहित कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! देव गति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त तक उद्वर्तना रहित कही गई है।

विवेचन - प्रश्न - उद्वर्त्तना किसे कहते हैं?

उत्तर - जीव का एक गति से निकल कर दूसरी गति में जाना उद्वर्तना है।

प्रस्तुत सूत्र में चारों गतियों का उद्वर्तना रहित काल बताया गया है। चारों गति में उद्वर्तना रहित काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त का होता है। सिद्धों की मृत्यु नहीं होती। क्योंकि वे शाश्वत होने से सादि अनन्त काल तक सिद्ध ही रहते हैं, अत: सिद्धि गति उद्वर्तना रहित कही गई है।

॥ प्रथम द्वार समाप्त॥

द्वितीय चतुर्विंशति द्वार

रयणप्पभा पुढवि णेरइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात-उत्पत्ति रहित और उद्वर्तना रहित कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक का उपपात एवं उद्वर्तना विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का कहा गया है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक का उपपात एवं उद्वर्तना विरह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त कहा है। पहले उपपात का विरह बारह मुहूर्त्त का कहा गया है तथा उद्वर्तना का काल भी बारह मुहूर्त्त का कहा गया है। वह समुच्चय नरक गति की अपेक्षा से बताया गया है। किन्तु यहाँ पर अलग अलग नरक पृथ्वियों की अपेक्षा से उपपात और उद्वर्तन विरहकाल बताया गया है। प्रत्येक नरक पृथ्वी में भिन्न-भिन्न काल का विरहकाल होते हुए भी जब समुच्चय नरक की पृच्छा होती है तब विरह काल १२ मुहूर्त्त से अधिक नहीं होता है अर्थात् १२ मुहूर्त्त के बाद तो किसी भी एक नरक में नये जीव का उपपात व नरक वाले जीव का तो उद्वर्तन होता ही है। अतः समुच्चय नरक के विरहकाल एवं अलग-अलग पृथ्वियों के विरहकाल में भिन्नता होने पर भी कोई बाधा नहीं आती है।

सक्करप्पभा पुढवि णेरइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं सत्त राइंदियाणि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शर्करा प्रभा पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उत्पत्ति रहित और उद्वर्तना रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! शर्करा प्रभा पृथ्वी के नैरयिक का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट सात रात्रि दिन है।

वालुयप्पभा पुढवि णेरइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अद्धमासं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वालुका प्रभा पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उपपात रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! वालुका प्रभा पृथ्वी के नैरयिक का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अर्द्धमास (पन्द्रह दिन) का कहा गया है।

पंकप्पभा पुढवि णेरइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं मासं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक मास का कहा गया है।

धूमप्पभा पुढवि णेरइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं दो मासा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो मास का कहा गया है।

तमा पुढवि णेरइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चत्तारि मासा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चार मास का कहा गया है।

अहेसत्तमा पुढवि णेरइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा॥ २८२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधःसप्तम (सातवीं नरक) पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! अधः सप्तम (सातवीं नरक) पृथ्वी के नैरयिक का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास का कहा गया है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सात नरक का उपपात विरह काल बताया गया है। पहली नरक में उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय उत्कृष्ट २४ मुहूर्त्त का है। दूसरी नरक से सातवीं नरक तक उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय उत्कृष्ट विरह दूसरी नरक में सात रात्रि दिन का, तीसरी नरक में १५ दिन का, चौथी नरक में एक महीने का, पांचवीं नरक में दो महीने का, छठी नरक में चार महीने का और सातवीं नरक में छह महीने का कहा गया है।

असुरकुमारा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार (भवनपति जाति के देव) कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक उत्पत्ति से रहित कहे गये हैं।

णागकुमारा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नागकुमार कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नागकुमार जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं।

एवं सुवण्णकुमारा णं विज्जुकुमारा णं अग्गिकुमारा णं दीवकुमारा णं दिसिकुमारा णं उदहिकुमारा णं वाउकुमारा णं थणियकुमारा णं च पत्तेयं जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता॥ २८३॥

इसी प्रकार सुपर्णकुमार, विद्युतकुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, दिक्कुमार, उदधिकुमार, वायुकुमार और स्तनितकुमार प्रत्येक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक उत्पत्ति रहित होते हैं।

विवेचन - असुरकुमार आदि दस भवनपति देवों के उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का कहा गया है।

पुढवीकाइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! अणुसमयमविरहियं उववाएणं पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - अणुसमयमविरहियं - अनुसमय अविरहित।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक कितने काल तक उपपात-उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक प्रतिसमय उत्पत्ति से अविरहित है। यानी प्रति समय निरन्तर उत्पन्न होते ही रहते हैं, अर्थात् इनमें विरह नहीं पड़ता है।

एवं आउकाइयाण वि तेउकाइयाण वि वाउकाइयाण वि वणस्सइकाइयाण वि अणुसमयं अविरहिया उववाएणं पण्णत्ता॥ २८४॥

भावार्थ - इसी प्रकार अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक भी प्रति समय निरन्तर उत्पन्न होते ही रहते हैं।

विवेचन - पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावरों का उत्पन्न होने का विरह नहीं पड़ता है। वे निरन्तर उत्पन्न होते रहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बेइंदिया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। एवं तेइंदिया, चउरिंदिया ॥ २८५ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं। इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों के विषय में भी समझना चाहिए।

संमुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं।

गब्भवक्कंतिय पंचेंदिय तिरिक्ख जोणिया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता॥ २८६ ॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं।

संमुच्छिम मणुस्सा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्य कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्य का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का कहा गया है। अर्थात् कोई एक समय ऐसा आता है जिसमें चौबीस मुहूर्त तक कोई भी सम्मूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न नहीं होता है।

विवेचन - यद्यपि लोक में कभी भी मल मूत्र आदि का अभाव नहीं होता है। मल मूत्र आदि के स्थान लोक में निरन्तर मिलते ही रहते हैं। तथापि तथाप्रकार की हवा आदि के कारण एवं सम्मूर्च्छिम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य की आयुष्य बंधे हुए जीव नहीं होने के कारण उत्पत्ति के योग्य स्थान होते हुए भी अधिक से अधिक २४ मुहूर्त तक नये जीव सम्मूर्च्छिम मनुष्य के रूप में उत्पन्न नहीं होते हैं।

गब्भवक्कंतिय मणुस्सा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस मुहुत्ता॥ २८७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज मनुष्य कितने काल तक उत्पत्ति रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज मनुष्य का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट बारह मुहूर्त्त का कहा गया है।

वाणमंतरा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! वाणव्यंतर देव कितने काल तक उपपात-उत्पत्ति से रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! वाणव्यंतर देव जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक उत्पत्ति से रहित कहे गये हैं।

जोइसियाणं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त का कहा गया है।

सोहम्मे कप्पे देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म कल्प में देव कितने काल तक उत्पत्ति से रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प (पहले देवलोक) में देव जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक उपपात से रहित कहे गये हैं।

ईसाणे कप्पे देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान कल्प (दूसरा देवलोक) में देव कितने काल तक उत्पत्ति से रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! ईशान कल्प में देव जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त्त तक उपपात से रहित कहे गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सणंकुमारे कप्पे देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं णव राइंदियाइं वीसाइं मुहुत्ताइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सनत्कुमार (तीसरा देवलोक) देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सनत्कुमार देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का उत्कृष्ट नौ रात्रि दिन और बीस मुहूर्त्त का कहा गया है।

माहिंदे कप्पे देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं बारस राइंदियाइं दस मुहुत्ताइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! माहेन्द्र कल्प (चौथा देवलोक) देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! माहेन्द्र देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट बारह रात्रि दिन और दस मुहूर्त्त का है।

बंभलोए देवा णं भंते ! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं अद्धतेवीसं राइंदियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ब्रह्मलोक कल्प (पांचवां देवलोक) देवों का उपपात विरहकाल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! ब्रह्मलोक देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का तथा उत्कृष्ट साढ़े बाईस रात्रि दिन का कहा गया है।

लंतग देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पणयालीसं राइंदियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लान्तक (छठा देवलोक) के देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! लान्तक देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट ४५ रात्रि दिन का कहा गया है।

महासुक्क देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असीइं राइंदियाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! महाशुक्र (सातवां देवलोक) के देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! महाशुक्र देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट अस्सी रात्रि दिन का कहा गया है।

सहस्सारे देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं उक्कोसेणं राइंदियसयं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सहस्रार (आठवां देवलोक) के देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सहस्रार देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट १०० रात्रि दिन का कहा गया है।

आणयदेवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जा मासा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आनत (नववाँ देवलोक) के देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! आनत देवों का उपपात विरहकाल जघन्य एक समय उत्कृष्ट संख्यात मास का कहा गया है।

पाणयदेवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जा मासा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणत (दसवां देवलोक) के देवों का उपपात विरहकाल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! प्राणत देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट संख्यात मास का कहा गया है।

आरणदेवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जा वासा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आरण (ग्यारहवें देवलोक) के देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! आरण देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का उत्कृष्ट संख्यात वर्ष का कहा गया है।

अच्चुय देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जा वासा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अच्युत (बारहवां देवलोक) के देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अच्युत देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष का कहा गया है।

हिट्ठिम गेविज्जगा देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससयाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन ग्रैवेयक देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन ग्रैवेयक देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट संख्यात सौ वर्ष का कहा गया है।

मज्झिम गेविज्जगा देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! मध्यम ग्रैवेयक देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम ग्रैवेयक देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट संख्यात हजार वर्ष का कहा गया है।

उवरिम गेविज्जगा देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं संखिज्जाइं वाससयसहस्साइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऊपरी ग्रैवेयक देवों का उपपात विरहकाल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! ऊपरी ग्रैवेयक देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय उत्कृष्ट संख्यात लाख वर्ष का कहा गया है।

विजय वेजयंत जयंत अपराजिय देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखिज्जं कालं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का उत्कृष्ट असंख्यात काल का कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वट्ठसिद्धग देवा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स संखिज्जइभागं॥ २८८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध देवों का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सर्वार्थसिद्ध देवों का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का उत्कृष्ट पल्योपम का संख्यात भाग कहा गया है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों का उपपात विरह काल का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार है - वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले दूसरे देवलोक में उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त का है। तीसरे देवलोक से सर्वार्थ सिद्ध विमान में उत्पन्न होने का विरह जघन्य एक समय का है और उत्कृष्ट विरह तीसरे देवलोक का ९ दिन रात और २० मुहूर्त्त का, चौथे देवलोक का १२ दिन १० मुहूर्त का, पांचवें देवलोक का साढ़े बावीस दिनरात का, छठे देवलोक का ४५ दिन का, सातवें देवलोक का ८० दिन का, आठवें देवलोक का १०० दिन का, नौवें दसवें देवलोक का संख्यात महीने का, ग्यारहवें बारहवें देवलोक का संख्यात वर्षों का, नवग्रैवेयक की नीचे की त्रिक का संख्यात सैंकड़ों वर्षों का, मध्यम त्रिक का संख्यात हजारों वर्षों का, ऊपर की त्रिक का संख्यात लाखों वर्षों का। विजय आदि चार अनुत्तर विमान का असंख्यात काल का और सर्वार्थसिद्ध का पल्योपम के संख्यातवें भाग का कहा गया है।

सिद्धा णं भंते! केवइयं कालं विरहिया सिज्झणाए पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा॥ २८९॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! सिद्धों का सिद्ध होने का उपपात विरह काल कितना कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध भगवन्तों का सिद्ध होने का उपपात विरह काल जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट छह मास का कहा गया है।

विवेचन - उपपात शब्द का अर्थ है जन्म लेना। परन्तु यह निश्चित है कि जिसका जन्म होता है उसका मरण अवश्य ही होता है। सिद्ध भगवन्तों का मरण होता नहीं है इसलिए उनका उपपात (जन्म) भी नहीं होता है और मरण भी नहीं होता है। आगे के सब बोलों में "उववाएणं" शब्द दिया है जिसका अर्थ है उपपात। यहाँ आगमकारों ने सिद्ध भगवन्तों के लिये **उववाएणं** शब्द न देकर "**सिज्झणाए**" शब्द दिया है अतः इसका अर्थ है सिद्ध होना, सिद्धत्व को प्राप्त होना, आत्म स्वरूप में स्थित हो जाना क्योंकि सिद्ध भगवन्त सादि अनन्त हैं।

रयणप्पभा पुढवि णेरइया णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उव्वट्टणाए पण्णत्ता?

गोयमा! जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं चउव्वीसं मुहुत्ता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कितने काल तक उद्वर्तना-मरण रहित कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक जघन्य एक समय और उत्कृष्ट चौबीस मुहूर्त तक उद्वर्तना रहित कहे गये हैं।

एवं सिद्धवज्जा उव्वट्टणा वि भाणियव्वा जाव अणुत्तरोववाइयत्ति, णवरं जोइसिय वेमाणिएसु 'चयणं' ति अहिलावो कायव्वो॥ २ दारं॥ २१०॥

भावार्थ - इसी प्रकार सिद्धों को छोड़ कर शेष जीवों की उद्वर्तना भी यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों तक कह देना चाहिये। विशेषता यह है कि ज्योतिषी और वैमानिक देवों के कथन में उद्वर्तना के स्थान पर 'च्यवन' शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों तक का उद्वर्तना विरह काल का वर्णन किया गया है। जिस तरह उत्पन्न होने का विरह काल कहा, उसी तरह उद्वर्तन (निकलने) का विरह काल भी कह देना चाहिये। ज्योतिषी और वैमानिक देवों में उद्वर्तन न कह कर च्यवन कहना चाहिये। इसका कारण यह है कि च्यवन का अर्थ होता है-नीचे आना। ज्योतिषी और वैमानिक देव इस पृथ्वी से ऊपर हैं अतएव देव मर कर ऊपर से नीचे आते हैं, नीचे से ऊपर नहीं जाते हैं।

मूल पाठ में "**सिद्धवज्जा**" शब्द दिया है इसका अर्थ है सिद्धों में उद्वर्तन नहीं कहना चाहिए क्योंकि मनुष्य लोक से जीव सिद्धि गति में जाते तो हैं किन्तु वहाँ से लौट कर नहीं आते हैं। सिद्ध भगवन्तों में सिर्फ सादि अनन्त यह एक भङ्ग पाया जाता है। जब मनुष्य लोक से जीव सिद्धि गति में जाता है तो उसकी आदि (प्रारम्भ-शुरूआत) तो है किन्तु वहाँ से वापिस नहीं लौटते इसलिए अन्त नहीं है। अतएव सिद्ध भगवन्त सादि अनन्त कहे जाते हैं। सिद्धि गति में जीव बढते जाते हैं किन्तु घटते नहीं हैं।

समुच्चय ज्योतिषी देव देवियों का उत्कृष्ट विरह २४ मुहूर्त्त का है। किसी भी एक ज्योतिषी विमान में ज्योतिषी देवों के उपपात च्यवन का विरह पल्योपम के संख्यातवें भाग का है। ज्योतिषी की स्थिति जघन्य पाव $\frac{१}{४}$ पल्योपम, पल्योपम के आठवें $\frac{१}{८}$ भाग की है एवं एक विमान में संख्यात ज्योतिषी देव ही हैं। एक ज्योतिषी विमान के देव की अपेक्षा सर्वार्थ सिद्ध विमान के देव संख्यात गुणे अधिक हैं। क्यों कि ज्योतिषी विमान एक योजन का $\frac{५६}{६१}$ भाग का उत्कृष्ट है जबकि सर्वार्थसिद्ध विमान एक लाख योजन का बड़ा है।

नौवें-दसवें देवलोक का संख्यात मास, ग्यारहवें-बारहवें देवलोक का संख्यात वर्ष होते हुए भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दसवें देवलोक का संख्यात मास नौवें से बड़ा है तथा बारहवें देवलोक का संख्यात वर्ष ग्यारहवें देवलोक से बड़ा है। यहाँ संख्यात मास में कितना लेना? निश्चित तो कह नहीं सकते परन्तु २ वर्ष (२४ मास) से कम तक समझ सकते हैं। बारहवें देवलोक के संख्यात वर्षों में २०० वर्षों से कम या ज्यादा वर्ष भी हो सकते हैं। आठवें देवलोक में १०० अहोरात्र का विरह है, इसमें ३ मास झाझेरा तो हो ही गया - यह आगम शैली है। संख्यात वर्ष में कितना लेना निश्चित नहीं कहा जा सकता है।

चार अनुत्तर विमान का उत्कृष्ट विरह असंख्यात काल का एवं नव ग्रैवेयक की तीन त्रिकों का क्रमशः संख्यात सैकड़ों, संख्यात हजारों, संख्यात लाखों वर्षों का है। किन्तु अठाणु (९८) बोल में पांच अनुत्तर देवों की अपेक्षा नव ग्रैवेयक त्रिक के देव संख्यात गुणा अधिक ही बताये हैं। अतः नव ग्रैवेयक देवों का विरह काल संख्यात काल तो बहुत बड़ा संख्यात असंख्यात के समीप का समझना चाहिये अर्थात् इतनी बड़ी राशि होती है कि नव ग्रैवेयक के विरह काल से अनुत्तर विमान का असंख्यात काल रूप विरह काल से संख्यात गुणा ही होवे।

शंका - फिर तो ये राशि शीर्ष प्रहेलिका से भी बहुत बड़ी हो जायेगी। फिर यहाँ संख्यात सौ, संख्यात हजार, संख्यात लाखों वर्षों ही क्यों कहा? स्पष्ट क्यों नहीं बताया है?

समाधान - यहाँ 'संख्यात' से बहुत बड़ी राशि विवक्षित है। यहाँ संख्यात रूप राशि सौ, हजार, लाखों गुणी करने पर विवक्षित राशि आ जाती है। जो शीर्ष प्रहेलिका की राशि से भी बहुत बड़ी हो जाती है। नव ग्रैवेयक के देवों से अच्युत, आरण आदि संख्यात गुणे हैं। वह राशि बहुत बड़ी है। इनका विरह संख्यात मास आदि ही है। किन्तु "अनुत्तर देवों के उत्कृष्ट असंख्यात काल का विरह होते हुए भी वह कभी कभी ही पड़ता है तथा ग्रैवेयक देवों का बारबार पड़ता है।" यह बात हमारे ध्यान (समझ) में नहीं आती कि कभी कभी ही क्यों पड़ता है? अतः संख्यात सौ आदि में बहुत बड़ी राशि लेना ही गणित के नजदीक लगता है।

॥ दूसरा द्वार समाप्त ॥

तीसरा सान्तर द्वार

णेरइया णं भंते! किं संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति?

गोयमा! संतरं वि* (पि) उववज्जंति, णिरंतरं वि* (पि) उववज्जंति?

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं?

---

* पाठान्तर - '**पि**', आगे के सूत्रों में भी इसी प्रकार समझना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खजोणिया णं भंते! किं संतरं उववज्जंति? णिरंतरं उववज्जंति?

गोयमा! संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच योनिक जीव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच जीव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

मणुस्सा णं भंते! किं संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उव्वज्जंति?

गोयमा! संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

देवा णं भंते! किं संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति?

गोयमा! संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति॥ २९१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! देव सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चार गति के जीवों की सान्तर और निरन्तर उत्पत्ति की प्ररूपणा की गयी है।

बीच बीच में कुछ समय छोड़ कर व्यवधान से उत्पन्न होना सान्तर उत्पन्न होना कहलाता है और प्रति समय लगातार बिना व्यवधान के उत्पन्न होना, बीच में कोई भी समय खाली न जाना निरन्तर उत्पन्न होना कहलाता है।

चारों गति के जीव सान्तर और निरन्तर दोनों प्रकार से उत्पन्न होते हैं।

रयणप्पभा पुढवि णेरइया णं भंते! किं संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति?

गोयमा! संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

एवं जाव अहेसत्तमाए संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति॥ २९२॥

भावार्थ - इसी प्रकार अधःसप्तम (सातवीं नरक) पृथ्वी तक के नैरयिक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असुरकुमारा णं देवा णं भंते! किं संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति?

गोयमा! संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार देव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

एवं जाव थणियकुमारा णं देवा संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति ॥ २९३ ॥

भावार्थ - इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देव तक सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

पुढवीकाइया णं भंते! किं संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति?

गोयमा! णो संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव सान्तर उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

एवं जाव वणस्सइकाइया णो संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति।

भावार्थ - इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक जीवों तक सान्तर उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

बेइंदिया णं भंते! किं संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति?

गोयमा! संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव क्या सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

एवं जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया ॥ २९४ ॥

भावार्थ - इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों तक कह देना चाहिये।

मणुस्सा णं भंते! किं संतरं उववज्जंति, णिरंतरं उववज्जंति?

गोयमा! संतरं वि उववज्जंति, णिरंतरं वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य सान्तर उत्पन्न होते हैं या निरन्तर उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

एवं वाणमंतरा जोइसिया सोहम्मीसाण सणंकुमार माहिंद बंभलोय लंतग महासुक्क सहस्सार आणय पाणय आरणच्चुय हिट्ठिम गेविज्जग मज्झिम गेविज्जग उवरिम गेविज्जग विजय वेजयंत जयंत अपराजिय सव्वट्ठसिद्धदेवा य संतरं वि उववज्जंति णिरंतरं वि उववज्जंति॥ २९५॥

भावार्थ - इसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, अधस्तन ग्रैवेयक, मध्यम ग्रैवेयक, उपरितन ग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध देव सान्तर भी उत्पन्न होते हैं और निरन्तर भी उत्पन्न होते हैं।

सिद्धा णं भंते! किं संतरं सिज्झंति, णिरंतरं सिज्झंति?

गोयमा! संतरं वि सिज्झंति, णिरंतरं वि सिज्झंति॥ २९६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या सिद्ध भगवान् सान्तर सिद्ध होते हैं या निरन्तर सिद्ध होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध भगवान् सान्तर भी सिद्ध होते हैं और निरन्तर भी सिद्ध होते हैं।

णेरइया णं भंते! किं संतरं उव्वट्टंति, णिरंतरं उव्वट्टंति?

गोयमा! संतरं वि उव्वट्टंति, णिरंतरं वि उव्वट्टंति। एवं जहा उववाओ भणिओ तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा भाणियव्वा जाव वेमाणिया, णवरं जोइसिय वेमाणिएसु 'चयणं' ति अहिलावो कायव्वो॥ ३ दारं॥ २९७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक सान्तर उद्वर्तते हैं या निरन्तर उद्वर्तते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक सान्तर भी उद्वर्तते हैं और निरन्तर भी उद्वर्तते हैं। इसी प्रकार जैसे उपपात के विषय में कहा गया है वैसे ही सिद्धों को छोड़ कर उद्वर्तना के विषय में यावत् वैमानिकों तक कह देना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिषियों और वैमानिकों के लिए च्यवना शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में चौबीस दण्डकों के जीवों की उत्पत्ति और उद्वर्तना की प्ररूपणा की गयी है। पांच स्थावर जीवों को छोड़ कर सभी संसारी जीवों की सान्तर और निरन्तर दोनों प्रकार से उत्पत्ति और उद्वर्त्तना होती है। पांच स्थावर में जीव निरन्तर उपजते रहते हैं। केवल मनुष्य में ही सिद्ध बनने की योग्यता है। वह निरन्तर भी सिद्ध हो सकते हैं और सान्तर भी सिद्ध हो सकते हैं। सिद्धि गति में गया हुआ जीव वापिस लौटकर नहीं आता है। इसलिए सिद्ध जीवों में "चवन" और उद्वर्तन नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहना चाहिए। सिद्ध सादि अनन्त होते हैं। सिद्धि गति में जाने की आदि (प्रारम्भ-शुरुआत) तो है परन्तु अन्त नहीं होता है इसलिए उनमें सादि अनन्त भङ्ग ही पाया जाता है।

नोट - मूल पाठ में तो यह वर्णन नहीं है किन्तु थोकड़ा वाले यह बोलते हैं यथा - तीन चारित्र (परिहार विशुद्धि, सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात), तीर्थंकर का विरह पड़े तो जघन्य चौरासी हजार वर्ष से कुछ अधिक होता है तथा चक्रवर्ती का विरह पड़े तो जघन्य १९७६८९ वर्ष ७ महीना २६ दिन लगभग। बलदेव वासुदेव का विरह पड़े तो जघन्य दो लाख ५२ हजार वर्षों से कुछ अधिक होता है और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) अठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। दो चारित्र (सामायिक और छेदोपस्थापनीय) चार तीर्थ (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका) का विरह पड़े तो जघन्य त्रेसष्ठ हजार वर्ष से कुछ अधिक और उत्कृष्ट देशोन अठारह कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है।

यह विरह काल पांच भरत और पांच ऐरवत इन दस क्षेत्रों की अपेक्षा समझना चाहिए किन्तु महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से नहीं क्योंकि वहाँ तो तीन चारित्र (सामायिक, सूक्ष्म सम्पराय और यथाख्यात) तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, चार तीर्थ, पांच महाव्रत (चतुर्याम धर्म) सदा काल पाये जाते हैं।

॥ तृतीय द्वार समाप्त ॥

चौथा एक समय द्वार

णेरइया णं भंते! एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

गोयमा! जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखिज्जा वा असंखिज्जा वा उववज्जंति, एवं जाव अहेसत्तमाए॥ २९८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक समय में कितने नैरयिक उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम (सातवीं नरक) पृथ्वी तक समझ लेना चाहिए।

असुरकुमारा णं भंते! देवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

गोयमा! जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखिज्जा वा असंखिज्जा वा। एवं णागकुमारा जाव थणियकुमारा वि भाणियव्वा॥ २९९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार देव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार देव जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार नागकुमार देव यावत् स्तनितकुमार देव तक कह देना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुढविकाइया णं भंते! एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

गोयमा! अणुसमयं अविरहियं असंखिज्जा उववज्जंति, एवं जाव वाउकाइया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव अनुसमय-प्रति समय अविरहित-बिना विरह के असंख्यात उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार यावत् वायुकायिक जीवों तक कह देना चाहिए।

वणस्सइकाइया णं भंते! एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

गोयमा! सट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरहिया अणंता उववज्जंति, परट्ठाणुववायं पडुच्च अणुसमयं अविरहिया असंखिज्जा उववज्जंति।

कठिन शब्दार्थ - अणुसमयं - अनुसमय-प्रतिसमय, **सट्ठाणुववायं** - स्वस्थान में उपपात, **परट्ठाणुववायं** - पर स्थान में उपपात, **पडुच्च** - अपेक्षा से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वनस्पतिकायिक जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वनस्पतिकायिक जीव स्वस्थान में उपपात की अपेक्षा प्रतिसमय बिना विरह के अनन्त उत्पन्न होते हैं और परस्थान में उपपात की अपेक्षा प्रति समय बिना विरह के असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में एक समय में जीवों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। वनस्पतिकाय में स्व स्थान और परस्थान की अपेक्षा उपपात बताया है। यहाँ स्व स्थान का अर्थ वनस्पति भव है। जो वनस्पतिकायिक जीव मर कर पुनः वनस्पतिकाय में ही उत्पन्न होते हैं उनका उपपात स्वस्थान उपपात कहलाता है और जब पृथ्वीकाय आदि किसी अन्य काय में वनस्पतिकाय का जीव उत्पन्न होता है तब उसका उपपात परस्थान उपपात कहलाता है। स्वस्थान में उत्पत्ति की अपेक्षा प्रतिसमय निरन्तर अनंत जीव उत्पन्न होते हैं। क्योंकि प्रत्येक निगोद का असंख्यातवां भाग निरन्तर उत्पन्न होता रहता है और मरण को भी प्राप्त होता रहता है और परस्थान में उपपात की अपेक्षा प्रतिसमय निरन्तर असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं। क्योंकि पृथ्वीकाय आदि के जीव असंख्यात हैं।

बेइंदिया णं भंते! एगसमएणं केवइया उववज्जंति?

गोयमा! जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखिज्जा वा असंखिज्जा वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीव एक समय में कितने उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीव एक समय में जघन्य एक, दो या तीन और उत्कृष्ट संख्यात या असंख्यात उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं तेइंदिया चउरिंदिया। संमुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया गब्भवक्कं-तिय पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया सम्मुच्छिममणुस्सा, वाणमंतर जोइसिय सोहम्मीसाण सणंकुमार माहिंद बंभलोय लंतग महासुक्क सहस्सारकप्प देवा एए जहा णेरइया। गब्भवक्कंतियमणुस्सा आणय पाणय आरणच्चुय गेवेज्जग अणुत्तरोववाइया य एए जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखिज्जा उववज्जंति, णो असंखिज्जा उववज्जंति॥ ३००॥

भावार्थ - इसी प्रकार तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक, सम्मूर्च्छिम मनुष्य, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, शुक्र एवं सहस्रार कल्प के देव इन सबका वर्णन नैरयिकों की तरह समझना चाहिये।

गर्भज मनुष्य, आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, नौ ग्रैवेयक, पांच अनुत्तरौपपातिक देव, ये सब जघन्य एक दो या तीन तथा उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - समुच्चय नरक गति की तरह सात नरक, दस भवनपति, तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम यानी असन्नी मनुष्य, वाणव्यन्तर देव, ज्योतिषी देव और पहले देवलोक से आठवें देवलोक तक के देव, ये ३३ बोल एक समय में जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्यात यावत् असंख्यात उत्पन्न होते हैं। गर्भज मनुष्य, नववें से बारहवें देवलोक तक, नवग्रैवेयक की तीन त्रिक, पांच अनुत्तर विमान इन तेरह बोल में एक समय में जघन्य एक, दो, तीन उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं। आनत आदि देवलोकों में एक समय में संख्यात ही उत्पन्न होने का कारण है कि आनत आदि देवलोकों में मनुष्य उत्पन्न होते हैं जो कि संख्यात ही हैं। तिर्यंच वहाँ उत्पन्न नहीं होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव मरकर उत्कृष्ट आठवें देवलोक तक जा सकते हैं उससे ऊपर नहीं।

सिद्धा णं भंते! एगसमएणं केवइया सिज्झंति?

गोयमा! जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं अट्ठसयं॥ ३०१॥

भावार्थ - हे भगवन्! सिद्ध भगवान् एक समय में कितने सिद्ध होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सिद्ध भगवान् एक समय में जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट एक सौ आठ सिद्ध हो सकते हैं।

णेरइया णं भंते! एगसमएणं केवइया उव्वट्टंति?

गोयमा! जहण्णेणं एगो वा, दो वा, तिण्णि वा, उक्कोसेणं संखिज्जा वा, असंखिज्जा वा उव्वट्टंति, एवं जहा उववाओ भणिओ तहा उव्वट्टणा वि सिद्धवज्जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाणियव्वा जाव अणुत्तरोववाइया, णवरं जोइसिय वेमाणिया णं चयणेणं अहिलावो कायव्वो॥ ४ दारं॥ ३०२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक एक समय में कितने उद्वर्तते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक एक समय में जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट संख्यात अथवा असंख्यात उद्वर्तते हैं।

इसी प्रकार जैसे उपपात के विषय में कहा उसी प्रकार सिद्धों को छोड़ कर अनुत्तरौपपातिक देवों तक की उद्वर्तना के विषय में भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि ज्योतिषी और वैमानिक देवों के लिए च्यवन शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

सिर्फ मनुष्य गति से ही मनुष्य सिद्धि गति को प्राप्त होते हैं। वे वहाँ जाकर आत्म स्वरूप में स्थित हो जाते हैं और वहाँ से वे वापिस नहीं लौटते हैं। इसलिये सिद्ध भगवन्तों में उपपात और उद्वर्तना दोनों नहीं कहने चाहिए।

॥ चौथा द्वार समाप्त॥

पांचवां कुतो द्वार

णेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति? किं णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो देवेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक कहाँ से आकर अर्थात् किस गति से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या नैरयिकों में से उत्पन्न होते हैं? तिर्यंच योनिकों में से उत्पन्न होते हैं? मनुष्य में से उत्पन्न होते हैं? या देवों में से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक, नैरयिकों में से उत्पन्न नहीं होते हैं, तिर्यंच योनिकों में से उत्पन्न होते हैं मनुष्यों में से उत्पन्न होते हैं, किन्तु देवों में से उत्पन्न नहीं होते हैं।

विवेचन - गतियाँ चार हैं यथा - नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देवगति। नरक गति और देवगति से निकलकर कोई भी जीव नरक गति में उत्पन्न नहीं होता है किन्तु तिर्यंच गति और मनुष्य गति से निकल कर जीव नरक में उत्पन्न हो सकता है।

प्रश्न - मूल पाठ में '**णेरइया**' शब्द दिया है इसकी व्युत्पत्ति और अर्थ क्या है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - 'णेरइय' शब्द में मूल का णिरय शब्द है। जिसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है - **'निर्गतं अविद्यमानं इष्ट फल देयं कर्म सात वेदनीयादि रूपं येभ्यः ते निरयाः। निर्गतं अयं शुभ फलं येभ्यः इति निरयाः। निरयेसु भवाः नैरयिकाः।'**

अर्थात् - इष्ट फल देने वाला कर्म जहाँ पर नहीं है उसको 'णिरय' कहते हैं अर्थात् नरक स्थान। उन स्थानों में जो जीव उत्पन्न होते हैं उनको 'नैरयिक' कहते हैं।

'णिरय' शब्द के स्थान में 'णरय' अथवा 'णरग' शब्द का प्रयोग भी होता है। इस 'नरक' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है - **'नरान कायन्ति शब्दयन्ति योग्यताया अनतिक्रमेण आकारयन्ति जन्तून स्वस्वस्थाने इति नरकाः।'**

अर्थात् - यहाँ 'नर' शब्द का अर्थ सर्व प्राणी गण का है। सब प्राणियों में नर (मनुष्य) सर्व श्रेष्ठ है इसलिए यहाँ नर शब्द का प्रयोग किया है। तात्पर्य यह है कि जिन स्थानों में जाकर जीव रोते हैं चिल्लाते हैं अर्थात् परमाधार्मिक देव जिन पापी जीवों को रुदन (रुलाते) करवाते हैं अथवा परस्पर लड़कर एक दूसरे को रुदन करवाते हैं उन स्थानों को 'नरक' कहते हैं। स्थानाङ्ग सूत्र के चौथे स्थान में नरक में जाने के चार कारण बताये हैं यथा - १. महा आरम्भ करने वाला २. महान् परिग्रही - (धन धान्य आदि में अत्यन्त मूर्च्छा भाव रखने वाला) ३. मदिरा-मांस का सेवन करना वाला ४. पंचेन्द्रिय जीव की हत्या करने वाला। इन चार कारणों का सेवन करने वाले जीव मरकर नरक गति में जाते हैं। तात्पर्य यह है कि उपरोक्त महापापों का आचरण करने वाले जीवों को अपने किये हुए पाप कर्मों का फल भोगने के लिए जिन स्थानों में जाना पड़ता है। उन स्थानों को नरक कहते हैं।

नरक सात हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - घम्मा, वंसा, शिला, अंजना, रिष्टा, मघा और माघवती। इनके गोत्र इस प्रकार हैं - रत्न प्रभा, शर्करा प्रभा, वालुका प्रभा, पङ्क प्रभा, धूम प्रभा, तमःप्रभा और महातमाः (तम :तमाप्रभा)। यहां पर सातों नरकों का सम्मिलित रूप से उत्पाद (जन्म लेना) बताया गया है अर्थात् सामान्य नरक गति का उत्पाद बतलाया गया है।

जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, बेइंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, तेइंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, चउरिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णो एगिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, णो बेइंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, णो तेइंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, णो चउरिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक (सामान्य नैरयिक) यदि तिर्यंच योनिकों में से उत्पन्न होते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं, बेइन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में से उत्पन्न होते हैं, तेइन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में से उत्पन्न होते हैं, चउरिन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में से उत्पन्न होते हैं या पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से, बेइन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से, तेइन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से और चउरिन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, खहयर *पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?*

गोयमा! जलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो वि उववज्जंति, थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, खहयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति॥ ३०३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक (सामान्य नैरयिक) यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या वे जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं? स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों से भी आकर उत्पन्न होते हैं, स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के पांच भेद हैं। यथा-जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। किन्तु यहाँ पर मूल पाठ में तीन का ही उल्लेख किया है इसका कारण यह है कि उत्तराध्ययन सूत्र के छत्तीसवें अध्ययन में ये तीन भेद ही किये हैं - उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प इन दोनों का समावेश स्थलचर में कर दिया गया है। क्योंकि ये दोनों स्थलचर विशेष प्रभेद ही हैं।

जइ जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिम जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! सम्मुच्छिम जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं? या गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

जइ सम्मुच्छिम जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तय सम्मुच्छिम जलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तय-सम्मुच्छिम जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तय सम्मुच्छिम जलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तय सम्मुच्छिम जलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तय गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तय-गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तय गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तय गब्भवक्कंतिय जलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति ॥ ३०४॥

भावार्थ - प्रश्न - सामान्य नैरयिक यदि गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक गर्भज जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं चउप्पय थलयर पंचिंदिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, परिसप्प थलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, परिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

जइ चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! सम्मुच्छिम चउप्पय-थलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

जइ सम्मुच्छिम चउप्पय थलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, किं पज्जत्तग सम्मुच्छिम चउप्पय थलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तग सम्मुच्छिम चउप्पय थलयर पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तग सम्मुच्छिम चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति। णो अपज्जत्तग सम्मुच्छिम चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, असंखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, णो असंखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

विवेचन - जिन मनुष्य और तिर्यंचों का आयुष्य एक करोड़ पूर्व या इससे कम होता है वे संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कहलाते हैं। जिन मनुष्य और तिर्यंचों का आयुष्य एक करोड़ पूर्व से अधिक होता है, वे असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कहलाते हैं। इनको युगलिक भी कहते हैं।

७,०५,६०,०००००००००० इन चौदह अंकों जितने वर्षों की संख्या को एक पूर्व कहते हैं। जिसको इस तरह से बोला जा सकता है। - सात नील पांच खरब और साठ अरब वर्षों का एक पूर्व होता है।

जइ संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं पज्जत्तग संखिज्जवासाउय-गब्भवक्कंतिय चउप्पय-थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तग संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय चउप्पय थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तेहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तग संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज चतुष्पद स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ परिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक दोनों से ही अर्थात् उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और भुज परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

जइ उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं सम्मुच्छिम उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! सम्मुच्छिमेहिंतो वि उववज्जंति, गब्भवक्कंतिएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक सम्मूर्च्छिम उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज उर:परिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

जइ सम्मुच्छिम उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पज्जत्तग सम्मुच्छिमेहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तग सम्मुच्छिम उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ गब्भवक्कंतिय उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तय गब्भवक्कंतिएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तय गब्भवक्कंतिय उरपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं, किन्तु अपर्याप्तक गर्भज उरःपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं सम्मुच्छिम भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि वे भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ सम्मुच्छिम भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं पज्जत्तय सम्मुच्छिम भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तय सम्मुच्छिम भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - सामान्य नैरयिक यदि सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ गब्भवक्कंतिय भुयपरिसप्प थलयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति॥ ३०५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक गर्भज भुजपरिसर्प स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ खहयर पंचिंदिय-तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं सम्मुच्छिम खहयर-पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय खहयर-पंचिंदिय-तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं और गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी उत्पन्न होते हैं।

जइ सम्मुच्छिम खहयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक सम्मूर्च्छिम खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ पज्जत्तय गब्भवक्कंतिय खहयर-पंचिंदिय-तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, असंखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, णो असंखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ संखिज्जवासाउय गब्भवक्कंतिय खहयर पंचिंदिय-तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति॥ ३०६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले गर्भज खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, किं सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णो सम्मुच्छिममणुस्सेहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते, गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

जइ गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, किं कम्मभूमिग गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, अकम्मभूमिग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, अंतरदीवग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! कम्मभूमिग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो अकम्मभूमिग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो अंतरदीवग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज् गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते और न ही अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं।

जइ कम्मभूमिग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, किं संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, असंखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! संखिज्जवासाउय कम्मभूमिग गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो असंखिज्जवासाउय कम्मभूमिग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं किन्तु असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ संखिज्जवासाउय कम्मभूमिग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति॥ ३०७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सामान्य नैरयिक यदि संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सामान्य नैरयिक पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न नहीं होते हैं।

रयणप्पभापुढवी णेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! जहा ओहिया उववाइया तहा रयणप्पभा पुढवी णेरइया वि उववाएयव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिक किस गति से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार ऊपर सातों नरकों का सामान्य रूप से सम्मिलित उत्पाद बतलाया गया है वैसा ज्यों का त्यों उत्पाद प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी का भी समझ लेना चाहिए।

विवेचन - ऊपर सातों नरकों को सम्मिलित रूप रख कर उत्पाद बतलाया गया है। अब एक-एक नरक का अलग से उत्पाद बताया जा रहा है।

सक्करप्पभापुढवी णेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! एए वि जहा ओहिया तहेवोववाएयव्वा, णवरं संमुच्छिमेहिंतो पडिसेहो कायव्वो।

कठिन शब्दार्थ - पडिसेहो - प्रतिषेध (निषेध), **कायव्वो** - करना चाहिये।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! शर्कराप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों का उपपात भी औघिक (सामान्य) नैरयिकों के उपपात की तरह कहना चाहिये। विशेष यह है कि सम्मूर्च्छिमों से उत्पत्ति का निषेध करना चाहिये। अर्थात् सभी तिर्यंच और सभी प्रकार के मनुष्यों के सम्मूर्च्छिम जीव दूसरी नरक में उत्पन्न नहीं होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वालुयप्पभा पुढवी णेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! जहा सक्करप्पभा पुढवी णेरइया, णवरं भुयपरिसप्पेहिंतो पडिसेहो कायव्वो।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे शर्करा प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में कहा है वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिये। विशेष यह है कि भुजपरिसर्प से उत्पत्ति का निषेध करना चाहिये। अर्थात् तिर्यंचों में भुज परिसर्प तिर्यंच तीसरी नरक में उत्पन्न नहीं होते हैं।

पंकप्पभा पुढवी णेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! जहा वालुयप्पभा पुढवी णेरइया, णवरं खहयरेहिंतो वि पडिसेहो कायव्वो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर- हे गौतम! जैसे वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में कहा है वैसे ही इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिये। विशेष यह है कि खेचर से उत्पत्ति का निषेध करना चाहिये। अर्थात् खेचर जीव चौथी नरक में उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि वे तीसरी नरक तक ही उत्पन्न हो सकते हैं।

धूमप्पभा पुढवी णेरइयाणं भंते! कओहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा! जहा पंकप्पभा पुढवी णेरइया, णवरं चउप्पएहिंतो वि पडिसेहो कायव्वो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पांचवीं धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे पंकप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में कहा है, उसी प्रकार इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिये। विशेष यह है कि चतुष्पद से उत्पत्ति का निषेध करना चाहिये। अर्थात् चतुःष्पद स्थल चर तिर्यंच भी पांचवीं नरक में उत्पन्न नहीं होते हैं।

तमा पुढवी णेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! जहा धूमप्पभा पुढवी णेरइया, णवरं थलयरेहिंतो वि पडिसेहो कायव्वो।

इमेणं अभिलावेणं जइ पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, किं जलयर पंचिंदिएहिंतो उववज्जंति, थलयर पंचिंदिएहिंतो उववज्जंति, खहयर पंचिंदिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! जलयर पंचिंदिएहिंतो उववज्जंति, णो थलयरेहिंतो उववज्जंति, णो खहयरेहिंतो उववज्जंति॥ ३०८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जैसे धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के विषय में कहा है उसी प्रकार इनकी उत्पत्ति के विषय में कहना चाहिये। विशेष यह है कि स्थलचर से उत्पत्ति का निषेध करना चाहिये। अर्थात् स्थलचर जीव छठी नरक में उत्पन्न नहीं होते हैं।

इस कथन (अभिलाप) के अनुसार यदि धूमप्रभा पृथ्वी के नैरयिक पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

हे गौतम! वे जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु स्थलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते और खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से भी आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

विवेचन - जीवों के ५६३ भेदों में से पहली नरक पृथ्वी में पच्चीस की आगति है। पन्द्रह कर्म भूमिज मनुष्य, पांच सन्नी तिर्यंच और पांच असन्नी तिर्यंच=(१५+५+५=२५)। दूसरी शर्करा प्रभा नरक में २० की आगति है-पन्द्रह कर्म भूमि के मनुष्य और पांच सन्नी तिर्यंच। १५+५=२०। तीसरी वालुका प्रभा में १९ उन्नीस की आगति है यथा - पन्द्रह कर्म भूमि के मनुष्य और चार सन्नी तिर्यंच (भुज परिसर्प को छोड़कर) १५+४=१९। चौथी पंकप्रभा नरक में अठारह की आगति है पन्द्रह कर्म भूमि के मनुष्य और तीन सन्नी तिर्यंच (जलचर, स्थलचर और उरपरिसर्प) १५+३=१८। पांचवीं धूमप्रभा में १७ (सतरह) की आगति है यथा - पन्द्रह कर्म भूमि के मनुष्य और जलचर और उरपरिसर्प १५+२=१७। छठी तमःप्रभा में १६ (सोलह) की आगति है यथा - पन्द्रह कर्म भूमि के मनुष्य और जलचर। १५+१=१६ और सातवीं तमःतमा प्रभा में इन्हीं सोलह की आगति है किन्तु वहाँ सोलह ही भेदों के स्त्री और स्त्री नपुंसक उत्पन्न नहीं होते हैं।

इनकी आगति को सरलता से याद रखने के लिए थोकड़ा वाले एक संकेत बना लेते हैं यथा - भु,खे, थ, उ। इसका आशय यह है कि पहली दूसरी नरक में तो पच्चीस की आगति है किन्तु तीसरी में भुजपरिसर्प छूट जाता है। चौथी में खेचर, पांचवीं में स्थलचर, छठी में उरपरिसर्प छूट जाता है। इस प्रकार क्रमशः भु, खे, थ, उ छूटते जाते हैं।

नोट :- ऊपर के प्रश्न उत्तरों में तिर्यंच योनिकों से उत्पन्न होने का विधि निषेध कहा गया है। अब आगे मनुष्यों से आकर उत्पन्न होने का विधि निषेध कहा जाता है।

जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमिएहिंतो उववज्जंति, अकम्मभूमिएहिंतो उववज्जंति, अंतरदीवएहिंतो उववज्जंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! कम्मभूमिएहिंतो उववज्जंतिस, णो अकम्मभूमिएहिंतो उववज्जंति, णो अंतरदीवएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नरकों में यदि मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्म भूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या अकर्म भूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या अन्तर द्वीपज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! कर्म भूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु न तो अकर्म भूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं और न ही अन्तर द्वीपज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ कम्मभूमिएहिंतो उववज्जंति किं संखिज्ज वासाउएहिंतो उववज्जंति, असंखिज्ज वासाउएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! संखिज्ज वासाउएहिंतो उववज्जंति, णो असंखिज्ज वासाउएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नरकों में यदि कर्मभूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु असंख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नरकों में यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ पज्जत्तय संखिज्जवासाउय कम्मभूमिएहिंतो उववज्जंति किं इत्थीहिंतो उववज्जंति, पुरिसेहिंतो उववज्जंति, णपुंसएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! इत्थीहिंतो उववज्जंति, पुरिसेहिंतो उववज्जंति, णपुंसएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि नरकों में पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं तो क्या स्त्रियों से उत्पन्न होते हैं या पुरुषों से उत्पन्न होते हैं या नपुंसकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! स्त्रियों से भी उत्पन्न होते हैं, पुरुषों से भी उत्पन्न होते हैं और नपुंसकों से भी उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - संख्यात वर्ष की आयु वाले पुरुष मनुष्य, स्त्री और नपुंसक मनुष्य ये तीनों वेद वाले पहली नरक से लेकर छठी नरक तक उत्पन्न होते हैं। अब सातवीं नरक के अन्दर जो विशेषता है, वह अगले सूत्र में बतलाई जा रही है।

अहेसत्तमा पुढवी णेरइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! एवं चेव, णवरं इत्थीहिंतो पडिसेहो कायव्वो।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! सातवीं अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इनकी उत्पत्ति संबंधी प्ररूपणा छठी तमःप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों की उत्पत्ति के समान समझनी चाहिये। विशेषता यह है कि स्त्रियों से उत्पन्न होने का निषेध करना चाहिये। अर्थात् सातवीं नरक में तिर्यंच स्त्री और मनुष्य स्त्री (स्त्री वेदी) उत्पन्न नहीं होती हैं।

"अस्सण्णी खलु पढमं दोच्चं पि सिरीसवा तइय पक्खी।
सीहा जंति चउत्थिं उरगा पुण पंचमिं पुढविं।
छट्ठिं च इत्थियाओ मच्छा मणुया य सत्तमिं पुढविं।
एसो परमोववाओ बोद्धव्वो णरगपुढवीणं॥ ३०१॥"

भावार्थ - असंज्ञी प्रथम नरक पर्यन्त, सरीसृप-भुजपरिसर्प दूसरी नरक तक, पक्षी तीसरी नरक तक, सिंह चौथी नरक तक, उरःपरिसर्प पांचवीं नरक तक, स्त्रियाँ छठी नरक तक और मत्स्य तथा मनुष्य सातवीं नरक तक उत्पन्न होते हैं। यह नरक पृथ्वियों का उत्कृष्ट उपपात समझना चाहिये।

विवेचन - सातवीं नरक में मनुष्य स्त्री (मनुष्यणी) और जलचर स्त्री (मछली) भी नहीं जाती है। उपर्युक्त गाथा में आये हुए **'अस्सण्णी'** शब्द से असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांचों भेद समझना **'सिरीसवा'** शब्द से भुजपरिसर्प, **'पक्खी'** शब्द से खेचर **'सीहा'** शब्द से चतुष्पद स्थलचर, **'उरगा'** शब्द से उरपरिसर्प, **'इत्थियाओ'** शब्द से सोलह ही भेदों की स्त्रियाँ तथा उपलक्षण से पुरुष और नपुंसक अर्थात् तीनों वेदी, **'मच्छा मणुया'** शब्द से जलचर और कर्म भूमि मनुष्य पुरुष और नपुंसक वेदी समझना चाहिये। दूसरी नरक से सातवीं नरक तक आने वाले सभी जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय ही होते हैं। असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों का उपपात तो प्रथम नरक में ही होता है।

असुरकुमारा णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो देवेहिंतो उववज्जंति। एवं जेहिंतो णेरइयाणं उववाओ तेहिंतो असुरकुमाराण वि भाणियव्वो, णवरं असंखिज्जवासाउय-अकम्म भूमग अंतरदीवग मणुस्स तिरिक्ख जोणिएहिंतो वि उववज्जंति, सेसं तं चेव। एवं जाव थणियकुमारा भाणियव्वा॥ ३१०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार कहाँ से (किस गति से) आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों से आकर असुरकुमार उत्पन्न नहीं होते हैं, तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार जहाँ से आकर नैरयिक उत्पन्न होते हैं वहाँ से आकर असुरकुमार का भी उपपात कहना चाहिए। विशेष यह है कि असंख्यात वर्ष की आयु वाले, अकर्मभूमिज एवं अन्तरद्वीपज मनुष्यों और तिर्यंचों से भी उत्पन्न होते हैं। शेष सभी बातें पूर्वानुसार समझनी चाहिये। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कह देना चाहिये।

विवेचन - असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य और तिर्यंच युगलिक होते हैं। युगलिक मरकर देवगति में ही जाते हैं। अतः भवनपतियों में भी युगलिक उत्पन्न हो सकते हैं।

पुढवीकाइया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति किं णेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति ?

गोयमा ! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, देवेहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों से, तिर्यंचों से, मनुष्यों से, देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव नैरयिकों से उत्पन्न नहीं होते किन्तु तिर्यंच योनिकों से, मनुष्यों से और देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! एगिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो वि उववज्जंति जाव पंचिंदिय-तिरिक्ख जोणिएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि वे पृथ्वीकायिक जीव तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ एगिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति जाव वणस्सइकाइएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पुढवीकाइएहिंतो वि जाव वणस्सइकाइएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिकों से यावत् वनस्पतिकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वनस्पतिकायिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ पुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति किं सुहुमपुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति, बायर पुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! यदि पृथ्वीकायिक जीव पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या बादर पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं और बादर पृथ्वीकायिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ सुहुमपुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्त सुहुम पुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्त सुहुम पुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पृथ्वीकायिक जीव सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ बायरपुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति, एवं जाव वणस्सइकाइया चउक्कएणं भेएणं उववाएयव्वा॥ ३११॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पृथ्वीकायिक बादर पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिकों तक चार-चार भेद करके उनकी उत्पत्ति के विषय में कह देना चाहिये।

विवेचन - पृथ्वीकायिक आदि पांचों एकेन्द्रिय जीव पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, और वनस्पतिकाय में उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार पांचों एकेन्द्रियों का परस्पर में उत्पाद कह देना चाहिए।

जइ बेइंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तग बेइंदिएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तग बेइंदिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति। एवं तेइंदियचउरिंदिएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव यदि बेइन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक बेइन्द्रिय तिर्यंचों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक बेइन्द्रिय तिर्यंचों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ पंचिंदिय तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं जलयर पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, एवं जेहिंतो णेरइयाणं उववाओ भणिओ तेहिंतो एएसिं वि भाणियव्वो, णवरं पज्जत्तग अपज्जत्तगेहिंतो वि उववज्जंति, सेसं तं चेव ॥ ३१२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार जिन-जिन से नैरयिकों के उपपात के विषय में कहा है उन उन से पृथ्वीकायिकों से लेकर वनस्पतिकायिकों तक का भी उत्पाद कह देना चाहिये। विशेष यह है कि पर्याप्तकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं और अपर्याप्तकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं। शेष सब पूर्व के अनुसार समझ लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिम मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतियमणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पृथ्वीकायिक जीव मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! दोनों से आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, अकम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति? सेसं जहा णेरइयाणं णवरं अपज्जत्तएहिंतो वि उववज्जंति॥ ३१३॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव यदि गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसा नैरयिकों के उपपात के विषय में कहा है उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिये। विशेष यह है कि अपर्याप्तक कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ देवेहिंतो उववज्जंति किं भवणवासी देवेहिंतो उववज्जंति, वाणमंतर देवेहिंतो उववज्जंति, जोइसिय देवेहिंतो उववज्जंति, वेमाणिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! भवणवासीदेवेहिंतो वि उववज्जंति जाव वेमाणिय देवेहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक यदि देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं? वाणव्यंतर देवों से आकर उत्पन्न होते हैं? ज्योतिषी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं? या वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! भवनवासी देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् वैमानिक देवों से भी आकर उत्पन्न आकर होते हैं।

जइ भवणवासीदेवेहिंतो उववज्जंति किं असुरकुमार देवेहिंतो उववज्जंति जाव थणियकुमार देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! असुरकुमार देवेहिंतो वि उववज्जंति जाव थणियकुमार देवेहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव यदि भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या असुरकुमार देवों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् स्तनितकुमार देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार देवों से यावत् स्तनितकुमार देवों से अर्थात् दस ही प्रकार के भवनवासी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ वाणमंतर देवेहिंतो उववज्जंति किं पिसाएहिंतो उववज्जंति जाव गंधव्वेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पिसाएहिंतो वि उववज्जंति जाव गंधव्वेहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पृथ्वीकायिक जीव वाणव्यंतर देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पिशाचों से यावत् गन्धर्वों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पिशाचों से यावत् गन्धर्वों तक सभी प्रकार के वाणव्यंतर देवों से आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ जोइसिय देवेहिंतो उववज्जंति किं चंद विमाणेहिंतो उववज्जंति जाव तारा विमाणेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! चंदविमाण जोइसिय देवेहिंतो वि उववज्जंति जाव तारा विमाण जोइसिय देवेहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव यदि ज्योतिषी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या चन्द्रविमानवासी ज्योतिषी देवों से यावत् तारा विमानवासी ज्योतिषी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! चन्द्रविमानवासी ज्योतिषी देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् तारा विमानवासी ज्योतिषी देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति? किं कप्पोवग वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति, कप्पाईय वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति।

गोयमा! कप्पोवग वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति, णो कप्पाईय वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव यदि वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं या कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु कल्पातीत वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

विवेचन - सौधर्म देवलोक से लेकर अच्युत देवलोक तक बारह देवलोकों के देव कल्पोपपन्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहलाते हैं और नवग्रैवेयक तथा पांच अनुत्तर विमान के देव कल्पातीत कहलाते हैं। उपपन्न का अर्थ है युक्त - सहित और अतीत का अर्थ है-रहित।

प्रश्न - कल्पोपपन्न और कल्पातीत का क्या अर्थ है?

उत्तर - "कल्प" का अर्थ है मर्यादा। जिन देवों में इन्द्र, सामानिक, आभियोगिक आदि छोटे बड़े की मर्यादा है उन्हें कल्पोपपन्न कहते हैं। यह मर्यादा बारहवें देवलोक तक है। आगे नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान के देवों में छोटे बड़े की मर्यादा नहीं है किन्तु सभी देव अपने आपको 'अहमिन्द्र' (मैं इन्द्र हूँ) समझते हैं। इसलिए वे कल्पातीत देव कहलाते हैं।

जइ कप्पोवग वेमाणिय देवेहिंतो उववज्जंति किं सोहम्मेहिंतो उववज्जंति जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! सोहम्मीसाणेहिंतो उववज्जंति, णो सणंकुमार जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति। एवं आउकाइया वि। एवं तेउवाउकाइया वि, णवरं देववज्जेहिंतो उववज्जंति। वणस्सइकाइया जहा पुढवीकाइया। बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया एए जहा तेउवाऊ देववज्जेहिंतो भाणियव्वा ॥ ३१४॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! यदि पृथ्वीकायिक जीव कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या वे सौधर्म कल्प के देवों से यावत् अच्युत कल्प के देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म कल्प और ईशान कल्प के देवों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु सनत्कुमार कल्प से लेकर अच्युत कल्प तक के देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

इसी प्रकार अप्कायिकों के उपपात के विषय में कहना चाहिए। इसी प्रकार तेजस्कायिकों एवं वायुकायिकों के उपपात के विषय में कहना चाहिये। विशेषता यह है कि देवों को छोड़ कर शेष नैरयिकों, तिर्यंचों तथा मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं। वनस्पतिकायिकों का उपपात पृथ्वीकायिकों के उपपात के समान समझना चाहिए।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों का उपपात तेजस्कायिकों एवं वायुकायिकों के उपपात के समान समझना चाहिये। देवों को छोड़ कर शेष नैरयिकों, तिर्यंचों तथा मनुष्यों से इनकी उत्पत्ति समझनी चाहिये।

विवेचन - पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय इन तीनों में नैरयिक तिर्यंच और मनुष्यों से आकर उत्पन्न तो होते ही हैं किन्तु देवों में से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों में से पहला सौधर्म देवलोक तथा दूसरा ईशान देवलोक इन दो वैमानिक देवलोकों से आकर उत्पन्न हो सकते हैं। तेउकाय, वायुकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रियों में आकर किसी भी जाति के देव उत्पन्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं होते हैं क्योंकि स्थानांग सूत्र के चौथे स्थान में तीन विकलेन्द्रिय, तेउ, वायु और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय इन सभी को क्षुद्र जीव (अगले भव में मोक्ष में जाने की अयोग्यता वाले) बताया गया है। किन्तु सिर्फ नैरयिक, तिर्यंच और मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं।

पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति किं णेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णेरइएहिंतो वि उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो वि उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति, देवेहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे नैरयिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच योनिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से भी आकर उत्पन्न होते हैं और देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

विवेचन-चारों गति के जीव मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों में आकर उत्पन्न हो सकते हैं।

जइ णेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो उववज्जंति जाव अहेसत्तमा पुढवी णेरइएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! रयणप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव अहेसत्तमा पुढवी णेरइएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदिएहिंतो उववज्जंति जाव पंचिंदिएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! एगिंदिएहिंतो वि उववज्जंति जाव पंचिंदिएहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रियों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रियों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों से भी आकर उत्पन्न होते हैं।

जइ एगिंदिएहिंतो उववज्जंति किं पुढवीकाइएहिंतो उववज्जंति? एवं जहा पुढवीकाइयाणं उववाओ भणिओ तहेव एएसिं वि भाणियव्वो, णवरं देवेहिंतो जाव सहस्सार कप्पोवग वेमाणिय देवेहिंतो वि उववज्जंति, णो आणय कप्पोवग वेमाणिय देवेहिंतो जाव अच्चुएहिंतो उववज्जंति॥ ३१५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव एकेन्द्रियों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं? यावत् वनस्पतिकायिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसा पृथ्वीकायिकों का उपपात कहा है वैसा ही इनका उपपात भी कहना चाहिये। विशेषता यह है कि देवों से यावत् सहस्रार कल्पोपपन्न वैमानिक देवों तक से भी आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु आनत कल्पोपपन्न वैमानिक देवों से लेकर अच्युत कल्पोपपन्न वैमानिक देवों तक से आकर उत्पन्न नहीं होते।

विवेचन - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों में सातों नरक, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म देवलोक से लेकर आठवें सहस्रार नामक देवलोक तक के देव आकर उत्पन्न हो सकते हैं। किन्तु नववें से आगे अर्थात् आणत, प्राणत, आरण और अच्युत इन चार कल्पोपपन्न और नवग्रैवेयक तथा पांच अनुत्तर विमान के देव वहाँ से चवकर इन पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक तिर्यंच योनिक के जीव तथा मनुष्य मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों में उत्पन्न हो सकते हैं।

मणुस्सा णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति किं णेरइएहिंतो उववज्जंति जाव देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव देवेहिंतो वि उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य गति के जीव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं। यावत् देवों से उत्पन्न होते हैं? अर्थात् मनुष्य में किस गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य, नैरयिकों से भी आकर उत्पन्न होते हैं यावत् देवों से भी आकर उत्पन्न होते हैं। अर्थात् चारों गति के जीव मरकर मनुष्यों में उत्पन्न हो सकते हैं।

जइ णेरइएहिंतो उववज्जंति किं रयणप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो उववज्जंति,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सक्करप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो उववज्जंति, वालुयप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो उववज्जंति जाव, अहेसत्तमा पुढवी णेरइएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! रयणप्पभा पुढवी णेरइएहिंतो वि उववज्जंति जाव तमापुढवी णेरइएहिंतो वि उववज्जंति, णो अहेसत्तमापुढवी णेरइएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि मनुष्य गति के जीव नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं यावत् अध:सप्तम पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों से यावत् तम:प्रभा पृथ्वी तक के नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु अध:सप्तम पृथ्वी के नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते।

विवेचन - पहली नरक से लेकर छठी नरक तक के जीव मरकर मनुष्यों में उत्पन्न हो सकते हैं किन्तु सातवीं नरक से मरकर मनुष्यों में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। वे तो मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में ही उत्पन्न होते हैं।

जइ तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति किं एगिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति-एवं जेहिंतो पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं उववाओ भणिओ तेहिंतो मणुस्साणं वि णिरवसेसो भाणियव्वो, णवरं अहेसत्तम पुढवी णेरइएहिंतो, तेउकाइएहिंतो वाउकाएहिंतो ण उववज्जंति। सव्वदेवेहिंतो य उववाओ कायव्वो जाव कप्पाईयवेमाणियसव्वट्ठसिद्ध देवेहिंतो वि उववज्जावेयव्वा॥ ३१६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि मनुष्य गति के जीव तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय आदि तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिन-जिन से पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों का उपपात कहा गया है उन-उन से मनुष्यों का भी सारा उपपात कहना चाहिये। विशेष यह है कि मनुष्य अध:सप्तम पृथ्वी के नैरयिकों से, तेजस्कायिकों से और वायुकायिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं। सभी देवों से आकर उत्पन्न होते हैं ऐसा कहना चाहिए। यावत् कल्पातीत वैमानिक देवों-सर्वार्थ सिद्ध विमान तक के देवों से भी उपपात समझना चाहिये।

वाणमंतरदेवा णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति किं णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! जेहिंतो असुरकुमारा उववज्जंति तेहिंतो वाणमंतरा उववज्जावेयव्वा॥ ३१७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वाणव्यंतर देव कहाँ से उत्पन्न होते हैं? अर्थात् वाणव्यन्तर देवों में किस किस गति के जीव आकर उत्पन्न होते हैं? क्या नरक गति, तिर्यंचगति, मनुष्य गति, देवगति से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिन-जिन से असुरकुमार देवों का उपपात कहा है उन-उन से वाणव्यंतर देवों का भी उपपात कह देना चाहिये। अर्थात् नरक गति से और देव गति से आकर जीव वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं किन्तु तिर्यंच गति और मनुष्य गति से आकर जीव वाणव्यन्तर देवों में उत्पन्न होते हैं।

जोइसिया देवा णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति किं णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! एवं चेव, णवरं सम्मुच्छिम असंखिज्जवासाउय खहयर पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियवज्जेहिंतो अंतरदीवग मणुस्सवज्जेहिंतो उववज्जावेयव्वा॥ ३१८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति, देव गति से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इसी प्रकार समझना चाहिये। विशेषता यह है कि ज्योतिषी देवों का उपपात सम्मूर्च्छिम, असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले खेचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों को तथा अन्तरद्वीपज मनुष्यों को छोड़ कर कहना चाहिये। अर्थात् इनसे निकल कर कोई जीव सीधा ज्योतिषी देव नहीं बनता। क्योंकि ज्योतिषी देवों में पन्द्रह कर्म भूमिज तीस अकर्म भूमिज और पांच संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त ये पचास भेद के जीव ही आकर उत्पन्न होते हैं।

वेमाणिया णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति किं णेरइएहिंतो उववज्जंति, तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो देवेहिंतो उववज्जंति। एवं सोहम्मीसाणगदेवा वि भाणियव्वा। एवं सणंकुमारदेवा वि भाणियव्वा, णवरं असंखिज्जवासाउय अकम्मभूमग वज्जेहिंतो उववज्जंति। एवं जाव सहस्सार कप्पोवग वेमाणिय देवा भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देव कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, देवगति से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वैमानिक देव नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते, पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों से आकर उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार सौधर्म और ईशान कल्प के वैमानिक देवों के उपपात के विषय में कहना चाहिये। इसी प्रकार सनत्कुमार देवों के उपपात के विषय में भी कहना चाहिये। विशेषता यह है कि ये असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले अकर्म-भूमिकों को छोड़ कर उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार सहस्रार कल्प तक के देवों का उपपात कहना चाहिये।

विवेचन - पहले देवलोक में पन्द्रह कर्म भूमिज तीस अकर्म भूमिज और पांच संज्ञी तिर्यंच इस प्रकार पचास भेद के जीव आकर उत्पन्न होते हैं। दूसरे देवलोक में पन्द्रह कर्म भूमिज, बीस, अकर्म भूमिज (हेमवत और हैरणयवत क्षेत्र को छोड़कर) और पांच संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त ये चालीस भेद के जीव आकर उत्पन्न होते हैं। तीसरे से आठवें देवलोक तक पन्द्रह कर्म भूमिज मनुष्य और पांच संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त इस प्रकार बीस भेद के जीव आकर उत्पन्न होते हैं।

आणयदेवा णं भंते! कओहिंतो उववज्जंति किं णेरइएहिंतो उववज्जंति, पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, देवेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णो णेरइएहिंतो उववज्जंति, णो तिरिक्खजोणिएहिंतो उववज्जंति, मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, णो देवेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आणत देव (नववें देवलोक के देव) कहाँ से आकर उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों से आकर उत्पन्न होते हैं? तिर्यंच पंचेन्द्रिय से, मनुष्यों से, देव गति से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! आणत देव (नववें देवलोक के देव) नैरयिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते, तिर्यंच योनिकों से आकर उत्पन्न नहीं होते, मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, देवों से आकर उत्पन्न नहीं होते।

विवेचन - नववें देवलोक से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक सिर्फ मनुष्यों से ही आकर उत्पन्न होते हैं। तिर्यंचों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सम्मुच्छिम मणुस्सेहिंतो उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो वववज्जंति, णो सम्मुच्छिम मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि आणत देवलोक के देव मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, किन्तु सम्मूर्च्छिम मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं कम्मभूमिगेहिंतो उववज्जंति अकम्मभूमिगेहिंतो उववज्जंति, अंतरदीवगेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! णो अकम्मभूमिगेहिंतो उववज्जंति, णो अंतरदीवगेहिंतो उववज्जंति, कम्मभूमिग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि आणत देवलोक के देव गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं? या अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! आणत देवलोक के देव कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु अकर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं और अन्तरद्वीपज गर्भज मनुष्यों से भी आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, असंखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! संखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति, णो असंखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि आणत देवलोक के देव कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! आणत देवलोक के देव संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु असंख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते।

जइ संखिज्जवासाउयकम्मभूमग-गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, णो अपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आणत देवलोक के देव यदि संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तकों से आकर उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तकों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! आणत देवलोक के देव पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं सम्मद्दिट्ठि पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमगेहिंतो उववज्जंति, मिच्छद्दिट्ठि पज्जत्तग संखेज्ज वासाउएहिंतो उववज्जंति, सम्मामिच्छद्दिट्ठि पज्जत्तग संखेज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! सम्मद्दिट्ठि पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो वि उववज्जंति, मिच्छादिट्ठि पज्जत्तगेहिंतो वि उववज्जंति, णो सम्मामिच्छद्दिट्ठि पज्जत्तगेहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि आणत देवलोक के देव पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! आणत देवलोक के देव सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु सम्यग् मिथ्यादृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ सम्मद्दिट्ठि पज्जत्तग संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय-मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं संजय सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, असंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, संजयासंजयसम्मद्दिट्ठि पज्जत्तगसंखिज्जवासाउएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! तीहिंतो वि उववज्जंति। एवं जाव अच्चुओ कप्पो। एवं गेविज्जग देवा वि, णवरं असंजय संजयासंजएहिंतो वि एए पडिसेहेयव्वा। एवं जहेव गेविज्जग देवा तहेव अणुत्तरोववाइया वि, णवरं इमं णाणत्तं संजया चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि आणत देवलोक के देव सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्म-भूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या असंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या संयता-संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! तीनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार प्राणत, आरण और अच्युत कल्प के देवों के उपपात के विषय में भी कह देना चाहिये। इसी प्रकार नवग्रैवेयक देवों के उपपात के विषय में भी समझना चाहिये। विशेषता यह है कि असंयतों और संयतासंयतों से इनकी उत्पत्ति का निषेध करना चाहिये।

जिस प्रकार ग्रैवेयक देवों का उपपात कहा है उसी प्रकार पांच अनुत्तर विमानों के देवों का भी उपपात समझना चाहिये। विशेषता यह है कि अनुत्तरौपपातिक देवों में संयत ही उत्पन्न होते हैं।

जइ संजयसम्मद्दिट्ठि पज्जत्तग संखिज्ज वासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेहिंतो उववज्जंति किं पमत्त संजय सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, अपमत्त संजय सम्मद्दिट्ठिपज्जत्तएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! अपमत्त संजय पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति, णो पमत्त संजय पज्जत्तएहिंतो उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या प्रमत्त संगत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं या अप्रमत्त संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्तक संख्यात वर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अप्रमत्त संयतों से आकर उत्पन्न होते हैं किन्तु प्रमत्त संयतों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

विवेचन - छठे गुणस्थानवर्ती साधुओं को प्रमत्त संयत कहते हैं और सातवें गुणस्थानवर्ती एवं आगे के सब गुणस्थानों में रहने वाले साधुओं को अप्रमत्त संयत कहते हैं।

जइ अपमत्त संजएहिंतो उववज्जंति किं इड्ढिपत्त अपमत्त संजएहिंतो उववज्जंति, अणिड्ढिपत्त अपमत्त संजएहिंतो उववज्जंति?

गोयमा! दोहिंतो वि उववज्जंति॥ ५ दारं॥ ३१९॥

कठिन शब्दार्थ - इड्ढिपत्त - ऋद्धि प्रात, **अणिड्ढिपत्त** - अनृद्धि प्राप्त (ऋद्धि से रहित)।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनुत्तरौपपातिक देव अप्रमत्त संयतों से आकर उत्पन्न होते हैं तो क्या ऋद्धि प्राप्त अप्रमत्त संयतों से उत्पन्न होते हैं या अनृद्धि प्राप्त अप्रमत्त संयतों से आकर उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ऋद्धि प्राप्त अप्रमत्त संयतों एवं अनृद्धि प्राप्त अप्रमत्त संयतों दोनों से ही आकर उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - आमर्ष औषधि आदि अनेक प्रकार की लब्धियों का वर्णन आगमों में भिन्न-भिन्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानों पर कहा गया है किन्तु प्रवचन सारोद्धार में अट्ठाईस लब्धियों के नाम गिनाएं गये हैं। आमर्ष औषधि विप्रुड औषधि यावत् अक्षीणमहानसी लब्धि आदि पुलाक लब्धि आदि अठाईस लब्धियों के नाम बताये गये हैं। इन में से कोई भी लब्धि जिस मुनिराज को प्राप्त होती है उसको ऋद्धि प्राप्त (लब्धि प्राप्त) कहते हैं। (जैन सिद्धान्त बोल संग्रह छठा भाग बोल नं० ९५४ बीकानेर)

प्रस्तुत सूत्रों में कौन-कौन जीव कहाँ से यानी किन-किन गतियों से मृत्यु प्राप्त करके नैरयिक आदि पर्यायों से उत्पन्न होते हैं इसका प्रतिपादन किया गया है।

सामान्य नैरयिकों और रत्नप्रभा के नैरयिकों में देव, नैरयिक, पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय तथा असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले चतुष्पद खेचर उत्पन्न नहीं होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में भी अपर्याप्त, सम्मूर्च्छिम मनुष्य तथा गर्भजों में अकर्मभूमिज और अंतरद्वीपज मनुष्यों तथा कर्मभूमियों में जो भी असंख्यात वर्ष की आयु वाले तथा संख्यात वर्ष की आयु वालों में अपर्याप्तक मनुष्यों से आकर उत्पन्न होने का निषेध है। शर्करा प्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में सम्मूर्च्छिमों से, वालुकाप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में भुजपरिसर्पों से, पंकप्रभा के नैरयिकों में खेचरों से, धूमप्रभा नैरयिकों में चतुष्पदों से, तमःप्रभा नैरयिकों में उरःपरिसर्पों से तथा तमस्तमापृथ्वी के नैरयिकों में स्त्रियों से उत्पन्न होने का निषेध है।

भवनवासियों में देव, नैरयिक, पृथ्वीकायिकादि पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, अपर्याप्तक तिर्यंच पंचेन्द्रियों तथा सम्मूर्च्छिम एवं अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पत्ति का निषेध है, शेष का विधान है। पृथ्वी-पानी-वनस्पतिकायिकों में सभी नैरयिक तथा सनत्कुमारादि देवों से एवं तेजस्काय वायुकाय बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चउरिन्द्रियों में सभी नैरयिकों, सभी देवों से आकर उत्पत्ति का निषेध है तथा तिर्यंच पंचेन्द्रियों में आणत आदि देवों से आकर उत्पत्ति का निषेध है। मनुष्यों में सातवीं नरक के नैरयिकों तथा तेजस्काय वायुकाय से आकर उत्पत्ति का निषेध है।

वाणव्यन्तर देवों में देव, नारक, पृथ्वी आदि पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, अपर्याप्तक तिर्यंच पंचेन्द्रिय तथा सम्मूर्च्छिम एवं अपर्याप्तक गर्भज मनुष्यों से आकर उत्पत्ति का निषेध है। ज्योतिषी देवों में सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय, असंख्यात वर्ष की आयु वाले खेचर तथा अन्तरद्वीपज मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं। सौधर्म और ईशानकल्प के देवों में तथा सनत्कुमार से सहस्रारकल्प तक के देवों में अकर्मभूमिज मनुष्यों से भी आकर उत्पत्ति का निषेध है। आणत आदि देवलोकों में तिर्यंच पंचेन्द्रियों से, नौ ग्रैवेयकों में असंयतों तथा संयतासंयतों एवं विजयादि पांच अनुत्तर विमानों में मिथ्यादृष्टि मनुष्यों तथा प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि मनुष्यों से आकर उत्पन्न नहीं होते हैं।

॥ पांचवां द्वार समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छठा उद्वर्त्तना द्वार

णेरइया णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, देवेसु उववज्जंति?

गोयमा! णो णेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, णो देवेसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव अनन्तर उद्वर्त्तन करके (निकल कर) कहाँ जाते हैं? कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं अथवा तिर्यंच योनिकों में उत्पन्न होते हैं? मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं या देवों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीव अन्तर उद्वर्त्तन करके नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते किन्तु तिर्यंच योनिकों में उत्पन्न होते हैं या मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, किन्तु देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति?

गोयमा! णो एगिंदिएसु उववज्जंति जाव णो चउरिंदिएसु उववज्जंति, एवं जेहिंतो उववाओ भणिओ तेसु उववट्टणा वि भाणियव्वा, णवरं सम्मुच्छिमेसु ण उववज्जंति। एवं सव्वपुढवीसु भाणियव्वं, णवरं अहेसत्तमाओ मणुस्सेसु ण उववज्जंति॥ ३२०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि नैरयिक जीव तिर्यंच योनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं अथवा यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे न तो एकेन्द्रियों में और न ही बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीवों में उत्पन्न होते हैं किन्तु पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार जिन-जिन से उपपात कहा गया है, उन-उन में ही उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि वे सम्मूर्च्छिमों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

इसी प्रकार समुच्चय नारकी की तरह समस्त पृथ्वियों में उद्वर्त्तना का कथन करना चाहिए। विशेषता यह है कि सातवीं नरक पृथ्वी से निकल कर मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते।

असुरकुमारा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, देवेसु उववज्जंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णो णेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, णो देवेसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार जाति के देव अनन्तर उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते हैं? कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं? तिर्यंच योनिकों में, मनुष्यों में, देवों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते, तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होते हैं, मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं किन्तु देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति, किं एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति?

गोयमा! एगिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति, णो बेइंदिएसु उववज्जंति जाव णो चउरिंदिएसु उववज्जंति, पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि असुरकुमार जाति के देव तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या वे एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रियों तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों में उत्पन्न होते हैं, किन्तु बेइन्द्रिय में, तेइन्द्रिय में और चउरिन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होते हैं।

जइ एगिंदिएसु उववज्जंति किं पुढवीकाइय एगिंदिएसु उववज्जंति जाव वणस्सइ काइय एगिंदिएसु उववज्जंति?

गोयमा! पुढवीकाइय एगिंदिएसु वि उववज्जंति, आउकाइय एगिंदिएसु वि उववज्जंति, णो तेउकाइएसु उववज्जंति, णो वाउकाइएसु उववज्जंति, वणस्सइ काइएसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि असुरकुमार जाति के देव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं तो क्या पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं यावत् वनस्पति कायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे पृथ्वीकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, अप्कायिक एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु न तो तेजस्कायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं और न वायुकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं, परन्तु वनस्पतिकायिक एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं।

जइ पुढवीकाइएसु उववज्जंति किं सुहुमपुढवीकाइएसु उववज्जंति, बायर पुढवीकाइएसु उववज्जंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! बायर पुढवीकाइएसु उववज्जंति, णो सुहुमपुढवीकाइएसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि असुरकुमार जाति के देव पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं या बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं, किन्तु सूक्ष्म पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

जइ बायरपुढवीकाइएसु उववज्जंति किं पज्जत्तग बायर पुढवीकाइएसु उववज्जंति, अपज्जत्तग बायर पुढवीकाइएसु उववज्जंति?

गोयमा! पज्जत्तएसु उववज्जंति णो अपज्जत्तएसु उववज्जंति। एवं आउकाइएसु वि, वणस्सइसु वि भाणियव्वं। पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियेसु मणुस्से य जहा णेरइयाणं उववट्टणा सम्मुच्छिमवज्जा तहा भाणियव्वा। एवं जाव थणियकुमारा॥ ३२१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि असुरकुमार जाति के देव बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या पर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं या अपर्याप्तक बादर पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तकों में उत्पन्न होते हैं किन्तु अपर्याप्तकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

इसी प्रकार अप्कायिकों और वनस्पतिकायिकों में उत्पत्ति के विषय में भी कहना चाहिए।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिकों और मनुष्यों में उत्पत्ति के विषय में उसी प्रकार कहना चाहिए, जिस प्रकार सम्मूर्च्छिम को छोड़कर नैरयिकों की उद्वर्त्तना कही गयी है।

इसी प्रकार स्तनितकुमारों तक की उद्वर्त्तना समझ लेनी चाहिए।

पुढवीकाइया णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, देवेसु उववज्जंति?

गोयमा! णो णेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्खजोणियेसु मणुस्सेसु उववज्जंति, णो देवेसु उववज्जंति। एवं जहा एएसिं चेव उववाओ तहा उव्वट्टणा वि देववज्जा भाणियव्वा। एवं आउ-वणस्सइ-बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया वि। एवं तेउ० वाउ०, णवरं मणुस्सवज्जेसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव अनन्तर उद्वर्त्तन करके कहाँ जाते हैं? कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों में, तिर्यंच योनिकों में, मनुष्यों में, देवों में उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव नैरयिकों में उत्पन्न नहीं होते किन्तु तिर्यंचयोनिकों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं, परन्तु देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए।

इसी प्रकार अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रियों की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए।

इसी प्रकार तेजस्कायिक और वायुकायिक की भी उद्वर्त्तना कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि वे मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति, किं णेरइएसु उववज्जंति, तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति देवेसु उववज्जंति?

गोयमा! णेरइएसु उववज्जंति जाव देवेसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक अनन्तर उद्वर्त्तना करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, तिर्यंच योनिकों में, मनुष्यों में देवों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं।

जइ णेरइएसु उववज्जंति किं रयणप्पभा पुढवी णेरइएसु उववज्जंति जाव अहेसत्तमा पुढवी णेरइएसु उववज्जंति?

गोयमा! रयणप्पभा पुढवी णेरइएसु उववज्जंति जाव अहेसत्तमा पुढवी णेरइएसु उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं, तो क्या रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं यावत् अधःसप्तम पृथ्वी के नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् अधःसप्तमपृथ्वी के नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं।

जइ तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति किं एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदिएसु उववज्जंति?

गोयमा! एगिंदिएसु उववज्जंति जाव पंचिंदिएसु उववज्जंति। एवं जहा एएसिं चेव उववाओ उव्वट्टणा वि तहेव भाणियव्वा, णवरं असंखिज्जवासाउएसु वि एए उववज्जंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न होते हैं तो क्या एकेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं यावत् पंचेन्द्रियों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! एकेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् पंचेन्द्रियों में भी उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा है, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि ये असंख्यातवर्षों की आयु वालों में भी उत्पन्न होते हैं।

जइ मणुस्सेसु उववज्जंति किं सम्मुच्छिम मणुस्सेसु उववज्जंति, गब्भवक्कंतिय मणुस्सेसु उववज्जंति?

गोयमा! दोसु वि उववज्जंति। एवं जहा उववाओ तहेव उव्वट्टणा वि भाणियव्वा, णवरं अकम्मभूमग-अंतरदीवग-गब्भवक्कंतिय मणुस्सेसु असंखिज्जवासाउएसु वि एए उववज्जंतीति भाणियव्वं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो क्या सम्मूर्च्छिम मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं अथवा गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे दोनों में ही उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार जैसा इनका उपपात कहा, वैसी ही इनकी उद्वर्त्तना भी कहनी चाहिए। विशेषता यह है कि अकर्मभूमिज, अन्तरद्वीपज और असंख्यातवर्ष की आयु वाले मनुष्यों में भी ये उत्पन्न होते हैं, यह कहना चाहिए।

जइ देवेसु उववज्जंति किं भवणवईसु उववज्जंति जाव किं वेमाणिएसु उववज्जंति?

गोयमा! सव्वेसु चेव उववज्जंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव देवों में उत्पन्न होते हैं तो क्या भवनपति देवों में उत्पन्न होते हैं? यावत् वैमानिकों में भी उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सभी प्रकार के देवों में उत्पन्न होते हैं।

जइ भवणवईसु उववज्जंति किं असुरकुमारेसु उववज्जंति जाव थणियकुमारेसु उववज्जंति?

गोयमा! सव्वेसु चेव उववज्जंति। एवं वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु णिरंतरं उववज्जंति जाव सहस्सारो कप्पोत्ति॥ ३२२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यदि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव भवनपति देवों में उत्पन्न होते हैं तो क्या असुरकुमारों में उत्पन्न होते हैं? यावत् स्तनितकुमारों में उत्पन्न होते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सभी भवनपतियों में उत्पन्न होते हैं।

इसी प्रकार वाणव्यंतरों, ज्योतिषियों और सहस्रारकल्प नामक आठवें देवलोक तक के वैमानिक देवों में निरन्तर उत्पन्न होते हैं।

मणुस्सा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति तिरिक्ख जोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, देवेसु उववज्जंति?

गोयमा! णेरइएसु वि उववज्जंति जाव देवेसु वि उववज्जंति। एवं णिरंतरं सव्वेसु ठाणेसु उववज्जंति।

गोयमा! सव्वेसु ठाणेसु उववज्जंति, ण कहिं च पडिसेहो कायव्वो जाव सव्वट्ठसिद्धदेवेसु वि उववज्जंति, अत्थेगइया सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परिणिव्वायंति, सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! मनुष्य अनन्तर उद्वर्त्तन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं? क्या वे नैरयिकों में उत्पन्न होते हैं? तिर्यंच योनिकों में, मनुष्यों में, देवों में भी उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों में भी उत्पन्न होते हैं, यावत् देवों में भी उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न - हे भगवन्! क्या मनुष्य नैरयिक आदि सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे इन सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं, कहीं भी इनके उत्पन्न होने का निषेध नहीं करना चाहिए, यावत् सर्वार्थसिद्ध देवों तक में भी उत्पन्न होते हैं और कई मनुष्य सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त करते हैं और सर्वदुःखों का अन्त करते हैं।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिय-सोहम्मीसाणा य जहा असुरकुमारा, णवरं जोइसियाण य वेमाणियाण य चयंतीति अभिलावो कायव्वो।

भावार्थ - वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म एवं ईशान देवलोक के वैमानिक देवों की उद्वर्त्तन-प्ररूपणा असुरकुमारों के समान समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि ज्योतिषी और वैमानिक देवों के लिए 'च्यवन करते हैं' इस शब्द का प्रयोग करना चाहिए।

सणंकुमारदेवा णं भंते! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति, कहिं उववज्जंति? किं णेरइएसु उववज्जंति, तिखिक्ख जोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु उववज्जंति, देवेसु उववज्जंति?

गोयमा! जहा असुरकुमारा, णवरं एगिंदिएसु ण उववज्जंति। एवं जाव सहस्सारगदेवा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक के देव अनन्तर च्यवन करके कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! इनकी वक्तव्यता असुरकुमारों के उपपात सम्बन्धी वक्तव्यता के समान समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते। इसी प्रकार की वक्तव्यता सहस्रार देवों तक की कहनी चाहिए।

विवेचन - भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और सौधर्म और ईशान अर्थात् पहले और दूसरे देवलोक के देव वहाँ से चवकर एकेन्द्रियों में अर्थात् पृथ्वी, पानी, वनस्पति में आकर उत्पन्न हो सकते हैं इसके आगे के अर्थात् सनत्कुमार आदि देवलोकों के देव एकेन्द्रियों में उत्पन्न नहीं होते हैं। इसी प्रकार बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रियों में भी उत्पन्न नहीं होते हैं। किन्तु तिर्यंच पंचेन्द्रियों में उत्पन्न हो सकते हैं।

आणय जाव अणुत्तरोववाइया देवा एवं चेव, णवरं णो तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति, मणुस्सेसु पज्जत्तग-संखिज्जवासाउय कम्मभूमग गब्भवक्कंतिय मणुस्सेसु उववज्जंति॥ ६ दारं॥ ३२३॥

भावार्थ - आनत नामक नववें देवलोक के देवों से लेकर अनुत्तरौपपातिक देवों तक वक्तव्यता इसी प्रकार समझनी चाहिए। विशेषता यह है कि तिर्यंचयोनिकों में उत्पन्न नहीं होते, मनुष्यों में भी पर्याप्तक संख्यातवर्ष की आयु वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - नैरयिक स्वभव से अर्थात् नरक से निकल कर (मरण प्राप्त कर) संख्यात वर्ष के आयुष्य वाले गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं परन्तु सातवीं नरक पृथ्वी के नैरयिक संख्यात वर्ष के आयुष्य वाले गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों में ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्यों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

असुरकुमार आदि भवनपति देव, वाणव्यंतर, ज्योतिषी, सौधर्म और ईशान देवलोक के देव बादर पर्याप्त पृथ्वी, पानी, वनस्पति, गर्भज संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले तिर्यंच पंचेन्द्रियों और मनुष्यों में उत्पन्न हो सकते हैं।

पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीव तिर्यंच गति और मनुष्य गति में उत्पन्न होते हैं तथा तेजस्कायिक और वायुकायिक तिर्यंच गति में उत्पन्न होते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देवगति में उत्पन्न होते हैं किन्तु वैमानिक देवों में सहस्रार कल्प पर्यन्त ही उत्पन्न होते हैं। मनुष्य चारों गतियों के सभी स्थानों में उत्पन्न होते हैं। सनत्कुमार से लेकर सहस्रार तक के देव संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तथा आनत देवलोक से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक के देव पर्याप्तक, संख्यात वर्ष की आयु वाले, कर्म भूमिज गर्भज संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं।

उपर्युक्त पांचवें व छट्ठे द्वार में जीवों के ५६३ भेदों को संक्षिप्त करके ११० भेदों में समाविष्ट किया गया है। वह इस प्रकार है - नरक गति के १४ भेदों को सात भेदों में, तिर्यंच गति के ४८ भेदों को ४६ भेदों में, मनुष्य गति के ३०३ भेदों को ३ भेदों में, देवगति के १९८ भेदों को ४९ भेदों में समाविष्ट किया गया है। इस प्रकार ये कुल मिलाकर १०५ भेद हुए। तिर्यंच गति में सन्नी स्थलचर व सन्नी खेचर के दो-दो भेद कर दिये गये हैं - १. संख्यात वर्ष आयुष्य २. असंख्यात वर्ष आयुष्य (युगलिक)। मनुष्य गति में ३०३ भेदों को अपेक्षा से ५ भेदों में भी समाविष्ट किया गया है - १. संख्यात वर्ष आयुष्य कर्म भूमिज २. असंख्यात वर्ष आयुष्य कर्म भूमिज ३, अकर्म भूमिज मनुष्य ४. अन्तर द्वीपज मनुष्य और ५ सम्मूर्च्छिम मनुष्य। इस प्रकार तिर्यंच गति के पूर्वोक्त ४६ भेद और दो युगलिक मिलाकर ४८ भेद हुए। मनुष्य गति में तीन युगलिक सहित ६ भेद हुए। इस प्रकार सात नारकी, ४८ तिर्यंच, ६ मनुष्य, ४९ देवता ये कुल ११० भेद हुए। इन भेदों में नरक गति एवं देव गति के भेदों में पर्याप्त अपर्याप्त भेद नहीं करके समुच्चय भेदों को ही लिया गया है। देवगति के ४९ भेद इस प्रकार हैं - १० भवनपति, ८ वाणव्यंतर, ५ ज्योतिषी, १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान। इन ११० भेदों में एक सिद्ध गति का भेद मिलाने पर १११ भेद हो जाते हैं। इस प्रकार इन दो द्वारों में अपेक्षा से ५६३ जीवों के भेदों को संक्षिप्त करके ११० भेदों में तथा सिद्ध गति सहित १११ भेदों में समाविष्ट किया गया है।

॥ छठा द्वार समाप्त ॥

सातवाँ परभविकायुष्य द्वार

णेरइया णं भंते! कइ भागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

गोयमा! णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। एवं असुरकुमारा वि, एवं जाव थणियकुमारा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वर्तमान आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर नैरयिक परभव की आयु का बन्ध करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक नियम से छह मास आयु शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं।

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक का परभविक-आयुष्यबन्ध सम्बन्धी कथन करना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - पूर्व के छह द्वारों में जिन जीवों का नरक आदि गतियों में विविध प्रकार से उपपात कहा है उन जीवों ने पूर्व भव में आयुष्य बांधा है उसके बाद ही उनका उपपात हुआ है क्योंकि आयुष्य के बंध हुए बिना उपपात नहीं होता है। अतः सातवें द्वार में किन-किन जीवों ने वर्तमान भव के आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर अगले भव का आयुष्य बांधा है। इसका क्रमशः वर्णन किया गया है।

पुढवीकाइया णं भंते! कइ भागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

गोयमा! पुढवीकाइया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सोवक्कमाउया य णिरुवक्कमाउया य। तत्थ णं जे ते णिरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते सिय तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभाग तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभाग तिभाग तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति।

आउ-तेउ-वाउ-वणस्सइ काइयाणं बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं वि एवं चेव ॥ ३२४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव वर्तमान आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं, वे इस प्रकार हैं - १. सोपक्रम आयु वाले और २. निरुपक्रम आयु वाले। इनमें से जो निरुपक्रम (उपक्रम रहित) आयु वाले हैं, वे नियम से आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु का बन्ध करते हैं तथा इनमें जो सोपक्रम (उपक्रम सहित) आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य बन्ध करते हैं, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य बन्ध करते हैं और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य शेष रहने पर परभव का आयुष्य बन्ध करते हैं। क्योंकि चार गति में जाने वाले जीव का आयुष्य इस भव में ही बांध लिया जाता है।

अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिकों तथा बेइन्द्रिय-तेइन्द्रिय-चउरिन्द्रियों के पारभविक-आयुष्यबन्ध का कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए।

विवेचन - आयुष्य के दो भेद होते हैं। वे इस प्रकार हैं - सोपक्रम और निरुपक्रम। तत्त्वार्थ सूत्र में आयुष्य के दो भेदों के नाम इस प्रकार दिये हैं - अपवर्तनीय और अनपवर्तनीय। सोपक्रम और अपवर्तनीय आयुष्य शस्त्र आदि का निमित्त पाकर बीच में ही टूट जाता है। निरुपक्रम और अनपवर्तनीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयुष्य बीच में नहीं टूटता है। किन किन जीवों का आयुष्य निरुपकर्म और अनपवर्तनीय होता है उनका कथन तत्त्वार्थ सूत्र के दूसरे अध्याय के अन्तिम सूत्र में इस प्रकार किया गया है -

ओपपातिक चरम देहोत्तमपुरुषाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ॥ ५२ ॥

अर्थ - औपपातिक (उपपात से जन्म लेने वाले-नारक और देव) चरम शरीरी, उत्तम पुरुष और असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले जीव ये सब निरुपकर्म एवं अनपवर्तनीय आयु वाले ही होते हैं। चरम शरीरी का अर्थ है - उसी भव में मोक्ष जाने वाले। उत्तम पुरुष का अर्थ है तीर्थङ्कर चक्रवर्ती बलदेव वासुदेव ये ५४ उत्तम पुरुष कहलाते हैं। असंख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कुछ मनुष्य और कुछ तिर्यंच ही होते हैं। यथा-तीस अकर्म भूमि, छप्पन अन्तरद्वीप और कर्म भूमि में उत्पन्न युगलिक ही होते हैं। स्थलचर और खेचर तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव ही युगलिक होते हैं। जलचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प युगलिक नहीं होते हैं। ये अकर्मभूमियों आदि में भी होते हैं परन्तु वहाँ युगलिक के रूप में नहीं होते हैं।

प्रश्न - अपवर्तनीय आयुष्य में क्या बंधा हुआ आयुष्य घट जाता है?

उत्तर - बन्धा हुआ आयुष्य घटता नहीं है किन्तु ठाणाङ्ग सूत्र के सातवें ठाणे में बताए हुए अग्नि, शस्त्र आदि सात प्रकार के उपघातों में से कोई उपघात अथवा अन्य इसी प्रकार का उपघात उपस्थित होने पर अर्थात् दुर्घटना घटने पर शेष आयु को खींच कर उसी समय भोग लेता है यथा - कल्पना से कोई दस हाथ की लम्बी मूंज की रस्सी है उसको लम्बा करके एक मुँह जलाया अब वह धीरे-धीरे जलती हुई आगे बढ़ती है। इस प्रकार दस हाथ जलने में संभवतया दस मिनट लगे किन्तु दूसरे व्यक्ति ने उसी दस हाथ की मूंज की रस्सी को इकट्ठी करके गोल कुण्डलाकार कर दिया और अग्नि जला दी तो वह रस्सी तत्काल एक दो मिनट में जल जाती है। तो क्या उस रस्सी का कुछ अंश बच गया है? नहीं बचा, किन्तु सम्पूर्ण जल गयी अथवा दूसरा दृष्टान्त एक दीपक में रात भर चले उतना तेल डालकर एक बत्ती लगा दी, वह रात भर चलेगा और दो बत्ती लगाई तो आधी रात तक चलेगा और चार बत्ती लगा दी तो एक प्रहर ही चलेगा तथा दस बारह बत्तियाँ लगा दी तो पांच-दस मिनट ही चलता है। तो सहज ही प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या बाकी का बचा हुआ रातभर चलने वाला तैल व्यर्थ चला गया? नहीं। रातभर चलने वाले तैल को समाप्त होने का तरीका दूसरा हो गया इसलिए वह सारा तैल थोड़े समय में ही समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार अपवर्तनीय आयुष्य को भोगने का तरीका दूसरा हो जाने से थोड़े समय में ही पूरा का पूरा भोग लिया जाता है व्यर्थ नहीं जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि अनपवर्तनीय आयुष्य लम्बी की हुई मूंज की रस्सी जलने के समान है और अपवर्तनीय आयुष्य इकट्ठी की हुई मूंज की रस्सी जलने के समान एक साथ सारा आयुष्य भोग लिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। यही दोनों अपवर्तनीय और अनपवर्तनीय आयुष्य का भेद है। जिस प्रकार आयुष्य बढ़ता भी नहीं है उसी प्रकार घटता भी नहीं है। बन्धा हुआ आयुष्य उस भव में पूरा का भूरा भोग लिया जाता है।

सोपक्रमी आयुष्य संख्यात वर्षायुष्क जीवों के ही होता है अर्थात् अधिक से अधिक एक करोड़ पूर्व तक की आयु वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य के जीव सोपक्रमी आयुष्य वाले हो सकते हैं। युगलिक तिर्यंच मनुष्यों को छोड़कर एवं ५४ उत्तम पुरुष के सिवाय शेष औदारिक के दसों दण्डकों वाले जीव सोपक्रमी आयुष्य वाले हो सकते हैं। वे जीव एक करोड़ पूर्व तक की आयु का कोई भी उपक्रम प्राप्त होने पर मात्र अन्तर्मुहूर्त्त में शेष बचे हुए आयुष्य को एक साथ खपा सकते हैं ऐसा टीकाओं में बताया गया है। ऐसा मानने में कोई आगमिक बाधा नहीं आती है।

पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया णं भंते! कइभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति?

गोयमा! पंचिंदिय तिरिक्खजोणिया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - संखिज्जवासाउया य असंखिज्जवासाउया य। तत्थ णं जे ते असंखिज्जवासाउया ते णियमा छम्मासावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। तत्थ णं जे ते संखिज्जवासाउया ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सोवक्कमाउया य णिरुवक्कमाउया य। तत्थ णं जे ते णिरुवक्कमाउया ते णियमा तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति, तत्थ णं जे ते सोवक्कमाउया ते णं सिय तिभागे परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभाग-तिभागे परभवियाउयं पकरेंति, सिय तिभाग तिभाग तिभागावसेसाउया परभवियाउयं पकरेंति। एवं मणुस्सा वि।

वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा णेरइया॥ ७ दारं॥ ३२५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव, आयुष्य का कितना भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य का बन्ध करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीव दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. संख्यात वर्ष की आयु वाले और २. असंख्यात वर्ष की आयु वाले। उनमें से जो असंख्यात वर्ष की आयु वाले हैं, वे नियम से छह मास आयु शेष रहते परभव का आयुष्य बन्ध कर लेते हैं और जो इनमें संख्यातवर्ष की आयु वाले हैं, वे दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. सोपक्रम आयु वाले और २. निरुपक्रम आयु वाले। इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले हैं, वे नियमतः आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं। जो सोपक्रम आयु वाले हैं, वे कदाचित् आयुष्य का तीसरा भाग शेष रहने पर पारभविक आयुष्यबन्ध करते हैं, कदाचित् आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहने पर परभव का आयुष्यबन्ध करते हैं और कदाचित् आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग शेष रहने पर पारभविक आयुष्य का बन्ध करते हैं। यावत् अन्तर्मुहूर्त्त आयुष्य शेष रहने पर परभव का आयुष्य का बन्ध तो करते ही हैं।

मनुष्यों का पारभविक आयुष्य बन्ध-सम्बन्धी कथन भी इसी प्रकार करना चाहिए।

वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों के परभव का आयुष्यबन्ध नैरयिकों के समान कहना चाहिए। अर्थात् छह मास आयुष्य शेष रहने पर आयुष्य का बन्ध करते हैं।

विवेचन - नरक के नैरयिक, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव अपनी अपनी आयु के छह मास शेष रहने पर परभव का आयुष्य बांधते हैं। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और तीन विकलेन्द्रिय के जीव के सोपक्रम और निरुपक्रम दो प्रकार की आयु होती है इनमें जो निरुपक्रम आयु वाले होते हैं वे अपनी अपनी आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। सोपक्रम आयु वाले कभी अपनी आयु का तीसरा भाग शेष रहने पर, कभी अपनी आयु के तीसरे भाग का तीसरा भाग यानी नवाँ भाग शेष रहने पर और कभी अपनी आयु के तीसरे भाग के तीसरे भाग का तीसरा भाग यानी सताईसवाँ भाग शेष रहने पर परभव का आयुष्य बांधते हैं। कभी अपनी आयु के सताईसवें भाग का तीसरा भाग यानी इक्यासीवां भाग शेष रहने पर, कभी इक्यासीवें भाग का तीसरा भाग यानी २४३ वाँ भाग शेष रहने पर और कभी २४३ वें भाग का तीसरा भाग यानी ७२९ वाँ भाग शेष रहने पर यावत् अन्तर्मुहूर्त्त शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य संख्यात वर्ष की आयु वाले और असंख्यात वर्ष की आयु वाले होते हैं। असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य निरुपक्रम आयु वाले होते हैं। वे अपनी आयु के छह मास शेष रहने पर परभव की आयु बांधते हैं। संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य निरुपक्रम और सोपक्रम-दोनों प्रकार की आयु वाले होते हैं। पृथ्वीकाय की तरह ये दोनों कह देना चाहिए।

॥ सातवां द्वार समाप्त ॥

आठवाँ आकर्ष द्वार

कइविहे णं भंते! आउयबंधे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते। तंजहा - १ जाइणाम णिहत्ताउए, २ गइणाम णिहत्ताउए, ३. ठिईणाम णिहत्ताउए, ४. ओगाहणणाम णिहत्ताउए, ५. पएसणाम णिहत्ताउए, ६. अणुभावणाम णिहत्ताउए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आयुष्य का बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! आयुष्य का बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है - १. जाति नाम निधत्तायु २. गति नाम निधत्तायु ३. स्थिति नाम निधत्तायु ४. अवगाहना नाम निधत्तायु ५. प्रदेश नाम निधत्तायु और ६. अनुभाव (अनुभाग) नाम निधत्तायु।

विवेचन - आगामी भव में उत्पन्न होने के लिए जाति, गति आयु आदि का बांधना आयु बंध कहा जाता है। इसके छह भेद हैं -

१. जाति नाम निधत्त आयु - एकेन्द्रियादि जाति नामकर्म के साथ निषेक को प्राप्त हुआ जाति नाम निधत्तायु है।

फल भोग के लिए होने वाली कर्मपुद्गलों की रचना विशेष को निषेक कहते हैं।

२. गति नाम निधत्त आयु - नरक आदि गति नाम कर्म के साथ निषेक को प्राप्त आयु गति नाम निधत्तायु है।

३. स्थिति नाम निधत्त आयु - आयु कर्म द्वारा जीव का विशिष्ट भव में रहना स्थिति है। स्थिति रूप परिणाम के साथ निषेक को प्राप्त आयु स्थिति नाम निधत्तायु है।

४. अवगाहना नाम निधत्त आयु - औदारिकादि शरीर नाम कर्म रूप अवगाहना के साथ निषेक को प्राप्त आयु अवगाहना नाम निधत्त आयु है।

५. प्रदेशनाम निधत्त आयु - प्रदेश नाम के साथ निषेक प्राप्त आयु प्रदेश नाम निधत्तायु है।

६. अनुभाव नाम निधत्त आयु - आयु द्रव्य का विपाक रूप परिणाम अथवा अनुभाव रूप नामकर्म अनुभाव नाम है। अनुभाव नाम कर्म के साथ निषेक को प्राप्त आयु अनुभाव (अनुभाग) नाम निधत्तायु है।

जाति आदि नाम कर्म के विशेष से आयु के भेद बताने का यही आशय है कि आयु कर्म प्रधान है। यही कारण है कि नरकादि आयु का उदय होने पर ही जाति आदि नाम कर्म का उदय होता है।

यहाँ भेद तो आयु के लिए हैं पर शास्त्रकार ने आयु बन्ध के छह भेद लिखे हैं। इससे शास्त्रकार यह बताना चाहते हैं कि आयु बन्ध से अभिन्न है। अथवा बन्ध प्राप्त आयु ही शब्द का वाच्य है।

णेरइयाणं भंते! कइविहे आउयबंधे पण्णत्ते?

गोयमा! छव्विहे आउयबंधे पण्णत्ते। तंजहा - जाइणाम णिहत्ताउए, गइणाम णिहत्ताउए, ठिईणाम णिहत्ताउए, ओगाहणणाम णिहत्ताउए, पएसणाम णिहत्ताउए, अणुभावणाम णिहत्ताउए, एवं जाव वेमाणियाणं॥ ३२६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों का आयुष्य बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों का आयुष्य बन्ध छह प्रकार का कहा गया है। वह इस प्रकार है -

१. जाति नाम निधत्तायु २. गति नाम निधत्तायु ३. स्थिति नाम निधत्तायु ४. अवगाहना नाम निधत्तायु ५. प्रदेश नाम निधत्तायु और ६. अनुभाव (अनुभाग) नाम निधत्तायु।

इसी प्रकार यावत् वैमानिकों तक के आयुष्य बन्ध की प्ररूपणा समझ लेनी चाहिए।

विवेचन - नैरयिक जीवों के छह प्रकार का आयु बन्ध कहा गया है। यथा - जाति नाम निधत्त आयु यावत् अनुभाव (अनुभाग) नाम निधत्त आयु। इसी प्रकार वैमानिक देवों पर्यन्त सभी जीवों के छह प्रकार का आयुष्य बन्ध होता है।

जीवा णं भंते! जाइणाम णिहत्ताउयं कइहिं आगरिसेहिं पगरेंति? गोयमा! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा जाव उक्कोसेणं अट्ठहिं आगरिसेहिं पगरेंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जाति नाम निधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जीव जाति नाम निधत्तायु को जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बान्धते हैं।

विवेचन - प्रश्न - आकर्ष किसे कहते हैं?

उत्तर - अध्यवसाय की धारारूप प्रयत्न विशेष से कर्म पुद्गलों को ग्रहण करना अर्थात् अपनी तरफ खींचना आकर्ष कहलाता है। जैसे गाय पानी पीती हुई भय से इधर उधर देखती है और रुक-रुक कर पानी पीती है, इसी प्रकार जीव भी जब आयु बंध योग्य तीव्र अध्यवसाय से जातिनाम निधत्तायु बांधता है तो एक आकर्ष से बांध लेता है। मन्द अध्यवसाय होने पर दो तीन आकर्ष से, मन्दतर अध्यवसाय होने पर तीन चार आकर्ष से और मन्दतम अध्यवसाय होने पर पांच छह सात अथवा आठ आकर्ष से आयु बांधता है।

णेरइया णं भंते! जाइणाम णिहत्ताउयं कइहिं आगरिसेहिं पगरेंति? गोयमा! जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा, जाव उक्कोसेणं अट्ठहिं आगरिसेहिं पगरेंति एवं जाव वेमाणिया। एवं गइणाम णिहत्ताउए वि, ठिईणाम णिहत्ताउए वि, ओगाहणणाम णिहत्ताउए वि, पएसणाम णिहत्ताउए वि, अणुभावणाम णिहत्ताउए वि॥ ३२७॥

भावार्थ- प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव जाति नाम निधत्तायु को कितने आकर्षों से बांधते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीव जाति नाम निधत्तायु को जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बांधते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार यावत् वैमानिक तक के देवों के जाति नाम-निधत्तायु की आकर्ष-संख्या का कथन करना चाहिए।

इसी प्रकार गति नाम निधत्तायु, स्थिति नाम निधत्तायु, अवगाहना नाम निधत्तायु, प्रदेश नाम निधत्तायु और अनुभाव (अनुभाग) नाम निधत्तायु का बन्ध भी जघन्य एक, दो या तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से करते हैं।

विवेचन - यह आकर्ष का नियम आयुष्य के साथ बंधने वाले जाति, गति आदि प्रकृतियों के लिए है। समुच्चय जीव और चौबीस दण्डक में उक्त छह प्रकार का आयुष्य बंध १-२-३ यावत् ८ आकर्षों से बन्धता है।

एएसि णं भंते! जीवाणं जाइणामणिहत्ताउयं जहण्णेणं एक्केण वा दोहिं वा तीहिं वा जाव उक्कोसेणं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा जाइणाम णिहत्ताउयं अट्ठहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा, सत्तहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखिज्जगुणा, छहिं आगरिसेहिं पकरेमाणा संखिज्जगुणा, एवं पंचहिं संखिज्जगुणा, चउहिं संखिज्जगुणा, तीहिं संखिज्जगुणा, दोहिं संखिज्जगुणा, एगेणं आगरिसेणं पकरेमाणा संखिज्जगुणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन जीवों में जघन्य एक, दो और तीन अथवा उत्कृष्ट आठ आकर्षों से बन्ध करने वाले जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे कम जीव जाति नाम निधत्तायु को आठ आकर्षों से बांधने वाले हैं, सात आकर्षों से बांधने वाले इनसे संख्यात गुणा हैं, छह आकर्षों से बांधने वाले इनसे संख्यात गुणा हैं, इसी प्रकार पांच आकर्षों से बांधने वाले इनसे संख्यात गुणा हैं, चार आकर्षों से बांधने वाले इनसे संख्यात गुणा हैं, तीन आकर्षों से बांधने वाले, इनसे संख्यात गुणा हैं, दो आकर्षों से बांधने वाले, इनसे संख्यात गुणा हैं और एक आकर्ष से बांधने वाले जीव इनसे भी संख्यात गुणा हैं।

एवं एएणं अभिलावेणं जाव अणुभागणाम णिहत्ताउयं, एवं एए छप्पिय अप्पाबहुदंडगा जीवाइया भाणियव्वा॥ ८ दारं॥ ३२८॥

॥ पण्णवणाए भगवईए छट्ठं वक्कंतिपयं समत्तं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - इसी प्रकार इस अभिलाप से गति नाम निधत्तायु, स्थिति नाम निधत्तायु, अवगाहना नाम निधत्तायु, प्रदेश नाम निधत्तायु और यावत् अनुभाव (अनुभाग) नाम निधत्तायु को बांधने वालों का जान लेना चाहिए। इस प्रकार ये छहों ही अल्पबहुत्व सम्बन्धी दण्डक जीव से आरम्भ करके कहने चाहिए।

विवेचन - एक दो तीन यावत् आठ आकर्ष से जाति नाम यावत् अनुभाग नाम निधत्तायु बंध करने वाले जीवों का अल्प बहुत्व इस प्रकार है - सबसे थोड़े जीव आठ आकर्ष से आयु बंध करने वाले, सात आकर्ष से आयु बंध करने वाले संख्यात गुणा, छह आकर्ष से आयु बंध करने वाले संख्यात गुणा, पांच आकर्ष से आयु बंध करने वाले संख्यात गुणा, इसी तरह क्रमशः चार, तीन, दो और एक आकर्ष से आयुबंध करने वाले उत्तरोत्तर संख्यात गुणा जानना चाहिए। समुच्चय जीव की तरह चौबीस दण्डक कहना चाहिए। एक आकर्ष से बांधने वाले जीव सबसे अधिक है।

शंका - उपर्युक्त एक से आठ आकर्षों से आयु बन्ध करने वाले जीवों में कौन सोपक्रमी या निरुपक्रमी आयु वाले होते हैं?

समाधान - यद्यपि एक आकर्ष से यावत् आठ आकर्षों से आयुबन्ध करने वाले जीवों में सोपक्रमी और निरुपक्रमी दोनों प्रकार की आयु वाले जीव होते हैं तथापि एक आकर्ष से आयु बांधने वाले जीवों में सोपक्रमी आयु वाले अधिक होते हैं इसी प्रकार आठ आकर्षों से आयु बांधने वाले जीवों में निरुपक्रमी आयुष्य वाले जीव अधिक होते हैं। क्योंकि उपर्युक्त अल्प बहुत्व में आठ आकर्षों से आयु बांधने वाले जीव सबसे थोड़े बताये हैं।

प्रश्न - जीवों के आयुबन्ध का जघन्य यावत् उत्कृष्ट कालमान कितना-कितना समझना चाहिये?

उत्तर - 'बंधविहाणं - उत्तरठिईबन्धो' ग्रंथ में जाति नाम कर्म बंध के जघन्य उत्कृष्ट कालमान के ७१ बोलों की अल्प बहुत्व बताई गई है। (अल्प बहुत्व का वर्णन जानने के लिए 'उत्तरठिईबन्धो ग्रंथ' देखना चाहिए) इस प्रकार उपर्युक्त अल्प बहुत्व में ५० बोल तो संख्यात गुणा के और २० बोल विशेषाधिक के आये हैं।

इस अल्प बहुत्व के सम्बन्ध में आगमज्ञ बहुश्रुत गुरु भगवन्तों का फरमाना है कि - 'आयुबन्ध के कालमान में - जाति नाम बन्ध में' - जाति परिवर्तन होने की संभावना नहीं है। अर्थात् नरकायु बांधते हुए पंचेन्द्रिय जाति ही बंधेगी दूसरी जाति नहीं बंधेगी। तिर्यंच आयु बांधते हुए यदि पंचेन्द्रिय जाति बंध रही है तो आयु बंध के काल तक पंचेन्द्रिय जाति ही बंधेगी, एकेन्द्रिय जाति नहीं बंधेगी। अतः जाति नाम बंध के उत्कृष्ट काल से बड़ा आयुबन्ध का काल होने की संभावना नहीं है।

अतः आयुबन्ध का कालमान - एकेन्द्रिय के उत्कृष्ट जातिबन्ध जितना भी माना जाय तो इस अल्प बहुत्व में - सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीव के पंचेन्द्रिय जाति के उत्कृष्ट बंध काल के बाद में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४९ बोल संख्यात गुणा के आते हैं तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त तक के जीव का बंध काल अन्तर्मुहूर्त्त जितना ही है। संज्ञी अपर्याप्त की स्थिति भी अन्तर्मुहूर्त्त की है।

एक मुहूर्त्त (४८ मिनिट) में १६७७७२१६ आवलिकाएं होती है। जिसका २४ वाँ छेदनक एक आवलिका प्रमाण आता है। छेदनक में आधे आधे होते हैं। संख्यात गुणा में कम से कम दुगुने दुगुने लेवे तो भी उपर्युक्त अल्प बहुत्व में ५० बार संख्यातगुणा होने से आवलिका के भी अनेकों बार (२५ बार) छेदनक करे इतना छोटा आवलिका के संख्यातवें भाग प्रमाण - 'सूक्ष्म एकेन्द्रिय के पंचेन्द्रिय जाति का उत्कृष्ट बन्ध काल' होता है। अतः आयु बंध का काल - 'आवलिका के (बहुत छोटे) संख्यातवें भाग प्रमाण' होता है। ऐसा इस अल्प बहुत्व से स्पष्ट हो रहा है। इस प्रकार मानने में कोई आगमिक बाधा ध्यान में नहीं आती है।

॥ आठवाँ द्वार समाप्त ॥

॥ प्रज्ञापना सूत्र का छठा व्युत्क्रांति पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्तमं ऊसासपयं

सातवाँ उच्छ्वास पद

उक्खेवो (उत्क्षेप-उत्थानिका) - इस सातवें पद का नाम "**उस्सासपयं**" (उच्छ्वास पद) है। इसमें चौबीस दण्डक के समस्त संसारी जीवों के श्वासोच्छ्वास तथा उनके विरह काल का वर्णन किया गया है। जीवन धारण करने के लिए प्राणी को श्वासोच्छ्वास लेने की आवश्यकता होती है। चाहे वह मुनि हो, चक्रवर्ती हो अथवा किसी भी प्रकार का देव हो, नारक हो अथवा एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक किसी भी जाति का प्राणी हो उसे सांस लेना ही पड़ता है इसलिये श्वासोच्छ्वास रूप प्राण का अत्यन्त महत्त्व है और वह जीव तत्त्व से सम्बन्धित है। इस कारण शास्त्रकार ने इस पद में प्रत्येक प्रकार के जीव का श्वासोच्छ्वास और उसके विरह काल की प्ररूपणा की है।

समस्त संसारी जीवों के उच्छ्वास-निःश्वास के विरहकाल की प्ररूपणा से एक बात स्पष्ट होती है वह यह है कि जो जीव जितने अधिक दुःखी होते हैं उन जीवों की श्वासोच्छ्वास क्रिया उतनी ही अधिक और शीघ्र चलती है और अत्यन्त दुःखी जीवों के तो यह क्रिया सतत अविरहित अर्थात् निरन्तर चला करती है। जो जीव जितने-जितने अधिक, अधिकतर और अधिकतम सुखी होते हैं उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया उत्तरोत्तर देर से चलती है अर्थात् उनका श्वासोच्छ्वास और विरह काल अधिक, अधिकतर और अधिकतम होता है क्योंकि श्वासोच्छ्वास क्रिया अपने आप में दुःख रूप होती है। यह बात अपने अनुभव से भी सिद्ध है और शास्त्र भी इस बात का समर्थन करते हैं।

छठे पद में जीवों के उपपात विरह आदि का वर्णन किया गया है। इस सातवें पद में नैरयिक आदि रूप में उत्पन्न हुए और श्वासोच्छ्वास पर्याप्तिक से पर्याप्त नैरयिक आदि जीवों की उच्छ्वास निःश्वास क्रिया का विरह काल और अविरह काल का वर्णन किया गया है। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं -

नैरयिकों में श्वासोच्छ्वास काल

णेरइया णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! सययं संतयामेव आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा ॥ ३२१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ - आणमंति - ऊपर श्वास लेना, **पाणमंति** - नीचा श्वास छोड़ना, **ऊससंति** - ऊपर श्वांस लेना, **णीससंति** - नीचा श्वास छोड़ना, **सययं** - सतत, **संतयामेव** - सततमेव-निरन्तर।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव कितने काल से उच्छ्वास लेते हैं और श्वास छोड़ते हैं?

उत्तर-हे गौतम! नैरयिक जीव सतत और निरन्तर उच्छ्वास लेते हैं और निरन्तर श्वास छोड़ते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि नैरयिक जीव सतत-निरंतर श्वांस लेते हैं और निरन्तर श्वास छोड़ते हैं क्योंकि नैरयिक जीव अत्यंत दुःखी होते हैं और दुःखी जीव निरन्तर उच्छ्वास निःश्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। आचार्यों ने उनकी निरन्तर श्वासोच्छ्वास लेने की क्रिया को लुहार की धमनी से उपमा दी है।

आगम में **'आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, णीससंति वा'** पाठ है। टीकाकार के अनुसार **'आणमंति पाणमंति'** क्रियाओं का अर्थ स्पष्ट करने के लिए **'ऊससंति णीससंति'** क्रियाएँ दी हैं और इनका अर्थ ऊपर श्वास लेना और नीचा श्वास छोड़ना यानी श्वास लेना और श्वास छोड़ना है। टीकाकार ने इन चारों का अलग-अलग अर्थ भी दिया है। तदनुसार **'आणमंति पाणमंति'** का अर्थ श्वास निःश्वास की आभ्यन्तर क्रिया है और **'ऊससंति णीससंति'** का अर्थ श्वास निःश्वास की बाह्य क्रिया है। हृदय का स्पन्दन होना आभ्यन्तर श्वास है और नाड़ी का स्पन्दन बाह्य श्वास है।

असुरकुमार आदि देवों में श्वासोच्छ्वास विरह काल

असुरकुमारा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं साइरेगस्स पक्खस्स आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, णीससंति वा।

कठिन शब्दार्थ - थोवाणं - स्तोक, **साइरेगस्स** - सातिरेक, **पक्खस्स** - पक्ष का।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार कितने काल से उच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार जघन्य सात स्तोक और उत्कृष्ट कुछ अधिक एक पक्ष अर्थात् पन्द्रह दिनों से उच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

विवेचन - प्रश्न - श्वासोच्छ्वास का क्या परिमाण है?

उत्तर - **हट्ठस्सऽनवगल्लस्स णिरुवकिट्ठस्स जंतुणो।**

एगे ऊसासणीसासे, एस पाण त्ति वुच्चइ॥ १॥

अर्थात् - हृष्ट पुष्ट तथा रोग रहित मनुष्य का एक उच्छ्वास और एक निःश्वास मिलकर एक श्वासोच्छ्वास कहलाता है। दोनों को मिलाकर एक प्राण भी कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न - स्तोक किसको कहते हैं?

उत्तर - **सतपाणाणि से थोवे, सतथोवा से लवे।**
लवाणं सत्तहत्तरि एस मुहुत्ते वियाहिए।
तिन्नि सहस्सा सत्त य सयाइं तेवत्तरिं च उच्छ्वासा।
एस मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणंतणाणीहिं॥ १॥

अर्थ - सात प्राण का एक स्तोक होता है, सात स्तोक का एक लव होता है, सित्तहत्तर लव का एक मुहूर्त होता है। एक मुहूर्त में ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते हैं।

जैन सिद्धान्त के अनुसार काल का अत्यन्त सूक्ष्म भाग समय कहलाता है। असंख्यात समय की एक आवलिका होती है। संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास होता है और संख्यात आवलिका का एक निःश्वास होता है। एक उच्छ्वास और एक निःश्वास मिलकर एक प्राण होता है। सात प्राण का एक स्तोक होता है और सात स्तोक का एक लव होता है। सित्तहत्तर लव या ३७७३ श्वासोच्छ्वास का एक मुहूर्त होता है। इस तरह आगे बढ़ते बढ़ते एक सौ चौराणु (१९४) अंक की संख्या को शीर्ष प्रहेलिका कहते हैं। चौपन्न (५४) अंक लिखकर उनके ऊपर १४० बिन्दियाँ लगाने से शीर्ष प्रहेलिका संख्या का प्रमाण आता है। यहाँ तक का काल गणित का विषय माना गया है। इसके आगे भी काल का परिमाण बतलाया गया है परन्तु वह गणित का विषय नहीं है, किन्तु उपमा का विषय है। (अनुयोगद्वार सूत्र कालानुपूर्वी अधिकार तथा भगवती सूत्र शतक छह उद्देशक सात तथा जैन सिद्धान्त बोल संग्रह बीकानेर के सातवें भाग में इसका वर्णन है। विशेष जिज्ञासुओं को उन-उन स्थलों पर देखना चाहिए।)

णागकुमारा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तण्हं थोवाणं, उक्कोसेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा एवं जाव थणियकुमाराणं॥ ३३०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नागकुमार कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नागकुमार जघन्य सात स्तोक से उत्कृष्ट मुहूर्त पृथक्त्व से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार तक समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में असुरकुमार आदि देवों के श्वासोच्छ्वास के विरह का वर्णन किया गया है। यहाँ देवों में जिसकी जितने सागरोपम की स्थिति होती है उनको उतने पक्ष जितना श्वासोच्छ्वास क्रिया का 'विरहकाल' होता है। असुरकुमारों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सागरोपम की है क्योंकि "**चमरबलिसारमहियं**" चमर की एक सागरोपम और बलीन्द्र की कुछ अधिक एक सागरोपम की स्थिति है ऐसा शास्त्र वचन है। अतः वे कुछ अधिक एक पक्ष से श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

असुरकुमार जाति के देव जघन्य सात स्तोक उत्कृष्ट एक पक्ष से कुछ अधिक समय से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। भवनपति के शेष नौ निकाय के देव जघन्य सात स्तोक से उत्कृष्ट प्रत्येक मुहूर्त्त से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। अर्थात् दो मुहूर्त से लेकर नौ मुहूर्त्त तक की संख्या को शास्त्रीय भाषा में "**मुहुत्तपुहुत्त**" कहते हैं। थोकड़ा वाले 'पुहुत्त' के स्थान पर 'प्रत्येक' शब्द का प्रयोग करते हैं। जिसका अर्थ भी यही है कि दो से लेकर नौ तक की संख्या को 'प्रत्येक' शब्द से कहते हैं।

पृथ्वीकायिक आदि में श्वासोच्छ्वास विरह काल

पुढवीकाइया णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! वेमायाए आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा। एवं जाव मणुस्सा।

वाणमंतरा जहा णागकुमारा॥ ३३१॥

कठिन शब्दार्थ - वेमायाए - विमात्रा से।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीव विमात्रा-अनियमित रूप से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। इसी प्रकार यावत् मनुष्यों तक समझना चाहिए। नागकुमारों के समान वाणव्यंतर देवों का श्वासोच्छ्वास कह देना चाहिए।

विवेचन - पृथ्वीकायिक विमात्रा से-विषम रूप से-अनियमित रूप से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं अर्थात् उनकी श्वासोच्छ्वास क्रिया का विरहकाल अनियमित होता है।

पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य का श्वासोच्छ्वास लेना नियमित नहीं है अतः उनके श्वासोच्छ्वास का विरह काल भी अनियमित ही जानना चाहिए।

वाणव्यंतर देव जघन्य सात स्तोक से और उत्कृष्ट मुहूर्त्त पृथक्त्व से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोडते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिषी देवों में श्वासोच्छ्वास विरहकाल

जोइसिया णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेण वि मुहुत्तपुहुत्तस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा ॥ ३३२ ॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! ज्योतिषी देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोडते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ज्योतिषी देव जघन्य मुहूर्त्त पृथक्त्व से और उत्कृष्ट भी मुहूर्त्त पृथक्त्व से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोडते हैं।

विवेचन - ज्योतिषी देव जघन्य और उत्कृष्ट मुहूर्त्त पृथक्त्व से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। किन्तु यहाँ पर ऐसा समझना चाहिए कि जघन्य दो, तीन मुहूर्त्त और उत्कृष्ट आठ, नौ मुहूर्त्त आदि समझना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जघन्य से उत्कृष्ट की संख्या अधिक समझनी चाहिए।

वैमानिक देवों में श्वासोच्छ्वास विरहकाल

वेमाणिया णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं आणमंति वा, पाणमंति वा, ऊससंति वा, णीससंति वा॥ ३३३ ॥

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! वैमानिक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! वैमानिक देव जघन्य मुहूर्त्त पृथक्त्व और उत्कृष्ट तेतीस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोडते हैं।

विवेचन - वेमाणिया.......तेत्तीसाए पक्खाणं - 'अनुत्तर विमान के देव $१६\frac{१}{२}$ पक्ष श्वास लेते हैं फिर $१६\frac{१}{२}$ पक्ष छोड़ते है। ऐसा नहीं समझना। टीका में कहा है - 'इह देवेषु यस्स यावन्ति सागरोपमाणि स्थितिस्तस्य तावत् पक्ष प्रमाण उच्छ्वास निःश्वास किया विरह कालः' 'जिन देवों की जितनी सागरोपम की स्थिति है - उन देवों के उच्छ्वास निःश्वास क्रिया का विरह काल भी उतने ही पक्षों का होता है। अतः पूज्य म. सा. का फरमाना है कि पहले टीका पाठ देखा नहीं था अतः ऐसा अर्थ करते थे- परन्तु अब 'टीका' के आशय से इस प्रकार से समझना - जैसे देवों में मनोभक्षी आहार ग्रहण की प्रक्रिया अन्तर्मुहूर्त्त तक चलती है। अन्तर्मुहूर्त्त तक आभोग आहार ग्रहण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं। फिर ३३ हजार, ३१ हजार वर्षों के अन्तर से आहार ग्रहण करते हैं। यहाँ आहार अन्तर यानी एक बार आहार ग्रहण करने के बाद आहार कब तक शरीर में काम आता है। पुनः आहार की जरूरत कब पड़ती है? **'केवई कालस्स आहारट्ठे समुप्पज्जई।'** वैसे ही देवादि सभी में एक बार के श्वास ग्रहण की प्रक्रिया अन्तर्मुहूर्त तक चलती है फिर अंतर्मुहूर्त तक श्वास छोड़ते हैं। जैसे-एक सैकण्ड तक श्वासोच्छ्वास लेते गये फिर एक सैकेण्ड तक श्वासोच्छ्वास छोड़ते गये। जैसे हम अन्तर्मुहूर्त तक आक्सीजन लेते हैं, वह शरीर में जाकर आवश्यकतानुसार रहती है, फिर अन्तर्मुहूर्त तक कार्बनडाइऑक्साइड (CO_2) छोड़ते हैं। छोड़ते ही पुनः श्वास नहीं ले लेते हैं, कुछ रूक कर पुनः लेते छोड़ते हैं। (कुंभक आदि तीन प्रकार की श्वासप्रक्रिया है - पूरक-श्वास लेना, रेचक-श्वास छोड़ना, लंभक यानी श्वास लेना छोड़ना। दोनों बंद शरीर में अन्तर्मुहूर्त तक रहना।) उस पुनः श्वास ग्रहण करने में ३३ पक्ष का विरह पड़ जायेगा। ३३ पक्ष तक अन्दर का श्वास काम करता रहेगा। फिर ३३ पक्ष बाद श्वास लेने की जरूरत पड़ेगी। अन्यथा घुटन होगी। जैसे हमें जरूरत होने पर श्वास नहीं लेने पर घुटन होती है। वैसे ही यहाँ पर भी समझना। ऐसे ही चार जाति के देवों में समझना। सभी में श्वास ग्रहण निस्सरण की प्रक्रिया अन्तर्मुहूर्त तक चलती है। फिर आगम वर्णित स्व स्व स्थानों में ३३, ३१ आदि पक्षों का विरह पड़ जाता है। श्वास ग्रहण निस्सरण प्रक्रिया दुःख रूप होने से देवों में ज्यों-ज्यों स्थिति बढ़ती है, त्यों-त्यों विरह बढ़ता है। देवों के तेरह दण्डकों का विरह नियत होता है जबकि औदारिक के दस दण्डकों का विरह अनियत होता है।

सोहम्म देवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं दोण्हं पक्खाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सौधर्म नामक पहले देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सौधर्म देव जघन्य मुहूर्त पृथक्त्व से और उत्कृष्ट दो पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

ईसाणग देवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगस्स मुहुत्तपुहुत्तस्स, उक्कोसेणं साइरेगाणं दोण्हं पक्खाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ईशान नामक दूसरे देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ईशान देव जघन्य कुछ अधिक मुहुर्त्त पृथक्त्व और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

सणंकुमार देवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं दोण्हं पक्खाणं, उक्कोसेणं सत्तण्हं पक्खाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सनत्कुमार देव जघन्य दो पक्ष से और उत्कृष्ट सात पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

माहिंदग देवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं साइरेगं दोण्हं पक्खाणं, उक्कोसेणं साइरेगं सत्तण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! माहेन्द्र नामक चौथे देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! माहेन्द्र देव जघन्य से कुछ अधिक दो पक्ष से और उत्कृष्ट कुछ अधिक सात पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

बंभलोग देवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव णीससंति वा उक्कोसेणं दसण्हं पक्खाणं आणमंति वाजाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! ब्रह्मलोक देव जघन्य सात पक्ष से और उत्कृष्ट दस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोडते हैं।

लंतग देवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा जाव णीससंति वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! जहण्णेणं दसण्हं पक्खाणं, उक्कोसेणं चउदसण्हं पक्खाणं आणमंति वाजाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लांतक नामक छठे देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! लांतक देव जघन्य दस पक्ष से और उत्कृष्ट चौदह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

महासुक्क देवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं चउदसण्हं पक्खाणं, उक्कोसेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं आणमंति वा जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! महाशुक्र नामक सातवें देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! महाशुक्र देव जघन्य चौदह पक्ष से और उत्कृष्ट सतरह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोडते हैं।

सहस्सारग देवा णं भंते! केवइकालस्स आणमंति वा जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तरसण्हं पक्खाणं, उक्कोसेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सहस्रार नामक आठवें देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सहस्रार देव जघन्य सतरह पक्ष से और उत्कृष्ट अठारह पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

आणय देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठारसण्हं पक्खाणं, उक्कोसेणं एगूणवीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आनत नामक नववें देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! आनत देव जघन्य अठारह पक्ष से और उत्कृष्ट उन्नीस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाणय देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणवीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं वीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्राणत नामक दसवें देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! प्राणत देव जघन्य उन्नीस पक्ष से और उत्कृष्ट बीस पक्ष से उच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

आरणदेवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं वीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं एगवीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आरण नामक ग्यारहवें देवलोक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! आरण देव जघन्य बीस पक्ष से और उत्कृष्ट इक्कीस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

अच्चुय देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं एगवीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं बावीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा॥ ३३४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अच्युत नामक बारहवें देवलोक के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अच्युत देव जघन्य इक्कीस पक्ष से और उत्कृष्ट बाईस पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

हिट्ठिम हिट्ठिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं बावीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं तेवीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-अधस्तन (नीचे की त्रिक के नीचे के) ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक देव जघन्य बाईस पक्षों से और उत्कृष्ट तेइस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिट्ठिम मज्झिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं तेवीसाए पक्खाणं उक्कोसेणं चउवीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-मध्यम ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-मध्यम (नीचे की त्रिक के बीच के) ग्रैवेयक देव जघन्य तेइस पक्षों से और उत्कृष्ट चौबीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

हिट्ठिम उवरिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं चउवीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं पणवीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अधस्तन-उपरितन (नीचे की त्रिक के ऊपर के) ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं ?

उत्तर - हे गौतम! अधस्तन-उपरितन ग्रैवेयक देव जघन्य चौबीस पक्षों से और उत्कृष्ट पच्चीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

मज्झिम हिट्ठिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं पणवीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं छव्वीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-अधस्तन (मध्यम त्रिक के नीचे के) ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं ?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-अधस्तन ग्रैवेयक देव जघन्य पच्चीस पक्षों से और उत्कृष्ट छब्बीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

मज्झिम मज्झिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं छव्वीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं सत्तावीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-मध्यम (बीच की त्रिक के बीच के) ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-मध्यम ग्रैवेयक देव जघन्य छब्बीस पक्षों से और उत्कृष्ट सत्ताईस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

मज्झिम उवरिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं सत्तावीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मध्यम-उपरितन (बीच की त्रिक के ऊपर के) ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मध्यम-उपरितन ग्रैवेयक देव जघन्य सत्ताईस पक्षों से और उत्कृष्ट अट्ठाईस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

उवरिम हेट्ठिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं अट्ठावीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं एगूणतीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-अधस्तन (ऊपर की त्रिक के नीचे के) ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं ?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन- अधस्तन ग्रैवेयक देव जघन्य अठाईस पक्षों से और उत्कृष्ट उनतीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

उवरिम मज्झिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं एगूणतीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं तीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-मध्यम (ऊपर की त्रिक के बीच के) ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-मध्यम ग्रैवेयक देव जघन्य उनतीस पक्षों से और उत्कृष्ट तीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

उवरिम उवरिम गेविज्जग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं तीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं एक्कतीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा॥ ३३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उपरितन-उपरितन (ऊपर की त्रिक के ऊपर के) ग्रैवेयक देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक देव जघन्य तीस पक्षों से और उत्कृष्ट इकतीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

विजय-वेजयंत-जयंत-अपराजिय विमाणेसु देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! जहण्णेणं एक्कतीसाए पक्खाणं, उक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विजय, वैजयन्त, जयंत और अपराजित विमानों के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! विजय, वैजयंत, जयन्त और अपराजित विमानों के देव जघन्य इकतीस पक्षों से और उत्कृष्ट तेतीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं।

सव्वट्ठ सिद्धग देवा णं भंते! केवइकालस्स जाव णीससंति वा?

गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसाए पक्खाणं जाव णीससंति वा॥ ३३६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सर्वार्थसिद्ध विमान के देव कितने काल से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोड़ते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सर्वार्थसिद्ध विमान के देव अजघन्य-अनुत्कृष्ट तेतीस पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं और छोडते हैं।

विवेचन - पहले देवलोक के देव जघन्य प्रत्येक मुहूर्त्त से और उत्कृष्ट दो पक्षों से और दूसरे देवलोक के देव जघन्य कुछ अधिक प्रत्येक मुहूर्त्त से उत्कृष्ट कुछ अधिक दो पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

तीसरे देवलोक के देव जघन्य दो पक्षों से और उत्कृष्ट सात पक्षों से और चौथे देवलोक के देव जघन्य कुछ अधिक दो पक्षों से और उत्कृष्ट कुछ अधिक सात पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। पांचवें देवलोक के देव जघन्य सात पक्षों से और उत्कृष्ट दस पक्षों से, छठे देवलोक के देव जघन्य दस पक्षों से और उत्कृष्ट १४ पक्षों से, सातवें देवलोक के देव जघन्य १४ पक्षों से और उत्कृष्ट १७ पक्षों से और आठवें देवलोक के देव जघन्य १७ पक्षों से और उत्कृष्ट १८ पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नवें देवलोक से बारहवें देवलोक तक तथा पहले ग्रैवेयक से नवें ग्रैवेयक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तक जघन्य उत्कृष्ट में एक एक पक्ष बढ़ाना चाहिए। इस तरह नवमें ग्रैवेयक के देव जघन्य ३० पक्षों से और उत्कृष्ट ३१ पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। चार अनुत्तर विमान के देव जघन्य ३१ पक्षों से और उत्कृष्ट ३३ पक्षों से और सर्वार्थसिद्ध के देव जघन्य और उत्कृष्ट बिना ३३ पक्षों से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। देवों में जिनमें जितने सागरोपम की स्थिति है वे उतने ही पक्ष से श्वासोच्छ्वास लेते हैं यानी उनका उतने ही पक्ष का श्वासोच्छ्वास का विरह काल है। देवों की जितने पल्योपम की स्थिति होती है वे उतने ही प्रत्येक मुहूर्त्त से श्वासोच्छ्वास लेते हैं। दस हजार वर्ष की स्थिति वाले देव सात स्तोक से श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

देवों में जो जितनी अधिक आयुष्य वाला है वह उतना अधिक सुखी होता है और सुखी जीवों का उत्तरोत्तर श्वासोच्छ्वास का विरहकाल अधिक होता है क्योंकि उच्छ्वास निःश्वास क्रिया दुःख रूप है इसलिए ज्यों-ज्यों आयुष्य में सागरोपम की वृद्धि होती है त्यों-त्यों उच्छ्वास निःश्वास क्रिया के विरहकाल में भी पक्षों की वृद्धि होती है।

पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य का श्वासोच्छ्वास लेने का समय नियत नहीं है अतः उनके श्वासोच्छ्वास का विरह काल भी अनियत ही समझना चाहिए।

औदारिक दण्डकों के श्वासोच्छ्वास विमात्रा (अनिश्चित समय) से तथा वैक्रिय दण्डकों (नारक, देवों) के श्वासोच्छ्वास निश्चित समय से बताये गये हैं। एक मुहूर्त्त में ३७७३ श्वासोच्छ्वास बताये हैं। वे सभी मनुष्यों के समान रूप से नहीं समझना चाहिये, किन्तु अनुयोग द्वार सूत्र आदि में मुहूर्त्त आदि का माप बताने के लिए तीसरे चौथे आरे के जन्मे हुए जवान एवं पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के श्वासोच्छ्वास से काल गिनती की गई है। ऐसे व्यक्ति के ३७७३ श्वास (हृदय की धड़कन-नाड़ी का स्पन्दन) का एक मुहूर्त्त होता है। ऐसे ३० मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र होता है। अतः सभी के लिए मुहूर्त्त आदि के श्वासोच्छ्वास का निश्चित नहीं समझना चाहिये। प्राणायाम आदि से श्वासोच्छ्वास कम ज्यादा होने में आगमिक बाधा नहीं है परन्तु आयुष्य तो कम ज्यादा नहीं होता है।

श्वासोच्छ्वास लब्धि नाम कर्म से प्राप्त होती है और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से वह लब्धि व्याप्त होती है। श्वासोच्छ्वास नाम कर्म का व्यापार करने में श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति सहयोगी बनती है।

॥ पण्णवणाए भगवईए सत्तमं ऊसासपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का सातवां उच्छ्वास पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अट्ठमं सण्णापयं

आठवाँ संज्ञा पद

उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका) - सातवें पद में जीवों के श्वासोच्छ्वास का और उसके विरह काल का प्रतिपादन किया गया। जीव आदि की पहचान किस प्रकार से होती है यह बात बताने के लिए आठवाँ "**सण्णापयं**" (संज्ञा पद) कहा जाता है। अर्धमागधी भाषा का शब्द "सण्णा" है जिसकी संस्कृत छाया होती है "संज्ञा"। संज्ञा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है- '**संज्ञानं संज्ञा आभोग इत्यर्थः यदिवा सञ्ज्ञायते अनया अयं जीव इति संज्ञा।**' अर्थात् - सम् पूर्वक ज्ञा अवबोधने धातु से संज्ञा शब्द बनता है। जिसका अर्थ है ज्ञान करना तथा यह "जीव" है ऐसा जिस ज्ञान से जाना जाय, उसे संज्ञा कहते हैं। वह संज्ञा दस प्रकार की है जिसका वर्णन आगे मूल पाठ से किया जा रहा है।

प्रज्ञापना सूत्र के सातवें पद में जीवों की श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति नाम कर्म और योग के आश्रित श्वासोच्छ्वास क्रिया उसके विरह काल तथा अविरहकाल का वर्णन करने के बाद सूत्रकार इस आठवें पद में वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय के आश्रित तथा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम जन्य आहार आदि प्राप्त करने की क्रिया रूप दस प्रकार की संज्ञाओं का निरूपण करते हैं। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं -

संज्ञाओं के भेद

कइ णं भंते! सण्णाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। तंजहा-आहार सण्णा, भय सण्णा, मेहुण सण्णा, परिग्गह सण्णा, कोह सण्णा, माण सण्णा, माया सण्णा, लोह सण्णा, लोय सण्णा, ओघ सण्णा॥ ३३७॥

कठिन शब्दार्थ - सण्णाओ - संज्ञाएं, **लोय सण्णा** - लोक संज्ञा, **ओघ सण्णा** - ओघ संज्ञा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संज्ञाएं कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! संज्ञाएं दस प्रकार की कही गई हैं जो इस प्रकार हैं - १. आहार संज्ञा २. भय संज्ञा ३. मैथुन संज्ञा ४. परिग्रह संज्ञा ५. क्रोध संज्ञा ६. मान संज्ञा ७. माया संज्ञा ८. लोभ संज्ञा ९. लोक संज्ञा और १०. ओघ संज्ञा।

विवेचन - संज्ञा किसे कहते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होने वाली आहारादि की प्राप्ति के लिए आत्मा की क्रिया विशेष को संज्ञा कहते हैं। अथवा जिन बातों से यह जाना जाय कि जीव आहार आदि को चाहता है उसे संज्ञा कहते हैं। किसी के मत से मानसिक ज्ञान ही संज्ञा है अथवा जीव का आहारादि विषयक चिन्तन संज्ञा है। इसके दस भेद हैं-

१. आहार संज्ञा - क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय से कवल आदि आहार के लिए पुद्‌गल ग्रहण करने की इच्छा को आंहार संज्ञा कहते हैं।

२. भय संज्ञा - भय मोहनीय कर्म के उदय से व्याकुल चित्त वाले पुरुष का भयभीत होना, घबराना, रोमाञ्च, शरीर का काँपना आदि क्रियाएं भय संज्ञा हैं।

३. मैथुन संज्ञा - पुरुष वेद मोहनीय कर्म के उदय से स्त्री के अंगों को देखने, छूने आदि की इच्छा एवं स्त्री वेद मोहनीय कर्म के उदय से पुरुष के अङ्गों को देखने छूने आदि इच्छा तथा नपुंसक वेद के उदय से उभय (पुरुष और स्त्री दोनों) के अङ्ग आदि को देखने छूने की इच्छा तथा उससे होने वाले शरीर में कम्पन्न आदि को जिन से मैथुन की इच्छा जानी जाय, मैथुन संज्ञा कहते हैं।

४. परिग्रह संज्ञा - लोभरूप कषाय मोहनीय कर्म के उदय से संसार बन्ध के कारणों में आसक्ति पूर्वक सचित्त और अचित्त द्रव्यों को ग्रहण करने की इच्छा परिग्रह संज्ञा कहलाती है।

५. क्रोध संज्ञा - क्रोध रूप कषाय मोहनीय कर्म के उदय से आवेश में भर जाना, मुँह का सूखना, आँखें लाल हो जाना और काँपना आदि क्रियाएँ क्रोध संज्ञा हैं।

६. मान संज्ञा - मान रूप कषाय मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा के अहङ्कार (अभिमान) आदि रूप परिणामों को मान संज्ञा कहते हैं।

७. माया संज्ञा - माया रूप कषाय मोहनीय कर्म के उदय से बुरे भाव लेकर दूसरे को ठगना, झूठ बोलना आदि माया संज्ञा है।

८. लोभ संज्ञा - लोभ रूप कषाय मोहनीय कर्म के उदय से सचित्त, अचित्त और मिश्र पदार्थों को प्राप्त करने की लालसा करना लोभ संज्ञा है।

९. ओघ संज्ञा - मतिज्ञानावरणीय आदि के क्षयोपशम से शब्द और अर्थ के सामान्य ज्ञान को ओघ संज्ञा कहते हैं।

१०. लोक संज्ञा - सामान्य रूप से जानी हुई बात को विशेष रूप से जानना लोकसंज्ञा है। अर्थात् दर्शनोपयोग को ओघ संज्ञा तथा ज्ञानोपयोग को लोकसंज्ञा कहते हैं। किसी के मत से ज्ञानोपयोग ओघ संज्ञा है और दर्शनोपयोग लोकसंज्ञा। सामान्य प्रवृत्ति को ओघसंज्ञा कहते हैं तथा लोक दृष्टि को लोकसंज्ञा कहते हैं, यह भी एक मत है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पहली आहार संज्ञा वेदनीय कर्म के उदय से, दूसरी से आठवीं तक सात संज्ञा मोहनीय कर्म के उदय से, ओघ संज्ञा दर्शनावरणीय के क्षयोपशम भाव से और लोक संज्ञा ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम भाव से होती है।

नैरयिकों में संज्ञाएं

णेरइयाणं भंते! कइ सण्णाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ। तंजहा - आहारसण्णा जाव ओघसण्णा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों में कितनी संज्ञाएं कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों में दस संज्ञाएं कही गई है। वे इस प्रकार हैं - आहार संज्ञा यावत् ओघ संज्ञा।

असुरकुमार आदि में संज्ञाएं

असुरकुमाराणं भंते! कइ सण्णाओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ तंजहा - आहारसण्णा जाव ओघसण्णा, एवं जाव थणियकुमाराणं। एवं पुढविकाइयाणं जाव वेमाणियावसाणाणं णेयव्वं ॥ ३३८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमारों में कितनी संज्ञाएं कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार देवों में दस संज्ञाएं कही गई है। वे इस प्रकार हैं - आहार संज्ञा यावत् ओघ संज्ञा। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देवों तक कहना चाहिए। इसी प्रकार पृथ्वीकायिकों से लेकर यावत् वैमानिक देवों पर्यन्त समझ लेना चाहिए। अर्थात् चौबीस दण्डक के जीवों में दसों प्रकार की संज्ञाएं पाई जाती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चार ही गति के जीवों में पायी जाने वाली संज्ञाओं का कथन किया गया है। सामान्य रूप से सभी संसारी जीवों में दसों ही संज्ञाएं पायी जाती है। एकेन्द्रिय जीवों में ये संज्ञाएं अव्यक्त रूप से होती है जबकि पंचेन्द्रिय जीवों में ये स्पष्ट जानी जाती है।

आहार आदि संज्ञाओं के उत्पन्न होने के चार-चार कारण ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे के चौथे उद्देशक में बताये हैं वे इस प्रकार हैं -

आहार संज्ञा के चार कारण - १. पेट खाली होने से, २. क्षुधा वेदनीय के उदय से, ३. आहार की कथा सुनने और आहार को देखने से और ४. सदैव आहार का चिन्तन करने से आहार संज्ञा उत्पन्न होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भय संज्ञा के चार कारण - १. शक्ति नहीं होने से २. भय मोहनीय कर्म के उदय से ३. भय की बात सुनने और भयानक वस्तु को देखने से और ४. भय के कारणों का चिन्तन करने से भय संज्ञा उत्पन्न होती है।

मैथुन संज्ञा के चार कारण - १. शरीर में रक्त मांस की वृद्धि होने से २. वेद मोहनीय कर्म के उदय से ३. काम कथा सुनने से और ४. मैथुन का चिन्तन करने से मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है।

परिग्रह संज्ञा के चार कारण - १. अति मूर्छा आसक्ति होने से २. लोभ मोहनीय कर्म के उदय से ३. परिग्रह की बात सुनने से और ४. परिग्रह का चिन्तन करने से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है।

नैरयिक से आये हुए जीव में भय संज्ञा अधिक होती है। तिर्यंच गति से आये हुए जीव में आहार संज्ञा अधिक होती है। मनुष्य गति से आये हुए जीव में मैथुन संज्ञा और देव गति से आये हुए जीव में परिग्रह संज्ञा अधिक होती है।

नैरयिक से आये हुए जीव में क्रोध अधिक होता है, तिर्यंच गति से आये हुए जीव में माया अधिक होती है, मनुष्य गति से आये हुए जीव में मान और देवगति से आये हुए जीव में लोभ अधिक होता है।

नैरयिकों में संज्ञाओं का अल्पबहुत्व

णेरइया णं भंते! किं आहारसण्णोवउत्ता, भयसण्णोवउत्ता, मेहुणसण्णोवउत्ता, परिग्गहसण्णोवउत्ता?

गोयमा! ओसण्णं कारणं पडुच्च भयसण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहारसण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वि।

कठिन शब्दार्थ - **ओसण्णं** - उत्सन्न (प्राय: करके), **संतइभावं** - संततिभाव।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! नैरयिक जीव क्या आहार संज्ञोपयुक्त-आहार संज्ञा के उपयोग वाले हैं, भय संज्ञा के उपयोग वाले हैं, मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले हैं या परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक बाह्य कारण की अपेक्षा बहुधा भय संज्ञा के उपयोग वाले और संतति भाव-आंतरिक अनुभव की अपेक्षा आहार संज्ञा के उपयोग वाले यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले हैं अर्थात् चारों संज्ञा वाले हैं।

एएसि णं भंते! णेरइयाणं आहार सण्णोवउत्ताणं भय सण्णोवउत्ताणं मेहुण सण्णोवउत्ताणं परिग्गह सण्णोवउत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवा णेरइया मेहुण सण्णोवउत्ता, आहार सण्णोवउत्ता संखिज्ज गुणा, परिग्गह सण्णोवउत्ता संखिज्जगुणा, भय सण्णोवउत्ता संखिज्जगुणा॥ ३३९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन आहार संज्ञोपयुक्त-आहार संज्ञा के उपयोग वाले, भय संज्ञा के उपयोग वाले, मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले और परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले नैरयिकों में कौन किनसे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े नैरयिक मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले हैं, उनसे आहार संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा हैं, उनसे परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा हैं और उनसे भय संज्ञा के उपयोग वाले नैरयिक संख्यात गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चारों संज्ञाओं की अपेक्षा नैरयिक जीवों का अल्पबहुत्व कहा गया है जो इस प्रकार हैं - सबसे थोड़े नैरयिक मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले हैं क्योंकि उन्हें चक्षु के निमिष मात्र काल भी सुख नहीं है अपितु निरन्तर अति प्रबल दु:खादि से संतप्त है कहा है -

अच्छिनिमीलणमेत्तं णत्थि सुहं दुक्खमेव पडिबद्धं।
णरए णेरइयाणं अहोणिसं पच्चमाणाणं॥

- नरक में दिन रात दु:ख पाते हुए नैरयिकों को आँख की पलक झपने जितने समय भी सुख नहीं मिलता। अत: लगातार दु:ख की आग में जलने वाले नैरयिकों को मैथुन की इच्छा नहीं होती। कदाचित् किसी को मैथुन संज्ञा होती भी है तो वह अत्यंत थोड़े काल की होती है अत: नैरयिकों में सबसे थोड़े मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले कहे गये हैं। उनसे आहार संज्ञा के उपयोग वाले नैरयिक संख्यात गुणा होते हैं क्योंकि प्रचुर दु:ख वाले नैरयिकों को बहुत काल तक आहार की संज्ञा बनी रहती है। उनसे परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले नैरयिक संख्यात गुणा है क्योंकि आहार की इच्छा शरीर के लिए होती है किन्तु परिग्रह की इच्छा तो शरीर और इसके अलावा अन्य शस्त्र आदि वस्तुओं के लिए होती है और बहुत काल तक अवस्थित रहती है अत: परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं उससे भय संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा हैं क्योंकि नरक में नैरयिकों को चारों ओर से मृत्यु पर्यंत भय बना रहता है। अत: प्रश्न के समय भय संज्ञा के उपयोग वाले नैरयिक बहुत अधिक होते हैं।

तिर्यंचयोनिकों में संज्ञाओं का अल्प बहुत्व

तिरिक्खजोणिया णं भंते! किं आहार सण्णोवउत्ता जाव परिग्गह सण्णोवउत्ता?

गोयमा! ओसण्णं कारणं पडुच्च आहार सण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहार सण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गह सण्णोवउत्ता वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! तिर्यंच योनिक जीव क्या आहार संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच योनिक जीव बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा आहार संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं किन्तु संतति भाव-सतत आन्तरिक अनुभव रूप भाव की अपेक्षा आहार संज्ञा के उपयोग वाले यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं अर्थात् चारों संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं।

एएसि णं भंते! तिरिक्खजोणियाणं आहार सण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गह सण्णोवउत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा तिक्खिजोणिया परिग्गह सण्णोवउत्ता, मेहुण सण्णोवउत्ता संखिज्जगुणा, भय सण्णोवउत्ता संखिज्जगुणा, आहार सण्णोवउत्ता संखिज्जगुणा ॥ ३४० ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन आहार संज्ञा के उपयोग वाले यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले तिर्यंच योनिक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले तिर्यंच योनिक जीव हैं, उनसे मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा हैं, उनसे भय संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा हैं और उनसे भी आहार संज्ञा वाले जीव संख्यात गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तिर्यंच योनिक जीवों में पायी जाने वाली संज्ञाओं का कथन किया गया है।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी खाद्य पदार्थों के देखने आदि बाह्य कारण की अपेक्षा बहुलता से आहार संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं शेष संज्ञाओं के उपयोग वाले नहीं। अन्तर के अनुभव रूप संतति भाव की अपेक्षा आहार संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं और यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं अर्थात् चारों संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं। इनका अल्पबहुत्व इस प्रकार हैं -

सबसे थोड़े परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले हैं क्योंकि परिग्रह संज्ञा का काल थोड़ा है, उनसे मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा हैं क्योंकि मैथुन संज्ञा के उपयोग का काल उससे अधिक है। उन से भी भय संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा हैं क्योंकि उनको समान जाति वालों से और विजातीय प्राणियों से भय बना रहता है अतः भय का उपयोग काल अधिक है। उनसे भी आहार संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा हैं क्योंकि प्रायः सभी तिर्यंच जीवों को निरंतर आहार संज्ञा बनी रहती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्यों में संज्ञाओं का अल्प बहुत्व

मणुस्सा णं भंते! किं आहार सण्णोवउत्ता जाव परिग्गह सण्णोवउत्ता?

गोयमा! ओसण्णं कारणं पडुच्च मेहुण सण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहार सण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गह सण्णोवउत्ता वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या मनुष्य आहार संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं अथवा यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्य बहुलता से बाह्य कारण की अपेक्षा से मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं किन्तु संतति भाव-आंतरिक अनुभव रूप भाव की अपेक्षा से आहार संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं अर्थात् चारों संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं।

एएसि णं भंते! मणुस्साणं आहार सण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गह सण्णोवउत्ताण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा मणुस्सा भय सण्णोवउत्ता, आहार सण्णोवउत्ता संखिज्ज गुणा, परिग्गह सण्णोवउत्ता संखिज्ज गुणा, मेहुण सण्णोवउत्ता संखिज्ज गुणा ॥ ३४१ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन आहार संज्ञा के उपयोग वाले यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले मनुष्यों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े मनुष्य भय संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं, उनसे आहार संज्ञा के उपयोग वाले मनुष्य संख्यात गुणा होते हैं, उनसे परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं और उनसे मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्यों में पायी जाने वाली संज्ञाओं का निरूपण किया गया है। मनुष्य भी बाह्य कारण की अपेक्षा बहुलता से मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं शेष संज्ञाओं के उपयोग वाले थोड़े होते हैं। अन्तर के अनुभाव रूप संतति भाव की अपेक्षा आहार संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं। चारों संज्ञाओं की अपेक्षा मनुष्यों का अल्पबहुत्व इस प्रकार है -

सबसे थोड़े मनुष्य भय संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं क्योंकि थोड़े जीवों को अल्प काल तक भय संज्ञा होती है, उनसे आहार संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं क्योंकि आहार संज्ञा का उपयोग काल अधिक होता है। उनसे परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले मनुष्य संख्यात गुणा हैं क्योंकि आहार की अपेक्षा परिग्रह की चिंता विशेष रहती है उनसे भी मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं क्योंकि मैथुन संज्ञा लम्बे काल तक बनी रहती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवों में संज्ञाओं का अल्प बहुत्व

देवा णं भंते! किं आहार सण्णोवउत्ता जाव परिग्गह सण्णोवउत्ता?

गोयमा! ओसण्णं कारणं पडुच्च परिग्गह सण्णोवउत्ता, संतइभावं पडुच्च आहार सण्णोवउत्ता वि जाव परिग्गह सण्णोवउत्ता वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या देव आहार संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! देव प्राय: बाह्य कारण की अपेक्षा परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं और संततिभाव की अपेक्षा आहार संज्ञा के उपयोग वाले और यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं।

एएसि णं भंते! देवाणं आहार सण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गह सण्णोवउत्ताणं च कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा देवा आहार सण्णोवउत्ता, भय सण्णोवउत्ता संखिज्ज गुणा, मेहुण सण्णोवउत्ता संखिज्ज गुणा, परिग्गह सण्णोवउत्ता संखिज्ज गुणा॥ ३४२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन आहार संज्ञा के उपयोग वाले यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले देवों में कौन किनसे अल्प, बहुत्व, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े देव आहार संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं उनसे भय संज्ञा के उपयोग वाले देव संख्यात गुणा होते हैं उनसे मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले देव संख्यात गुणा होते हैं और उनसे भी परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले देव संख्यात गुणा होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में देवों में पायी जाने वाली संज्ञाओं का कथन किया गया है। बाह्य कारण की अपेक्षा अधिकांश देव परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं क्योंकि परिग्रह संज्ञा के उपयोग में कारणभूत मणि, सुवर्ण और रत्न आदि सदैव उनके पास होते हैं। संततिभाव की अपेक्षा से आहार संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं यावत् परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले भी होते हैं।

चारों संज्ञाओं की अपेक्षा से देवों का अल्पबहुत्व इस प्रकार हैं - सबसे थोड़े देव आहार संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं क्योंकि आहार की इच्छा का विरह काल बहुत अधिक होने से और आहार संज्ञा के उपयोग का काल अत्यंत अल्प होने से वे सबसे थोड़े होते हैं, उनसे भयसंज्ञा के उपयोग वाले देव संख्यात गुणा होते हैं क्योंकि बहुत से देवों को भय संज्ञा दीर्घकाल तक होती है। उनसे मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा और उनसे भी परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नोटः- स्मृति में रखने के लिए थोकड़ा वालों ने चार संज्ञाओं के प्रथम अक्षर संकेत रूप से लिये हैं। यथा - आहार संज्ञा के लिए "**आ**", भय संज्ञा के लिए '**भ**', मैथुन संज्ञा के लिए "**मा**" और परिग्रह संज्ञा के लिए "**पी**" अक्षर लिया गया है। नैरयिक जीवों का संकेत "**मा, आ, पी**" है। इसका भाव यह है कि नैरयिक जीवों में सब से थोड़े मैथुन संज्ञा के उपयोग वाले होते हैं। उनसे आहार संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं। उनसे परिग्रह संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं और उनसे भी भय संज्ञा के उपयोग वाले संख्यात गुणा होते हैं। संज्ञा चार हैं और यहाँ पहले के तीन अक्षर लिये गये हैं इसका कारण यह है कि जिस गति में जो सर्वाधिक संज्ञा के उपयोग वाले हैं वह अक्षर अन्त में स्वयं समझ लेना चाहिए। संक्षेप करने के लिए चौथा अक्षर छोड़ दिया गया है। गति की अपेक्षा अक्षर इस प्रकार हैं -

नरक में "**मा, आ, पी**"।

तिर्यंच गति में "**पी, मा, भ**"।

मनुष्य गति में "**भ, आ, पी**"।

देवगति में "**आ, भ, मा**"।

यह अगरचन्द भैरुदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था सेठियों का मोहल्ला बीकानेर से प्रकाशित पण्णवणा सूत्र के थोकड़ों का प्रथम भाग के आधार से लिखा गया है।

॥ पण्णवणाए भगवईए अट्ठमं सण्णापयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का आठवाँ पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवमं जोणिपयं

नववां योनि पद

उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका) - इस नववें पद का नाम "**जोणिपयं**" है। जिसकी संस्कृत छाया होती है - "योनि पद"। योनि शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है।

"यु" मिश्रणे, इत्यस्य धातोः, युवन्ति भवान्तर संक्रमण काले तैजस कार्मण शरीरवन्तः सन्तो जीवा औदारिक आदि शरीरप्रायोग्य पुद्गलस्कन्धैः मिश्री भवन्ति अस्याम् इति औणादिके 'नि' प्रत्यये योनिः, जीवा नां उत्पत्ति स्थानं इत्यर्थः।

अर्थ - संस्कृत में "यु मिश्रणे" धातु है। मिश्रण शब्द का अर्थ है एक दूसरे में मिलाना, सम्मिलित करना। जीव जब एक भव का आयुष्य पूरा करके दूसरे भव में जाता है तब औदारिक, वैक्रिय और आहारक ये तीन शरीर तो इसी भव में यहीं छूट जाते हैं। परन्तु तैजस् और कार्मण शरीर तो अनादि काल से जीव के साथ में लगे हुए हैं और भवान्तर में जाते हुए जीव के साथ में जाते हैं। सिर्फ मोक्ष में जाने वाले जीव के पांचों शरीर यहीं छूट जाते हैं। जो जीव मरकर नरक गति और देव गति में उत्पन्न होता है तब तैजस और कार्मण शरीर को वैक्रिय शरीर के साथ मिश्रित करता है और जो जीव तिर्यंच तथा मनुष्य गति में जाता है, वह अपने तैजस और कार्मण शरीर को औदारिक शरीर के साथ मिश्रित करता है। इस मिश्रण को "योनि" कहते हैं।

यह औपचारिक अर्थ है। वास्तव में तो ऋजु सूत्र आदि नयों से - 'उत्पति स्थान पर जो पुद्गल होते हैं उनको सर्व प्रथम ग्रहण करे वैसी योनि होती है।' जैसे शीत पुद्गल ग्रहण करने पर शीत योनि होती है। इस प्रकार अन्य योनियाँ भी समझना चाहिये। जैसे नैरयिकों के उत्पत्ति स्थान (कुम्भियाँ) और देवों के उत्पत्ति स्थान (शय्याएं) सचित्त पृथ्वीकाय की होती है तथापि इनकी योनियाँ अचित्त बताई गई है। वह अवगाढ़ क्षेत्र के अन्दर रहे हुए पुद्गलों के ग्रहण करने की अपेक्षा से समझना चाहिये।

योनि का अर्थ है जीव की उत्पत्ति का स्थान एक योनि में अनेक प्रकार के जीव (अनेक कुल) पैदा हो सकते हैं - जैसे कि गाय, भैंस आदि का गोबर (पोठा) एक योनि है, उसमें लट, गिंडोला, बिच्छू आदि अनेक कुल पैदा हो सकते हैं।

मूल में मुख्य रूप से नौ प्रकार की योनियाँ हैं - यथा शीत, उष्ण, शीतोष्ण (मिश्र)। तथा सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त (मिश्र)। संवृत्त, विवृत्त, संवृतविवृत्त (मिश्र)। इन नौ प्रकार की मुख्य योनियों से सब जीवों की ८४ लाख जीव योनियाँ बनती हैं। इसके सिवाय कर्म भूमिज मनुष्यों के उत्पत्ति स्थान का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्देश करने वाली तीन विशिष्ट योनियाँ बतलाई गई हैं - यथा - कूर्मोन्नता, शंखावर्ता और वंशीपत्रा। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, ये उत्तम पुरुष कूर्मोन्नता योनि में जन्म लेते हैं। चक्रवर्ती की मुख्य अग्रमहिषी जिसको 'स्त्री रत्न' कहा जाता है उसकी योनि को शंखावर्ता योनि कहते हैं। इसमें अनेक जीव आते हैं, गर्भ रूप में रहते हैं, उनके शरीर का चय उपचय होता है किन्तु कामाग्नि के प्रबल ताप से ये वहीं नष्ट हो जाते हैं। जन्म धारण नहीं करते हैं, गर्भ से बाहर नहीं आते हैं। इससे यह विदित होता है कि प्रबल कामभोग से गर्भस्थ जीव पनप नहीं सकता है। गर्भ में ही नष्ट हो जाता है। तीसरी वंशीपत्रा योनि है, उसमें शेष सर्व मनुष्यों का जन्म होता है।

नोट - चक्रवर्ती के सात पंचेन्द्रिय रत्न और सात एकेन्द्रिय रत्न। इस प्रकार चौदह रत्न होते हैं। पंचेन्द्रिय रत्नों में एक 'स्त्रीरत्न' होता है जिसको 'श्री देवी' भी कहते हैं। वह वैताढ्य पर्वत की विद्याधरों की उत्तरश्रेणी में पैदा होती है और उसका पिता विद्याधर अपनी पुत्री को चक्रवर्ती को भेंट रूप में प्रदान करता है। उसकी योनि को शङ्खावर्ता योनि कहते हैं। इसके विषय में पूज्य आचार्य श्री अमोलक ऋषि जी म. सा. द्वारा रचित "जैन तत्त्व प्रकाश" की द्वितीय आवृत्ति सन् १९११ पृष्ठ ७७ में लिखा है -

"श्री देवी के सन्तान रूप में पुत्रादि उत्पन्न नहीं होते हैं लेकिन मोती रूप में उत्पन्न होते हैं।"

आगम से तो यह बात स्पष्ट नहीं होती है किन्तु यदि मोती रूप में उत्पन्न हो तो आगम से किसी प्रकार की बाधा भी प्रतीत नहीं होती है। क्योंकि शंखावर्ता योनि में बहुत से पुद्गल भी आते हैं वे चय उपचय को प्राप्त होते हैं। इसलिए मोती रूप पुद्गल आवें तो आगमिक कोई बाधा नहीं है।

आठवें पद में प्राणियों के संज्ञा रूप परिणाम का कथन किया गया है अब इस नौवें पद में उनकी योनियों का निरूपण किया जाता है। इस पद का प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं -

शीत आदि तीन योनियाँ

कइविहा णं भंते! जोणी पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तंजहा-सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी॥ ३४३॥

कठिन शब्दार्थ - जोणी - योनि, **सीया** - शीत, **उसिणा** - उष्ण, **सीओसिणा** - शीतोष्ण।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है।

उत्तर - हे गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार हैं - १. शीत योनि २. उष्ण योनि और ३. शीतोष्ण योनि (मिश्र योनि)।

विवेचन - प्रश्न - योनि किसे कहते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं।

उत्पत्ति स्थान रूप योनि प्रत्येक जीव निकाय के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के भेद से अनेक प्रकार की होती है जो इस प्रकार है - पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय-प्रत्येक की ७-७ लाख, प्रत्येक वनस्पतिकाय की दस लाख, साधारण वनस्पतिकाय की चौदह लाख, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय प्रत्येक की दो-दो लाख, देव नैरयिक और तिर्यंच पंचेन्द्रिय की चार-चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख योनि होती हैं। सभी मिल कर चौरासी लाख जीव योनि होती हैं। यद्यपि व्यक्ति भेद की अपेक्षा से अनंत जीव होने से अनन्त योनि होती है किन्तु समान वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्शों वाली बहुत योनियाँ होने पर भी सामान्य रूप से जाति रूप एक योनि गिनी जाती हैं। अत: ८४ लाख जीव योनि ही होती है, कहा है -

सम वण्णाइसमेया बहवो वि हु जोणिभेअलक्खा उ।

सामण्णा घेप्पंति हु एक्कजोणिए गहणेणं॥

- समान वर्णादि सहित बहुत लाख योनि के भेद होते हैं फिर भी सामान्य तौर पर एक योनि के नाम से ग्रहण किये जाते हैं।

योनि तीन प्रकार की कही गयी है - **१. शीत योनि** - शीत स्पर्श के परिणाम वाली योनि **२. उष्ण योनि** - उष्ण स्पर्श के परिणाम वाली योनि और **३. शीतोष्ण योनि** - शीत और उष्ण उभय स्पर्श के परिणाम वाली योनि।

नैरयिक आदि में शीत आदि योनियाँ

णेरइयाणं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! सीया वि जोणी, उसिणा वि जोणी, णो सीओसिणा जोणी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की क्या शीतयोनि होती है? उष्णयोनि होती है या शीतोष्ण योनि होती हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की शीतयोनि भी होती है, उष्णयोनि भी होती है किन्तु शीतोष्ण योनि नहीं होती है।

असुरकुमाराणं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! णो सीया जोणी, णो उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी, एवं जाव थणियकुमाराणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार देवों की क्या शीत योनि होती है या उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार देवों की न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है किन्तु शीतोष्ण योनि होती है। इसी प्रकार यावत् स्तनित कुमारों तक समझना चाहिये। अर्थात् दस ही प्रकार के भवनवासियों के न तो शीत योनि होती है न ही उष्ण योनि होती है किन्तु शीतोष्ण योनि होती है।

पुढवीकाइया णं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! सीया वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीओसिणा वि जोणी। एवं आउ वाउ वणस्सइ बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियाणं वि पत्तेयं भाणियव्वं। तेउकाइयाणं णो सीया, उसिणा, णो सीओसिणा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों की शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्ण योनि भी होती हैं।

इसी तरह अप्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों की योनि के विषय में कहना चाहिए। अर्थात् इनके शीत, उष्ण और शीतोष्ण योनि होती है। तेजस्कायिक जीवों की शीत योनि नहीं होती है, उष्ण योनि होती है, शीतोष्ण योनि नहीं होती है अर्थात् तेजस्कायिक जीवों में सिर्फ उष्ण योनि होती है किन्तु शीत योनि और शीतोष्ण योनि नहीं होती है।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! सीया वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीओसिणा वि जोणी। सम्मुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं वि एवं चेव।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों की क्या शीत योनि होती हैं, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है?

उत्तर - हे गौतम! तिर्यंच पंचेन्द्रियों की योनि शीत भी होती है उष्ण भी होती है और शीतोष्ण भी होती है। सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों की योनि के विषय में भी इसी तरह कहना चाहिए। अर्थात् इन के तीनों प्रकार की योनि होती है।

गब्भवक्कंतिय पंचिंदिय-तिरिक्ख जोणियाणं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! णो सीया जोणी, णो उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है?

उत्तर - हे गौतम! गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों की न तो शीत योनि होती है, न उष्ण योनि होती है किन्तु शीतोष्ण योनि होती है।

मणुस्साणं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! सीया वि जोणी, उसिणा वि जोणी, सीओसिणा वि जोणी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों की शीत योनि भी होती है, उष्ण योनि भी होती है और शीतोष्णयोनि भी होती हैं।

सम्मुच्छिम मणुस्साणं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! तिविहा वि जोणी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है अथवा शीतोष्ण योनि होती है?

उत्तर - हे गौतम! सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की तीनों प्रकार की योनि होती है।

गब्भवक्कंतिय मणुस्साणं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! णो सीया, णो उसिणा, सीओसिणा जोणी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गर्भज मनुष्यों की क्या शीत योनि होती है, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है।

उत्तर - हे गौतम! गर्भज मनुष्यों की न तो शीत योनि होती है न उष्ण योनि होती है किन्तु शीतोष्ण योनि होती है।

वाणमंतर देवाणं भंते! किं सीया जोणी, उसिणा जोणी, सीओसिणा जोणी?

गोयमा! णो सीया, णो उसिणा, सीओसिणा जोणी। जोइसिय वेमाणियाणं वि एवं चेव॥ ३४४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वाणव्यंतर देवों की क्या शीत योनि होती हैं, उष्ण योनि होती है या शीतोष्ण योनि होती है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! वाणव्यंतर देवों की न तो शीत योनि होती है और न ही उष्ण योनि होती है किन्तु शीतोष्ण योनि होती है। इसी प्रकार ज्योतिषी देवों की और वैमानिक देवों की योनि के विषय में समझना चाहिए।

विवेचन - सभी देवों के १३ दण्डक, संज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी मनुष्य में एक शीतोष्ण योनि होती है। तेजस्काय की उष्ण योनि और शेष चारों स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य में तीनों योनियाँ पाई जाती हैं।

सामान्य रूप से नैरयिक जीवों के दो योनियाँ बताई गई हैं। शीत योनि और उष्ण योनि। किस नरक पृथ्वी में कौनसी योनि होती है यह बात टीका में इस प्रकार बतलाई गई है, यथा - पहली रत्नप्रभा, दूसरी शर्कराप्रभा और तीसरी बालुकाप्रभा में नैरयिकों का जो उपपात क्षेत्र हैं वे सब शीत स्पर्श परिणाम से परिणत है। इन उपपात क्षेत्रों के सिवाय इन तीन पृथ्वियों में शेष स्थान उष्ण स्पर्श परिणाम से परिणत है। इस कारण से शीत योनि वाले नैरयिक उष्ण वेदना का वेदन करते हैं। चौथी पङ्क प्रभा पृथ्वी में अधिकांश उपपात क्षेत्र शीत स्पर्श परिणाम से परिणत होते हैं। थोड़े से उपपात क्षेत्र ऐसे हैं जो उष्ण स्पर्श परिणाम से परिणत हैं। जिन प्रस्तटों (पाथड़ों) और नरकावासों में शीत स्पर्श वाले उपपात क्षेत्र है उनमें उपपात क्षेत्रों के अतिरिक्त शेष समस्त स्थान उष्ण स्पर्श वाले होते हैं तथा जिन प्रस्तटों और नरकावासों में उष्ण स्पर्श परिणाम वाले उपपात क्षेत्र हैं उनमें उन उपपात क्षेत्रों के सिवाय दूसरे सब स्थान शीत स्पर्श परिणाम वाले होते हैं इस कारण से वहाँ के बहुत से शीतयोनिक नैरयिक उष्ण वेदना का वेदन करते हैं जबकि थोड़े से उष्ण योनिक नैरयिक शीत वेदना का वेदन करते हैं। पांचवीं धूम प्रभा पृथ्वी में बहुत से उपपात क्षेत्र उष्ण स्पर्श परिणाम से परिणत होते हैं और थोड़े से उपपात क्षेत्र शीत स्पर्श परिणाम से परिणत होते हैं जिन प्रस्तटों और जिन नरकावासों में उष्ण स्पर्श परिणाम वाले उपपात क्षेत्र हैं उनमें उन उपपात क्षेत्रों के सिवाय दूसरे सब स्थान शीत परिणाम वाले होते है। इस कारण से वहाँ के बहुत से उष्णयोनिक नैरयिक शीत वेदना का वेदन करते हैं और थोड़े से शीत योनिक नैरयिक उष्ण वेदना का वेदन करते हैं। छठी तमःप्रभा और सातवीं तमः तमः प्रभा पृथ्वी में सभी उपपात क्षेत्र उष्ण स्पर्श परिणाम वाले हैं उनके सिवाय दूसरे सब स्थान वहाँ शीत स्पर्श वाले होते हैं। इस कारण से वहाँ दोनों नरकों के नैरयिक उष्णयोनिक हैं अतः वे सब शीत वेदना का वेदन करते हैं।

नैरयिक जीवों में उत्पन्न होते समय सर्व प्रथम जैसे पुद्गल ग्रहण करते हैं वैसी ही उनकी योनि होती है। जैसे शीत योनि वाले नैरयिक प्रथम समय में शीत पुद्गल ही ग्रहण करते हैं। अतः उनकी शीत योनि होती है। शीत योनि वाले नैरयिकों के उत्पत्ति स्थान को छोड़ कर शेष सभी क्षेत्र उष्ण वातावरण वाला होता है। अतः उत्पत्ति स्थान में क्षेत्र वेदना नहीं समझना चाहिये। इसी प्रकार उष्ण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योनि वाले नैरयिकों के लिए भी समझ लेना चाहिये। चौथी नरक के ऊपर के प्रतर में रहने वाले सभी नैरयिक शीत योनि वाले हो सकते हैं किन्तु पांचवीं नरक के ऊपर के प्रतर में रहने वाले सभी नैरयिक शीत योनि वाले नहीं होते हैं।

भवनवासी देव आदि की योनियाँ शीतोष्ण क्यों है? इसका उत्तर यह है कि दस ही प्रकार के भवनवासी देव, गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य तथा वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के उपपात क्षेत्र शीत और उष्ण दोनों स्पर्शों से परिणत हैं इस कारण से उनकी योनियाँ शीत और उष्ण दोनों स्वभाव वाली (शीतोष्ण) होती है।

देवों के सभी १३ दण्डकों में और संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और संज्ञी मनुष्य में एक शीतोष्णयोनि है। (अर्थात् - देव उत्पत्ति स्थान (शय्या) पर सर्वप्रथम शीतोष्ण पुद्गल ग्रहण करते हैं तथा मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जो सर्व प्रथम आहार ग्रहण करते हैं - वह शीतोष्ण होता है क्योंकि सर्वप्रथम आहार रजो-'वीर्य' का होता है। उसमें 'रज' (माता का अवयव) आत्म प्रदेश सहित होने से उष्ण तथा 'वीर्य' (पिता का अवयव) आत्म प्रदेश रहित होने से शीत होता है। अतः शीतोष्ण पुद्गल ग्रहण करने से 'शीतोष्णयोनि' होती है।

तेजस्कायिकों के सिवाय पृथ्वीकायिक आदि जीवों की तीनों प्रकार की योनियाँ होती हैं क्योंकि पृथ्वीकायिक आदि चार एकेन्द्रिय, तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के उत्पत्ति स्थान शीत स्पर्श वाले, उष्ण स्पर्श वाले और शीतोष्ण स्पर्श वाले होते हैं इस कारण उनकी योनियाँ तीनों प्रकार की बतलाई गई है। तेजस्कायिक (अग्निकायिक) जीव उष्ण योनि के ही होते हैं। यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है।

तेजस्काय की एक उष्ण योनि ही होती है। (अर्थात् सूक्ष्म बादर तेजस्काय के जीव उत्पत्ति के समय सर्व प्रथम उष्ण स्पर्श वाले पुद्गलों को ही ग्रहण करते हैं) शेष चारों स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और असंज्ञी मनुष्य में तीनों योनियाँ पाई जाती है। सिद्ध भगवान् अयोनिक होते हैं। वनस्पतिकाय में तीनों योनियाँ होती है। वह मात्र प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों की अपेक्षा से ही समझना चाहिये। सूक्ष्म और साधारण वनस्पति जीवों में तो मात्र शीत योनि ही होती है। यह बात आगे की अल्प बहुत्व से स्पष्ट हो जाती है।

एएसि णं भंते! सीयजोणियाणं उसिणजोणियाणं सीओसिणजोणियाणं अजोणियाण य कयरे-कयरे हिंतो अप्पा वा, बहुया वा, तुल्ला वा, विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा सीओसिण जोणिया, उसिणजोणिया असंखिज्जगुणा, अजोणिया अणंतगुणा, सीयजोणिया अणंतगुणा॥ ३४५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन शीतयोनिक जीवों, उष्ण योनिक जीवों, शीतोष्ण योनिक जीवों और अयोनिक जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े जीव शीतोष्ण योनिक हैं, उनसे उष्णयोनिक जीव असंख्यात गुणा, उनसे अयोनिक जीव अनन्त गुणा और उनसे भी शीतयोनिक जीव अनंत गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीनों योनियों वाले और अयोनिक जीवों का अल्पबहुत्व बताया गया है - सबसे थोड़े शीतोष्ण रूप उभय योनि वाले जीव हैं क्योंकि भवनपति, गर्भज तिर्यंचपंचेन्द्रिय, गर्भज मनुष्य, वाणव्यंतर और ज्योतिषी देवों के शीतोष्ण योनि हैं। उनसे उष्णयोनि वाले जीव संख्यात गुणा हैं क्योंकि सूक्ष्म और बादर दोनों प्रकार तेजस्कायिकों, बहुत से नैरयिकों और कितने ही पृथ्वी, पानी, वायु और प्रत्येक वनस्पति के जीव उष्ण योनि वाले होते हैं। उनसे अयोनिक-योनि रहित जीव अनन्तगुणा हैं क्योंकि सिद्ध भगवान् अनन्त हैं। उनसे शीतयोनि वाले जीव अनंत गुणा हैं क्योंकि सभी अनंतकायिक (निगोद-सूक्ष्म और साधारण) शीतयोनि वाले होते हैं और वे सिद्धों से अनन्त गुणा हैं।

सचित्त आदि तीन योनियाँ

कइविहा णं भंते! जोणी पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तंजहा - सचित्ता, अचित्ता, मीसिया॥ ३४६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गयी है। वह इस प्रकार हैं - १. सचित्त योनि २. अचित्त योनि और ३. सचित्ताचित्त योनि (मिश्र योनि)।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में दूसरी प्रकार से योनि के भेद बताये गये हैं - तीन प्रकार की योनि कही गई है -

१. सचित्त योनि - जीव प्रदेशों से सम्बद्ध योनि सचित्त योनि कहलाती हैं।

२. अचित्त योनि - जो योनि सर्वथा जीव रहित हो वह अचित्त योनि है और

३. सचित्ताचित्त योनि (मिश्र योनि) - जो योनि अंशतः जीव प्रदेश सहित और अंशतः जीव प्रदेश रहित हो यानी सचित्त और अचित्त उभय रूप हो वह सचित्ताचित्त योनि (मिश्रयोनि) कहलाती है।

नैरयिक आदि में सचित्त आदि तीन योनियाँ

णेरइयाणं भंते! किं सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी?

गोयमा! णो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, णो मीसिया जोणी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की क्या सचित्त योनि है, अचित्त योनि है या सचित्ताचित्त योनि (मिश्र योनि) है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की योनि सचित्त नहीं होती है, मिश्र नहीं होती है किन्तु अचित्त होती है।

असुरकुमाराणं भंते! किं सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया जोणी?

गोयमा! णो सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, णो मीसिया जोणी, एवं जाव थणियकुमाराणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमार देवों की योनि क्या सचित्त होती है, अचित्त होती है या मिश्र होती है?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमार देवों के सचित्त योनि नहीं होती, मिश्र योनि नहीं होती, किन्तु अचित्त योनि होती है। इसी प्रकार यावत् स्तनितकुमार देवों तक समझना चाहिये। अर्थात् दस ही प्रकार के भवनपति देवों के एक अचित्त योनि होती है।

पुढवी काइयाणं भंते! किं सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसियाजोणी?

गोयमा! सचित्ता जोणी, अचित्ता जोणी, मीसिया वि जोणी एवं जाव चउरिंदियाणं। सम्मुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं सम्मुच्छिम मणुस्साण य एवं चेव। गब्भवक्कंतिय पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं गब्भवक्कंतिय मणुस्साण य णो सचित्ता, णो अचित्ता, मीसिया जोणी। वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा असुरकुमाराणं॥ ३४७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिकों की क्या सचित्त योनि होती है, अचित्त योनि होती है या मिश्र योनि होती है?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिकों की योनि सचित्त भी होती है, अचित्त भी होती है और सचित्ताचित (मिश्र) भी होती है। इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय जीवों तक की योनि के विषय में समझना चाहिये। सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों और गर्भज मनुष्यों की योनि सचित्त भी नहीं होती, अचित्त भी नहीं होती किन्तु मिश्र होती है।

वाणव्यंतर देवों, ज्योतिषी देवों और वैमानिक देवों की योनि के विषय में असुरकुमारों के समान ही समझना चाहिये अर्थात् अचित्त योनि होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एएसि णं भंते! जीवाणं सचित्तजोणीणं अचित्तजोणीणं मीसजोणीणं अजोणीणं च कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा मीसजोणिया, अचित्तजोणिया असंखिज्ज गुणा, अजोणिया अणंतगुणा, सचित्तजोणिया अणंतगुणा॥ ३४८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सचित्त योनि वाले, अचित्त योनि वाले, सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि वाले और अयोनिक-योनि रहित जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े जीव सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि वाले होते हैं उनसे अचित्त योनि वाले जीव असंख्यात गुणा हैं और उनसे योनि रहित जीव अनन्त गुणा हैं उनसे भी सचित्त यौनि वाले जीव अनन्त गुणा हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सचित्त आदि तीन योनियाँ बता कर चौबीस दंडकों के जीवों में कौन-कौन सी योनियाँ पाई जाती है। इसका वर्णन किया गया है।

नैरयिकों का जो उपपात क्षेत्र है वह किसी भी जीव के द्वारा शरीर रूप में गृहीत नहीं होने से उनकी अचित्त योनि होती है। यद्यपि सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं किन्तु उनके आत्मप्रदेशों के साथ उपपात स्थान के पुद्गल परस्पर अभेदात्मक संबंध वाले नहीं है यानी उन जीवों ने उपपात स्थान के पुद्गलों को शरीर रूप में ग्रहण नहीं किया है अतः उनकी अचित्त योनि होती है। इसी प्रकार असुरकुमार आदि भवनपतियों की, वाणव्यंतरों की, ज्योतिषियों की और वैमानिक देवों की अचित्त योनि समझना चाहिए। पृथ्वीकायिकों से लेकर सम्मूर्च्छिम मनुष्यों पर्यंत जीवों का उपपात क्षेत्र अन्य जीवों द्वारा कदाचित् ग्रहण किया हुआ होता है, कदाचित् ग्रहण किया हुआ नहीं होता है और कदाचित् अंशतः ग्रहण किया हुआ और अंशतः ग्रहण नहीं किया हुआ उभय स्वभाव वाला भी होता है अतः इन जीवों में तीनों प्रकार की योनियाँ होती हैं। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्यों की जहाँ उत्पत्ति होती है वहाँ अचित्त शुक्र और शोणित के पुद्गल भी होते हैं अतः उनकी सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि होती है। नैरयिक और देव उत्पन्न होते समय अचित्त पुद्गलों का आहार ग्रहण करके ही शरीर बनाते हैं अतः उत्पत्ति स्थान (कुंभी और शय्या) जीवों से युक्त होते हुए भी इनकी अचित्त योनि कही गई है। संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और संज्ञी मनुष्य में एक मिश्र (सचित्ताचित्त) योनि बताई है क्योंकि ये जीव मिश्र पुद्गलों का आहार ग्रहण करते हैं। यथा - रक्त (रज) सचित्त व वीर्य (शुक्र) अचित्त होने से मिश्र आहार कहा जाता है। निगोद जीवों में सभी में मात्र सचित्त योनि ही होती है। क्योंकि निगोद के उत्पत्ति का स्थान पहले अप्काय युक्त होता है उसी स्थान में निगोद के जीव उत्पन्न होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सचित्त आदि योनियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व इस प्रकार है- सबसे थोड़े जीव सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि वाले होते हैं क्योंकि गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और गर्भज मनुष्य की ही मिश्र योनि होती है। उनसे अचित्त योनि वाले जीव असंख्यात गुणा हैं क्योंकि नैरयिक, देव और कितने ही पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, प्रत्येक वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की अचित्त योनि होती है। उनसे योनि रहित अनन्त गुणा हैं क्योंकि सिद्ध भगवान् अनंत हैं उनसे सचित्त योनि वाले अनंत गुणा हैं क्योंकि निगोद के जीवों की सचित्त योनि हैं और वे सिद्धों से भी अनंत गुणा हैं।

संवृत्त आदि तीन योनियाँ

कइविहा णं भंते! जोणी पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तंजहा-संवुडा जोणी, वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी॥ ३४९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है - १. संवृत्त योनि २. विवृत्त योनि और ३. संवृत्त विवृत्त योनि।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में योनि के तीन भेद कहे गये हैं - **१. संवृत्त योनि** - जो योनि ढंकी हुई हो **२. विवृत्त योनि** - जो योनि खुली हुई हो, जो बाहर से स्पष्ट प्रतीत होती हो और **३. संवृत्त विवृत्त योनि** - जो योनि संवृत्त और विवृत्त दोनों प्रकार की मिश्रित हो।

नैरयिक आदि में संवृत्त आदि योनियाँ

णेरइयाणं भंते! किं संवुडा जोणी, वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी?

गोयमा! संवुडा जोणी, णो वियडा जोणी, णो संवुडवियडा जोणी। एवं जाव वणस्सइकाइयाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों की क्या संवृत योनि होती है, विवृत योनि होती है अथवा संवृत-विवृत योनि होती है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों की योनि संवृत्त होती है, परन्तु विवृत्त नहीं होती और न ही संवृत्त-विवृत्त होती है। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों तक की योनि के विषय में कहना चाहिए।

बेइंदियाणं भंते! किं संवुडा जोणी, वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णो संवुडा जोणी, वियडा जोणी, णो संवुडवियडा जोणी। एवं जाव चउरिंदियाणं। सम्मुच्छिम पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं सम्मुच्छिम मणुस्साण य एवं चेव। गब्भवक्कंतिय पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं गब्भवक्कंतिय मणुस्साण य णो संवुडा जोणी, णो वियडा जोणी, संवुडवियडा जोणी। वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा णेरइयाणं॥ ३५०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या बेइन्द्रिय जीवों की योनि संवृत्त होती है, विवृत्त होती है या संवृत्त-विवृत्त होती है?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों की योनि संवृत्त नहीं होती किन्तु विवृत्त होती है परन्तु संवृत्त-विवृत्त नहीं होती है।

इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय जीवों तक की योनि के विषय में समझ लेना चाहिए।

सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्यों की योनि के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए अर्थात् बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय चउरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय और सम्मूर्च्छिम मनुष्य की सिर्फ विवृत्त योनि होती है।

गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक जीवों और गर्भज मनुष्यों की योनि संवृत्त नहीं होती और न विवृत्त योनि होती है, किन्तु संवृत्त-विवृत्त योनि होती है।

वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की योनि के सम्बन्ध में नैरयिकों की योनि की तरह समझना चाहिए अर्थात् इनकी संवृत्त योनि होती है।

विवेचन - नैरयिकों के उत्पत्ति स्थान नरक निष्कुट होते हैं और वे ढंके हुए झरोखे के समान होते हैं इसलिए नैरयिक जीवों की योनि संवृत्त कही गयी है। इसी प्रकार भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों की योनि भी संवृत्त होती है क्योंकि उनकी उत्पत्ति देव शय्या में देव दूष्य से ढंके हुए स्थान में होती है। एकेन्द्रिय जीवों की योनि भी संवृत्त होती है क्योंकि उनका उत्पत्ति स्थान स्पष्ट प्रतीत नहीं होता है।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्य विवृत्त योनि वाले होते हैं क्योंकि उनके उत्पत्ति स्थान स्पष्ट प्रतीत होते हैं।

गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों और गर्भज मनुष्यों की योनि संवृत्त-विवृत्त उभय रूप होती है।

संवृत्त - जो योनि आच्छादित (ढंकी हुई हो-चौतरफ से घिरी हुई उत्पत्ति स्थान के आस-पास की जगह खाली नहीं हो, ठोस (पोल रहित) हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवृत्त - जो योनि खुली हुई हो अथवा बाहर से स्पष्ट प्रतीत होती है। जो पोल सहित हो वह विवृत्त है।

संवृत्त - विवृत्त - कुछ ढंकी कुछ खुली हुई योनि संवृत्त-विवृत्त कहलाती है।

यद्यपि नैरयिकों का उत्पत्ति स्थान-कुंभियों का मुंह खुला होता है किन्तु कुंभी में अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना में जहाँ पर नैरयिक उत्पन्न होते हैं। वह स्थान चारों तरफ से ढका हुआ होने से नैरयिकों की संवृत्त योनि मानी गई है। देवों के उपपात शय्या भी एक बारीक वस्त्र से ढकी हुई होने से उनकी संवृत्त योनि है। एकेन्द्रिय जीवों के उत्पत्ति स्थान पूरे लोक में होते हुए भी जहाँ पर एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न होते हैं। वह क्षेत्र सब तरफ से पहले उत्पन्न हुए उन जीवों से गिरा रहता है अर्थात् वृक्षादि के पत्ते में भी नये जीव बाहर के भाग में उत्पन्न नहीं होकर के ढके हुए भाग में उत्पन्न होते हैं। फिर बड़ी अवगाहना बढ़ने पर उनका शरीर बाहर दृष्टिगोचर होने लगता है। अतः एकेन्द्रियों में संवृत्त योनि बताई गई है। बेन्द्रियादि जीवों का उत्पत्ति स्थान सब तरफ से उन बेइन्द्रियों जीवों से घिरा हुआ नहीं होता है तथा पोल में होने से एकेन्द्रियों की तरह दबा (ढका) हुआ नहीं हो कर खुला होने से विवृत्त योनि होती है। धान्यादि में भी जहाँ बेइन्द्रियादि जीव उत्पन्न होते हैं वहाँ बाहर से पोल नहीं दिखाई देने पर भी अन्दर में पोल समझना। गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्यों की योनि संवृत्त-विवृत्त मानी गई है। क्योंकि मनुष्यों के उत्पन्न होने की कुक्षि कुछ खुली व कुछ बन्द होती है। गर्भज जीवों के भी उत्पत्ति स्थान के किसी तरफ आहार वर्गणा के पुद्गल होने से तथा किसी तरफ नहीं होने से 'संवृत्त विवृत्तता' समझनी चाहिये। उत्पत्ति स्थान प्रच्छन्न होने से 'संवृत्त' एवं उदरादि के बढ़ने से 'विवृत्त' इस प्रकार टीकाकारों ने गर्भज जीवों की 'संवृत्त विवृत्तता' समझाई है।

एएसि णं भंते! जीवाणं संवुडा जोणियाणं वियडा जोणियाणं संवुडवियडा जोणियाणं अजोणियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा संवुडवियडा जोणिया, वियडा जोणिया असंखिज्जगुणा, अजोणिया अणंत गुणा, संवुडा जोणिया अणंतगुणा॥ ३५१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन संवृत्तयोनिक जीवों, विवृतयोनिक जीवों, संवृत्त-विवृत्तयोनिक जीवों तथा अयोनिक जीवों में से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े संवृत्त-विवृत्तयोनिक जीव होते हैं, उनसे विवृत्तयोनिक जीव असंख्यात गुणा अधिक होते हैं, उनसे अयोनिक जीव अनन्त गुणा होते हैं और उनसे भी संवृत्त योनिक जीव अनन्त गुणा अधिक होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में संवृत्त आदि योनियों की अपेक्षा जीवों का अल्पबहुत्व बताया गया है- सबसे थोडे जीव संवृत्त विवृत्त योनि वाले होते हैं क्योंकि गर्भज तिर्यंच पंचेन्द्रियों और गर्भज मनुष्यों के ही संवृत्त-विवृत्त योनि होती है। उनसे विवृत्त योनि वाले जीव असंख्यात गुणा होते हैं क्योंकि तीन विकलेन्द्रिय, सम्मूर्च्छिम तिर्यंच पंचेन्द्रिय एवं सम्मूर्च्छिम मनुष्य विवृत्त योनि वाले होते हैं उनसे अयोनिक जीव अनंत गुणा हैं क्योंकि सिद्ध भगवान् अनन्त हैं और उनसे भी संवृत्त योनि वाले जीव अनन्त गुणा होते हैं क्योंकि वनस्पतिकायिक जीव सिद्धों से अनंत गुणा हैं और उनके संवृत्त योनि होती है।

मणुस्सेसु तिविहा जोणी।

संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले पन्द्रह कर्म भूमि के मनुष्यों की अपेक्षा से तीन विशिष्ट योनियाँ।

कूर्मोन्नता आदि तीन योनियाँ

कइविहा णं भंते! जोणी पण्णत्ता?

गोयमा! तिविहा जोणी पण्णत्ता। तंजहा - कुम्मुण्णया, संखावत्ता, वंसीपत्ता।

कुम्मुण्णया णं जोणी उत्तम पुरिस माऊणं। कुम्मुण्णयाए णं जोणीए उत्तम पुरिसा गब्भे वक्कमंति, तंजहा - अरहंता, चक्कवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा।

संखावत्ता णं जोणी इत्थी रयणस्स, संखावत्ताए जोणीए बहवे जीवा य पोग्गला य वक्कमंति, विउक्कमंति चयंति उवचयंति णो चेव णं विप्फज्जंति।

वंसीपत्ता णं जोणी पिहुजणस्स, वंसीपत्ताए णं जोणीए पिहुजणे गब्भे वक्कमंति ॥ ३५२ ॥

कठिन शब्दार्थ - **कुम्मुण्णया** - कूर्मोन्नता, **उत्तम पुरिस माऊणं** - उत्तम पुरुषों की माताओं के, **पिहुजणस्स** - पृथक्जनों की।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! योनि कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! योनि तीन प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है - १. कूर्मोन्नता, २. शंखावर्त्ता और ३. वंशीपत्रा।

कूर्मोन्नता योनि उत्तम पुरुषों की माताओं के होती है। कूर्मोन्नता योनि में उत्तम पुरुष गर्भ में उत्पन्न होते हैं। जैसे - अरहन्त (तीर्थंकर), चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव।

शंखावर्त्ता योनि स्त्रीरत्न की होती है। शंखावर्त्ता योनि में बहुत से जीव और पुद्गल आते हैं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गर्भरूप में उत्पन्न होते हैं, सामान्य और विशेष रूप से उनकी वृद्धि (चय-उपचय) होती है, किन्तु उनकी निष्पत्ति नहीं होती अर्थात् जन्म नहीं लेते हैं।

वंशीपत्रा योनि पृथक् (सामान्य) जनों की माताओं की होती है। वंशीपत्रा योनि में पृथक् साधारण जीव गर्भ में आते हैं।

नोट:- सचित्त, शीत, संवृत्त इन तीन योनियों का अल्पबहुत्व मूल पाठ में दिया गया है परन्तु कूर्मोन्नता आदि तीन योनियों का अल्प बहुत्व मूल पाठ में नहीं दिया गया है किन्तु थोकड़ा वाले इन तीन का अल्प बहुत्व इस प्रकार बोलते हैं -

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े शंखावर्त्ता योनि वाले मनुष्य होते हैं उनसे कूर्मोन्नता योनि वाले संख्यात गुणा और उनसे वंशीपत्रा योनि वाले मनुष्य संख्यात गुणा होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में योनि तीन प्रकार की कही गई हैं - **१. कूर्मोन्नता** - जो योनि कछुए की पीठ की तरह ऊँची उठी हुई या उभरी हुई हो **२. शंखावर्त्ता** - जो योनि शंख की तरह आवर्त वाली हो **३. वंशीपत्रा** - जो योनि मिले हुए बांस के दो पत्रों के आकार वाली हो।

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव इन ५४ उत्तम पुरुषों की माताओं के कूर्मोन्नता योनि होती हैं। चक्रवर्ती की श्रीदेवी के शंखावर्त्ता योनि होती है। इस योनि में जीव आते हैं, गर्भ रूप से उत्पन्न होते हैं, संचित होते हैं किन्तु उनकी निष्पत्ति नहीं होती अर्थात् उसमें जीव जन्म नहीं लेते हैं। इस सम्बन्ध में प्राचीन आचार्यों का मत है कि शंखावर्त्ता योनि में आये हुए जीव अति प्रबल कामाग्नि के परिताप से वहीं योनि में ही विनष्ट हो जाते हैं।

कूर्मोन्नता, शंखावर्त्ता, वंशीपत्रा ये तीनों योनियाँ मनुष्यों की विशेष प्रकार की योनियाँ बतलाई गयी हैं।

प्रश्न - क्या कूर्मोन्नता योनि में उत्तम पुरुष ही जन्म लेते हैं?

उत्तर - कूर्मोन्नता योनि के विषय में इस प्रकार समझना चाहिए कि तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि उत्तम पुरुषों का जन्म तो कूर्मोन्नता योनि में ही होता है। निष्कर्ष यह है कि कूर्मोन्नता योनि में उत्तम पुरुषों के अतिरिक्त सामान्य पुरुष भी उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे कि - मरुदेवी माता की कुक्षि से प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ एक लड़की का भी जन्म हुआ था। जिसका नाम सुमंगला रखा गया। राजा ऋषभदेव के दो पत्नियाँ थीं यथा-सुमंगला (सहोदरा-साथ जन्म हुआ) और सुनन्दा। सुमंगला के उदर से भरत चक्रवर्ती और ब्राह्मी का जन्म हुआ था। इसके बाद सुमंगला के उदर से ही अनुक्रम से उनपचास युगल पुत्रों (९८ पुत्रों) का जन्म हुआ था। सुनन्दा के उदर से बाहुबली और सुन्दरी का जन्म हुआ था।

ज्ञाता सूत्र के आठवें अध्ययन में उन्नीसवें तीर्थंकर मल्ली भगवती का वर्णन है। मिथिला नगरी के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुम्भ राजा की अग्रमहिषी प्रभावती की कुक्षि से मल्ली भगवती का जन्म हुआ था और उसके बाद छोटे सहोदर भाई मल्लदिन्न का जन्म हुआ था। उत्तराध्ययन सूत्र के बाईसवें अध्ययन में बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमि का समुद्रविजयजी की अग्रमहिषी शिवादेवी की कुक्षि से जन्म हुआ था। उसके बाद रथनेमि (रहनेमि), सत्यनेमि, दृढ़नेमि इन तीन सहोदर भाईयों का जन्म हुआ था। (सत्यनेमि और दृढ़नेमि का वर्णन अन्तगड सूत्र में है)।

कृष्ण वासुदेव का वर्णन श्री अन्तगड़ सूत्र में है। राजा वसुदेव की महारानी देवकी के उदर से अनीकसेन आदि छह बड़े सहोदर और छोटे सहोदर गजसुकुमाल का जन्म हुआ था। कृष्ण वासुदेव का जन्म भी देवकी रानी के सातवें पुत्र के रूप में हुआ था। आचाराङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के पन्द्रहवें अध्ययन में बतलाया गया है कि चौबीसवें तीर्थङ्कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का जन्म क्षत्रियकुण्डपुर नगर के महाराजा सिद्धार्थ की महारानी त्रिशला माता की कुक्षि से हुआ था। उसी त्रिशला की कुक्षि से भाई नन्दीवर्धन और बहिन सुदर्शना का भी जन्म हुआ था जो कि महावीर स्वामी के बड़े सहोदर भाई और बड़ी बहिन थी। इन सब उद्धरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि तीर्थङ्कर आदि उत्तम पुरुषों का जन्म तो कूर्मोन्नता योनि से ही होता है। उनके अतिरिक्त सामान्य पुरुष भी कूर्मोन्नता योनि से उत्पन्न हो सकते हैं।

कलिकाल सर्वज्ञ पद से सुशोभित हेमचन्द्राचार्य द्वारा रचित "त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र" में त्रेसट शलाका (श्लाघनीय) पुरुषों का जीवन चरित्र है। जिसमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव के जीवन का वर्णन है। वासुदेव का जन्म होने से पहले प्रतिवासुदेव का जन्म निश्चित रूप से होता ही है। वह अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा भरत क्षेत्र आदि के तीन खण्डों को जीत कर एवं उनके राजाओं को अपने वशीभूत करके त्रिखण्डाधिपति (तीन खण्ड का स्वामी) कहलाता है इसलिए यह भी सम्भावना की जा सकती है कि वासुदेव के जन्म के बाद एवं उनके बड़ा होने के बाद जब युद्ध का प्रसङ्ग आने से पहले वह वासुदेव शब्द से भी सम्बोधित किया जा सकता होगा ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि जब तक दूसरा व्यक्ति सामने खड़ा न हो तब तक उसके पीछे 'प्रति' शब्द नहीं लगता है जैसे कि वादी के सामने जब तक दूसरा प्रतिद्वन्दी खड़ा नहीं होता है तब तक वह वादी ही कहलाता है। सामने प्रतिपक्षी खड़ा होने पर वह प्रतिवादी कहलाता है। इसी प्रकार वासुदेव के सामने खड़ा होने पर ही वह प्रतिवासुदेव कहलाता होगा जैसे कि वादी-प्रतिवादी और पक्ष-प्रतिपक्ष, मल्ल (पहलवान) प्रतिमल्ल कहलाता है। इसी प्रकार वासुदेव और प्रतिवासुदेव के लिए भी समझना चाहिए। यह सब बात युक्ति और तर्क से संगत होने के कारण संभावना रूप से लिखी गयी है और इसी कारण के समवायाङ्ग सूत्र के ५४ वें समवाय में ५४ उत्तम पुरुष गिनाये गये हैं यथा - २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती ९ बलदेव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और ९ वासुदेव। ये चौपन्न ही उत्तम पुरुष गिनाये गये हैं उसमें वासुदेव के पद में प्रतिवासुदेव को अन्तर्भावित कर लिया गया हो ऐसी संभावना लगती है जबकि कूर्मोन्नता योनि में सामान्य पुरुषों का भी जन्म होता है तो प्रतिवासुदेव का जन्म भी कूर्मोन्नता योनि में ही होता है, ऐसा मानने में आगम की कोई बाधा नहीं है।

भगवान् महावीर स्वामी के दो माताएं थीं - देवानंदा और त्रिशला। दोनों के कूर्मोन्नता योनि थी। कूर्मोन्नता और शंखावर्त्ता ये दो योनियाँ शुभ होती है। वंशीपत्रा योनि शुभ अशुभ दोनों प्रकार की होती है।

आगम में वर्णित युगल स्त्रियों के शरीर वर्णन को देखते हुए इनके भी कूर्मोन्नता योनि होना संभव है। देवियों के स्त्री रत्न की तरह शंखावर्त्ता योनि होती है ऐसा ग्रन्थों में बताया गया है। स्त्री रत्न के तो योनि में जीव आते हैं किन्तु जन्म नहीं लेते हैं। देवियों के तो कोई भी जीव गर्भ में आता ही नहीं है क्योंकि देव एवं देवियों का आगमों में औपपातिक जन्म बताया गया है। यहाँ पर कूर्मोन्नता आदि तीनों योनियों का वर्णन मात्र संख्यात वर्ष की आयु वाले (एक करोड़ पूर्व तक) कर्म भूमिज मनुष्यों की अपेक्षा से ही किया गया है इसलिए आगम में अन्य पंचेन्द्रिय जीवों के लिए वर्णन नहीं किया गया है। तथापि अन्य युगलिक एवं देवियों की शारीरिक रचना को देखते हुए उपर्युक्त प्रकार से योनियों की संभावना की जा सकती है।

वंशीपत्रा योनि सामान्य पुरुषों की माताओं के होती है।

॥ पण्णवणाए भगवईए णवमं जोणीपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का नववां योनि पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दसमं चरिमपयं

दसवां चरम पद

उक्खेओ (उत्क्षेप-उत्थानिका) - पण्णवणा सूत्र के इस दसवें पद का नाम "**चरिमपयं**" है। जिसका संस्कृत रूपान्तर "चरम पद" होता है। जगत् में जीव और अजीव दो पदार्थ हैं। उनमें से अजीवों में भी रत्नप्रभा आदि आठ पृथ्वियाँ, देवलोक, लोक, अलोक तथा परमाणु पुद्गल, स्कन्ध, संस्थान आदि हैं। इनमें कोई चरम (अन्तिम) होता है और कोई अचरम (मध्य) होता है। इसलिए किसको एक वचनान्त चरम या अचरम कहना चाहिए और किसे बहुवचनान्त चरम या अचरम कहना चाहिए अथवा किसे चरमान्त प्रदेश या अचरमान्त प्रदेश कहना चाहिए। यह विचार इस दसवें पद में किया गया है। टीकाकार ने चरम और अचरम आदि शब्दों का रहस्य खोल कर समझाया है कि ये शब्द सापेक्ष हैं अर्थात् दूसरे की अपेक्षा रखते हैं।

(**नोट** - संस्कृत भाषा में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन ऐसे तीन वचन प्रत्येक शब्द के होते हैं। परन्तु अर्धमागधी भाषा में सिर्फ एकवचन और बहुवचन ऐसे दो ही वचन होते हैं इसलिये इन दो पदों को लेकर ही यहाँ विचार किया गया है।)

यहाँ सर्वप्रथम रत्नप्रभा आदि आठ पृथ्वियाँ तथा सौधर्म आदि देवलोकों का एवं लोक, अलोक आदि के चरम और अचरम इन दो पदों के छह विकल्प उठाकर चर्चा की गयी है। इसके उत्तर में छह ही विकल्पों का निषेध किया गया है। क्योंकि जब रत्नप्रभा आदि को अखण्ड एक मानकर विचार किया जाय तो उक्त छह विकल्पों में से वह एक विकल्प रूप भी नहीं है किन्तु जब उसकी विवक्षा असंख्यात प्रदेशी एवं असंख्यात प्रदेशावगाढ की जाय और उसे अनेक अवयवों में विभक्त माना जाय तो वे नियम से अचरम और अनेक चरम रूप तथा चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश रूप हैं। इस उत्तर का भी रहस्य टीकाकार ने खोला है।

इसके पश्चात् चरम आदि पूर्वोक्त छह पदों के अल्प बहुत्व का विचार किया गया है। उसमें द्रव्यार्थिक नय, प्रदेशार्थिक नय एवं द्रव्य प्रदेशार्थिक नय इन तीनों नयों से विचारणा की गयी है।

इसके पश्चात् चरम, अचरम एवं अवक्तव्य इन तीनों पदों के एक वचनान्त और बहुवचनान्त इन छह पदों पर से असंयोगी, द्विक संयोगी और त्रिक संयोगी इनके छब्बीस भंग (विकल्प) बनाकर एक परमाणु पुद्गल और द्विप्रदेशी से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कन्ध तक की अपेक्षा से गहन चर्चा की गयी है कि इन छब्बीस भङ्गों में से किसमें कितने भङ्ग पाये जाते हैं और क्यों पाये जाते हैं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके बाद परिमण्डल, वृत्त, आयत, त्रिकोण और चतुरस्र इन पांच संस्थान और उनके भेद, प्रभेद, प्रदेश, अवगाहना और उसके चरम आदि की चर्चा की गयी है।

इसके पश्चात् गति, स्थिति, भव, भाषा, श्वासोच्छ्वास, आहार, भाव, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श इन ग्यारह बातों की अपेक्षा से चौबीस दण्डक के जीवों के चरम अचरम आदि का विचार गिया गया है। अर्थात् गति आदि की अपेक्षा से कौन से जीव चरम हैं और कौनसे जीव अचरम हैं इत्यादि विषयों पर गंभीर विचार किया गया है।

प्रज्ञापना सूत्र के नौवें पद में जीवों के उत्पत्ति स्थान-योनि का वर्णन करने के बाद सूत्रकार इस दसवें पद में चरम-अचरम का वर्णन करते हैं। जिसका प्रथम सूत्र इस प्रकार हैं -

लोकालोक की चरम अचरम वक्तव्यता

कइ णं भंते! पुढवीओ पण्णत्ताओ?

गोयमा! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ। तंजहा - रयणप्पभा, सक्करप्पभा, वालुयप्पभा, पंकप्पभा, धूमप्पभा, तमप्पभा, तमतमप्पभा, ईसिप्पब्भारा॥ ३५३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वियाँ कितनी कही गई हैं?

उत्तर - हे गौतम! आठ पृथ्वियाँ कही गई हैं, वे इस प्रकार हैं - १. रत्नप्रभा २. शर्कराप्रभा ३. बालुकाप्रभा ४. पंकप्रभा ५. धूमप्रभा ६. तम:प्रभा ७. तमस्तम:प्रभा और ८. ईषत्प्राग्भारा।

इमा णं भंते! रयणप्पभा पुढवी किं चरिमा, अचरिमा, चरिमाइं, अचरिमाइं, चरिमंतपएसा, अचरिमंतपएसा?

गोयमा! इमा णं रयणप्पभा पुढवी णो चरिमा, णो अचरिमा, णो चरिमाइं, णो अचरिमाइं, णो चरिमंतपएसा, णो अचरिमंतपएसा, णियमा अचरिमं च चरिमाणि य, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य, एवं जाव अहेसत्तमा पुढवी, सोहम्माई जाव अणुत्तर विमाणा णं एवं चेव, ईसिप्पब्भारा वि एवं चेव, लोगे वि एवं चेव, एवं अलोगे वि॥ ३५४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या यह रत्नप्रभा पृथ्वी चरम (पर्यन्तवर्ती-अन्तिम या अंत में स्थित) है, अचरम (मध्यवर्ती-बीच में स्थित) है, अनेक चरम रूप (बहुत चरम अन्त में स्थित बहुत खण्डों रूप) है, अनेक अचरम रूप (बहुत अचरम-अनेक अचरम रूप मध्य में स्थित बहुत खण्डों रूप) है, चरमान्त बहुप्रदेश रूप (चरम रूप अन्त प्रदेशों वाली अर्थात् खण्डों में स्थित बहुत प्रदेश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप) है अथवा अचरमान्त बहुप्रदेश रूप (अचरम रूप मध्य प्रदेशों वाली अर्थात् मध्य के खण्ड में स्थित बहुत प्रदेश रूप) है?

उत्तर - हे गौतम! यह रत्नप्रभा पृथ्वी न तो चरम है, न ही अचरम है, न अनेक चरम रूप और न अनेक अचरम रूप है तथा न चरमान्त अनेक प्रदेश रूप है और न अचरमान्त अनेक प्रदेश रूप है, किन्तु नियमतः अचरम और अनेक चरम रूप है तथा चरमान्त अनेक प्रदेश रूप और अचरमान्त अनेक प्रदेश रूप है।

रत्नप्रभा पृथ्वी की तरह यावत् अधःसप्तमी (तमस्तमःप्रभा) पृथ्वी तक इसी प्रकार प्ररूपणा करनी चाहिए। सौधर्मादि से लेकर यावत् अनुत्तर विमान तक की वक्तव्यता भी इसी प्रकार समझ लेनी चाहिए। ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी की वक्तव्यता भी इसी तरह (रत्नप्रभापृथ्वी के समान) कह लेनी चाहिए। लोक के विषय में भी ऐसा ही कहना चाहिए और अलोक (अलोकाकाश) के विषय में भी इसी तरह कहना चाहिए।

विवेचन - चरम का अर्थ है - अंतिम और अचरम का अर्थ है- जो अन्तिम न हो, मध्य में हो किन्तु प्रस्तुत सूत्र में रत्नप्रभा आदि के चरम अचरम होने विषयक पृच्छा की है। अतः टीकाकार ने यहाँ चरम का अर्थ किया है- पर्यन्तवर्ती यानी अन्त में स्थित और अचरम शब्द का अर्थ किया है - जो चरम-अन्तवर्ती न हो अर्थात् मध्यवर्ती हो। यहाँ चरम और अचरम शब्द सापेक्ष हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी अभेद (अखण्ड रूप-पूरी पृथ्वी एक अवयवी रूप) विवक्षा (कथन) से तो चरम भी नहीं यावत् अचरमान्त प्रदेश रूप भी नहीं है किन्तु भेद (खण्ड-खण्ड रूप-पृथक् अलग-अलग रूप से असंख्य प्रदेशों में अवगाढ़ अनेक अवयवों (टुकड़ों) में विभक्त रूप) विवक्षा से-नियमा-एक अचरम (मध्य में स्थित एक बड़े खण्ड की अपेक्षा से) है। बहुत चरम (अन्तिम भागों में रहे हुए तथाविध एकत्व परिणाम वाले बहुत खण्डों की अपेक्षा से) है। चरमान्त प्रदेश रूप (बाह्य-अन्तिम किनारे के खण्डों में रहे हुए प्रदेशों की अपेक्षा से) हैं, अचरमान्त प्रदेश रूप (मध्य के एक बड़े खण्ड में रहे हुए प्रदेशों की अपेक्षा से) है। इसी प्रकार शेष छह नरक पृथ्वियाँ १२ देवलोक ९ ग्रैवेयक ५ अनुत्तर विमान, ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी (सिद्ध शिला) लोक और अलोक ये ३५ बोल कह देना चाहिए।

नोट - यहाँ पर जो रत्नप्रभा पृथ्वी आदि के भेद विवक्षा से चरम अचरमादि का कथन है, उसमें किनारे (अन्तिम भागों) में आये हुए प्रदेशों को छोड़ कर शेष अन्तर के प्रदेशों को परस्पर सम्बद्ध होने से एक अचरम द्रव्य रूप से माना गया है तथा किनारे के द्रव्यों में बीच बीच में विदिशा आदि के कारण परस्पर (एक दूसरे से) सम्बद्ध (जुड़ा हुआ) नहीं होने से अनेक चरम द्रव्य रूप गिना गया है। अलोक के चरमान्त प्रदेशों में यहाँ उन्हीं अलोक के प्रदेशों को गिना गया है जो लोक के चरमान्त प्रदेशों से स्पर्श किए हुए हों।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चरम अचरम पदों का अल्पबहुत्व

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखिज्ज गुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहिया, पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए चरिमंतपएसा, अचरिमंतपएसा असंखिज्ज गुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया, दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखिज्ज गुणाइं, अचरिमं चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाणि, पएसट्ठयाए चरिमंतपएसा असंखिज्ज गुणा, अचरिमंतपएसा असंखिज्ज गुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया। एवं जाव अहेसत्तमाए, सोहम्मस्स जाव लोगस्स एवं चेव॥ ३५५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अचरम और बहुवचनान्त चरम, चरमान्तप्रदेशों तथा अचरमान्त प्रदेशों में द्रव्यों की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य-प्रदेश दोनों की अपेक्षा से कौन, किससे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्य की अपेक्षा से इस रत्नप्रभा पृथ्वी का एक अचरम सबसे कम है। उसकी अपेक्षा बहुवचनान्त चरम असंख्यात गुणा हैं। अचरम और बहुवचनान्त चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं। प्रदेशों की अपेक्षा से इस रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमान्त प्रदेश सबसे कम हैं। उनकी अपेक्षा अचरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा हैं। चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश, ये दोनों विशेषाधिक हैं। द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से सबसे कम इस रत्नप्रभा पृथ्वी का एक अचरम है। उसकी अपेक्षा असंख्यात गुणा बहुवचनान्त चरम हैं। अचरम और बहुवचनान्त चरम, ये दोनों ही विशेषाधिक हैं। उनसे प्रदेशों की अपेक्षा चरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा हैं, उनसे अचरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा हैं। चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार शर्कराप्रभा पृथ्वी से लेकर नीचे की सातवीं तमस्तमः पृथ्वी तक तथा सौधर्म से लेकर यावत् लोक तक पूर्वोक्त प्रकार से अचरम, बहुवचनान्त चरमों, चरमान्तप्रदेशों तथा अचरमान्तप्रदेशों के अल्पबहुत्व की प्ररूपणा करनी चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - रत्नप्रभा पृथ्वी के द्रव्यार्थ की अपेक्षा चरम और अचरम का अल्पबहुत्व -

१. सबसे थोड़ा-एक अचरम द्रव्य (मध्यवर्ती खण्ड एक ही होने से)।

२. उनसे चरम द्रव्य असंख्यात गुणा (किनारे के खण्ड असंख्यात होने से)।

३. उनसे चरम अचरम द्रव्य विशेषाधिक (एक अचरम खण्ड इसमें मिल जाने से)।

प्रदेशार्थ की अपेक्षा से (चरम-अचरम प्रदेशों की) अल्पबहुत्व - १. सबसे थोड़े चरमान्त प्रदेश (मध्य के एक बड़े खण्ड की अपेक्षा) किनारे के (चरम) खण्ड अतिसूक्ष्म (छोटे) होने से यद्यपि द्रव्य से तो अधिक हैं। परन्तु प्रदेश तो मध्य के एक खण्ड में बहुत अधिक होते हैं।

२. उनसे चरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा (मध्य का जो एक अचरम खण्ड है-वह चरम खण्डों के समूह की अपेक्षा से क्षेत्र से असंख्यात गुणा बड़ा होने से उसके प्रदेश भी असंख्यात गुणा अधिक हो जाते हैं।)

३. उनसे चरमान्त अचरमान्त प्रदेश दोनों विशेषाधिक (अचरमान्त प्रदेशों की राशि में चरमान्त प्रदेश राशि को भी शामिल कर देने से)।

द्रव्य-प्रदेशार्थ (शामिल) की अपेक्षा से (चरम अचरम द्रव्य प्रदेशों का) अल्पबहुत्व - १. सबसे थोड़ा एक अचरम द्रव्य २. उनसे चरम द्रव्य असंख्यात गुणा ३. उनसे चरम अचरम-द्रव्य दोनों विशेषाधिक ४. उनसे चरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा (किनारे के जो खण्ड हैं वे द्रव्य गिनती से असंख्यात) हैं। प्रत्येक खण्ड असंख्यात प्रदेशी एवं असंख्य प्रदेशावगाढ़ होने से चरमांत प्रदेश असंख्यात गुणा हो जाते हैं। ५. उनसे अचरमांत प्रदेश असंख्यात गुणा ६. उनसे चरमान्त अचरमान्त प्रदेश दोनों विशेषाधिक।

इसी प्रकार 'अलोक' को छोड़कर शेष ३४ बोलों [छह पृथ्वियाँ (रत्नप्रभा को छोड़कर), बारह देवलोक, नव ग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान, एक ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी तथा लोक] की भी तीन-तीन अल्पबहुत्व कह देना चाहिये।

अलोगस्स णं भंते! अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवे अलोगस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखिज्ज गुणाइं, अचरिम चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा अलोगस्स चरिमंतपएसा, अचरिमंतपएसा अणंतगुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वि विसेसाहिया, दव्वट्ठ पएसट्ठयाए सव्वत्थोवे अलोगस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं असंखिज्ज गुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, चरिमंतपएसा असंखिज्ज गुणा, अचरिमंतपएसा अणंत गुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया ॥ ३५६ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अलोक के अचरम, चरमों, चरमान्तप्रदेशों और अचरमान्तप्रदेशों में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से एवं द्रव्य-प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं, अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्य की अपेक्षा से-सबसे कम अलोक का एक अचरम है। उसकी अपेक्षा बहु वचनान्त चरम असंख्यात गुणा हैं। अचरम और बहुवचनान्त चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं। प्रदेशों की अपेक्षा से-सबसे कम अलोक के चरमान्त प्रदेश हैं, उनसे अचरमान्त प्रदेश अनन्त गुणा हैं। चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश, ये दोनों विशेषाधिक हैं। द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से-सबसे कम अलोक का एक अचरम है। उससे बहु वचनान्त चरम असंख्यात गुणा हैं। अचरम और बहु वचनान्त चरम, ये दोनों विशेषाधिक हैं। उनसे चरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा हैं, उनसे भी अचरमान्त प्रदेश अनन्त गुणा हैं। चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश, ये दोनों विशेषाधिक हैं।

विवेचन - अलोक के तीन अल्पबहुत्व - १. द्रव्यार्थ की अपेक्षा अल्पबहुत्व-उपरोक्तानुसार कह देना चाहिए अर्थात् १. सबसे कम अलोक का एक अचरम है २. उसकी अपेक्षा बहुवचनान्त चरम असंख्यात गुणा है। ३. अचरम और बहु वचनान्त चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं। **२. प्रदेशार्थ की अपेक्षा अल्पबहुत्व**- सबसे थोड़े अलोक के चरमान्त प्रदेश (लोक के निष्कुट भागों से स्पर्श किये हुए अलोक के प्रदेश चरमान्त प्रदेश होते हैं ऐसे प्रदेश) बहुत कम होने से सबसे थोड़े बताये गये हैं।

२. उनसे अचरमान्त प्रदेश अनन्तगुणा (यद्यपि अलोक में कोई अंतिम या मध्य का खण्ड नहीं होता है तथापि उपरोक्त जो चरमान्त प्रदेश बताये हैं, उनके सिवाय सम्पूर्ण अलोक क्षेत्र के प्रदेश अलोक के अचरमान्त प्रदेशों में गिने गये हैं, वे प्रदेश बहुत अधिक होने से अनन्त गुणा हो जाते हैं।) ३. उनसे अलोक के बहुवचनान्त चरम और बहुवचनान्त अचरम प्रदेश विशेषाधिक हैं।

३. द्रव्य प्रदेशार्थ (शामिल) की अपेक्षा से अल्पबहुत्व-

१. सबसे थोड़ा अलोक का एक अचरम द्रव्य २. उनसे अलोक के चरम द्रव्य असंख्यात गुणा ३. उनसे अलोक के चरम-अचरम द्रव्य विशेषाधिक ४. उनसे अलोक के चरमांत प्रदेश असंख्यात गुणा-क्योंकि अलोक के जो चरम द्रव्य हैं उनके प्रत्येक द्रव्य (खण्ड) असंख्य असंख्य प्रदेशी होने से चरम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अचरम द्रव्यों से भी चरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा हो जाते हैं ५ उनसे अलोक के अचरमांत प्रदेश अनन्त गुणा ६. उनसे अलोक के चरमांत अचरमांत प्रदेश विशेषाधिक होते हैं।

लोगालोगस्स णं भंते! अचरिमस्स य, चरिमाण य, चरिमंतपएसाण य, अचरिमंतपएसाण य, दव्वट्ठयाए, पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवे लोगालोगस्स दव्वट्ठयाए एगमेगे अचरमे, लोगस्स चरिमाइं असंखिज्ज गुणाइं, अलोगस्स चरिमाइं विसेसाहियाइं, लोगस्स य अलोगस्स य अचरिमं च, चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा लोगस्स चरिमंतपएसा, अलोगस्स चरिमंतपएसा विसेसाहिया, लोगस्स अचरिमंतपएसा असंखिज्ज गुणा, अलोगस्स अचरिमंतपएसा अणंतगुणा, लोगस्स य अलोगस्स य चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया। दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवे लोगालोगस्स दव्वट्ठयाए एगमेगे अचरिमे, लोगस्स चरिमाइं असंखिज्ज गुणाइं, अलोगस्स चरिमाइं विसेसाहियाइं, लोगस्स य अलोगस्स य अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, लोगस्स चरिमंतपएसा असंखिज्ज गुणा, अलोगस्स य चरिमंतपएसा विसेसाहिया, लोगस्स अचरिमंतपएसा असंखिज्ज गुणा, अलोगस्स अचरिमंतपएसा अणंतगुणा, लोगस्स य अलोगस्स य चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया, सव्वदव्वा विसेसाहिया, सव्वपएसा अणंत गुणा, सव्वपज्जवा अणंत गुणा॥ ३५७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! लोकालोक के अचरम, बहुवचनान्त चरमों, चरमान्त प्रदेशों और अचरमान्त प्रदेशों में द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से, द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किनसे अल्प हैं, बहुत हैं, तुल्य हैं, अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्य की अपेक्षा से-सबसे कम लोकालोक का एक-एक अचरम है। उसकी अपेक्षा लोक के बहुवचनान्त चरम असंख्यात गुणा हैं, अलोक के बहुवचनान्त चरम विशेषाधिक हैं, लोक और अलोक का अचरम और बहुवचनान्त चरम, ये दोनों विशेषाधिक हैं। प्रदेशों की अपेक्षा से-सबसे थोड़े लोक के चरमान्त प्रदेश हैं, अलोक के चरमान्त प्रदेश विशेषाधिक हैं, उनसे लोक के अचरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा हैं, उनसे अलोक के अचरमान्त प्रदेश अनन्त गुणा हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोक और अलोक के चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश, ये दोनों विशेषाधिक हैं। द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से - सबसे कम लोक-अलोक का एक-एक अचरम है, उसकी अपेक्षा लोक के बहुवचनान्त चरम असंख्यात गुणा हैं, उनसे अलोक के बहुवचनान्त चरम विशेषाधिक हैं। लोक और अलोक का अचरम और बहुवचनान्त चरम ये दोनों विशेषाधिक हैं। लोक के चरमान्तप्रदेश उनसे असंख्यात गुणा हैं, उनसे अलोक के चरमान्तप्रदेश विशेषाधिक हैं, उनसे लोक के अचरमान्तप्रदेश असंख्यात गुणा हैं, उनसे अलोक के अचरमान्तप्रदेश अनन्त गुणा हैं, लोक और अलोक के चरमान्तप्रदेश और अचरमान्तप्रदेश, ये दोनों विशेषाधिक हैं। लोक और अलोक के चरम और अचरम प्रदेशों की अपेक्षा सब द्रव्य मिलकर विशेषाधिक हैं। उनकी अपेक्षा सर्व प्रदेश अनन्त गुणा हैं और उनकी अपेक्षा भी सर्व पर्याय अनन्त गुणा हैं।

विवेचन - लोक अलोक की शामिल तीन अल्पबहुत्व -

द्रव्यार्थ की अपेक्षा (लोकालोक के चरम अचरम द्रव्यों का) अल्पबहुत्व - १. सबसे थोड़े लोक अलोक के एक अचरम द्रव्य-परस्पर तुल्य तथा गिनती में एक एक होने से २. उनसे लोक के चरम द्रव्य असंख्यात गुणा लोक के पर्यंतवर्ती-किनारे के खण्ड असंख्याता होने से ३. उनसे अलोक के चरम द्रव्य विशेषाधिक-अलोक के चरम खण्ड लोक के चरम खण्डों से कुछ अधिक होने से विशेषाधिक हैं। ४. उनसे लोक तथा अलोक के चरम अचरम द्रव्य विशेषाधिक-पूर्वोक्त तीनों बोल (१, २, ३) शामिल हो जाने से।

प्रदेशार्थ की अपेक्षा (लोकालोक के चरम अचरम प्रदेशों का) अल्पबहुत्व - १. सबसे थोड़े लोक के चरमांत प्रदेश-लोक के प्रान्तवर्ती खण्डों के प्रदेश असंख्य असंख्य होने से २. उनसे अलोक के चरमांत प्रदेश विशेषाधिक, अलोक के जो चरम द्रव्य है उनके प्रदेश भी असंख्य असंख्य होते हैं परन्तु लोक के चरमान्त प्रदेशों से कुछ अधिक होने से विशेषाधिक हैं ३. उनसे लोक के अचरमांत प्रदेश असंख्यात गुणा - लोक के मध्य खण्ड के प्रदेश असंख्यात गुणा अधिक होने से ४. उनसे अलोक के अचरमांत प्रदेश अनन्त गुणा, अलोक के कुछ चरमांत प्रदेशों को छोड़ कर बाकी के सभी प्रदेश अचरमांत प्रदेश गिने जाते हैं। ऐसे प्रदेश अनन्त होने से अनन्त गुणा है ५. उनसे लोकालोक के चरमान्त अचरमांत प्रदेश विशेषाधिक-पूर्वोक्त चारों बोल (१, २, ३, ४) शामिल हो जाने से।

द्रव्य प्रदेशार्थ (शामिल) की अपेक्षा से (लोक और अलोक के चरम अचरम द्रव्यों और चरमांत अचरमांत प्रदेशों का) अल्पबहुत्व - १. सबसे थोड़ा लोक अलोक का एक अचरम द्रव्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. उनसे लोक के चरम द्रव्य असंख्यात गुणा ३. उनसे अलोक के चरम द्रव्य विशेषाधिक ४. उनसे लोक अलोक के चरम अचरम द्रव्य विशेषाधिक ५ उनसे लोक के चरमांत प्रदेश असंख्यात गुणा ६. उनसे अलोक के चरमांत प्रदेश विशेषाधिक ७. उनसे लोक के अचरमांत प्रदेश असंख्यात गुणा ८. उनसे अलोक के अचरमान्त प्रदेश अनन्त गुणा ९. उनसे लोक अलोक के चरमांत अचरमांत प्रदेश विशेषाधिक १०. उनसे सर्वद्रव्य विशेषाधिक ११. उनसे सर्व प्रदेश अनन्त गुणा। १२. उनसे सर्व पर्याय अनन्त गुणी-प्रत्येक प्रदेश की अनन्त, अनन्त अगुरुलघु आदि पर्यायें होने से।

लोक अलोक के चरम-अचरम द्रव्य प्रदेशों की अल्प बहुत्व

१. सब से थोड़े लोक व अलोक के एक एक अचरम द्रव्य - कुल '२' ही होने से।

२. उनसे लोक के चरम द्रव्य असंख्यात गुणा - २×प्रतर के असंख्यातवें भाग रूप असंख्य श्रेणी जितने होने से।

३. उनसे अलोक के चरम द्रव्य विशेषाधिक - लोक के चरम द्रव्य+श्रेणी के असंख्यातवें भाग रूप चरम द्रव्य अलोक में और अधिक बढने से विशेषाधिक। एक एक प्रतर के पीछे ४ द्रव्यों की वृद्धि होने से।

४. उनसे लोक अलोक के चरम द्रव्य विशेषाधिक - १. प्रतर के असंख्यातवें भाग+२. प्रतर के असंख्यातवें भाग +श्रेणी असंख्यातवें भाग (१. लोक के चरम द्रव्य प्रतर के असंख्यातवें भाग रूप व २. अलोक के चरम द्रव्य भी प्रतर के असंख्यातवें भाग रूप+श्रेणी के असंख्यातवें भाग (लोक के कुल चरम द्रव्यों से विशेषाधिक ही वृद्धि होने से)।

५. लोक के चरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा – लोक के असंख्यातवें भाग रूप असंख्य श्रेणी (संख्याता प्रतर रूप=३प्रतर झाझेरी) अर्थात् लोक के चरम द्रव्य प्रतर के असंख्यातवें भाग × अंगुल के असंख्यातवें भाग=लोक के असंख्यातवें भाग रूप असंख्य श्रेणी। (ग्रन्थों में एक-एक चरम द्रव्य की अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग जितनी बताई है।)

६. अलोक के चरमान्त प्रदेश विशेषाधिक - लोक के चरम द्रव्यों की अपेक्षा-अलोक के चरम द्रव्य विशेषाधिक ही बढ़ने से-प्रदेश भी विशेषाधिक ही हुए। (श्रेणी के असंख्यातवें भाग × अंगुल के असंख्यातवें भाग=प्रतर के असंख्यातवें भाग रूप चरम प्रदेश अलोक में और अधिक बढ़ने से अर्थात् अलोक के असंख्यातवें भाग रूप जितने लोक के चरम प्रदेश हैं - उतने तो अलोक के चरम प्रदेश है ही उसमें फिर श्रेणी के असंख्यातवें भाग जितने चरम द्रव्य लोक की अपेक्षा अलोक में अधिक होने से-श्रेणी का असंख्यातवाँ भाग × अंगुल का असंख्यातवां भाग=प्रतर के असंख्यातवें भाग जितने चरम प्रदेशों की संख्या अलोक में और बढ़ी)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. उनसे लोक के अचरमान्त प्रदेश असंख्यात गुणा - असंख्यात गुणा बड़ा क्षेत्र होने से (लोक के भीतरी सम्बद्ध पूरे भाग के प्रदेश-अचरमान्त प्रदेश कहे जाते हैं।)

८. उनसे अलोक के अचरमान्त प्रदेश अनंतगुणा - लोक की सीध की ७ रज्जु के बाहल्य (जाडाई) व पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण, ऊर्ध्व अधो अलोकान्त तक की (अलोकान्त से अलोकान्त तक) सम्पूर्ण श्रेणियाँ ले लेना। केवली समुद्घात की तरह कपाट समझना चाहिए, जैसे केवली समुद्घात में शरीर प्रमाण मोटाई (जाड़ाई) वाला एक कपाट होता है, वैसे ही यहाँ लोक प्रमाण (सात रज्जु प्रमाण) मोटाई वाले दो कपाट समझना। ऐसा समझने पर इन दो कपाटों के सिवाय शेष अनन्तगुण क्षेत्र भी बच जाता है। जिसका आगे के ११ वें बोल में समावेश (ग्रहण) किया गया है। इन दो कपाटों की संज्ञा (नाम) इस प्रकार समझना चाहिए -

''लोकानुगत-लोक का अनुगमन करने वाली लोक की सीध वाली अलोक की श्रेणियाँ।

९. उनसे लोक-अलोक दोनों के चरमान्त-अचरमान्त प्रदेश विशेषाधिक - अलोक के चरमान्त प्रदेशों की राशि में-लोक के अचरमान्त प्रदेशों को मिलाने से - विशेषाधिक हुआ (अलोक के अचरमान्त प्रदेशों से लोक के अचरमान्त प्रदेश अनन्तवें भाग जितने ही होने से-विशेषाधिक फर्क ही होता है)।

१०. उनसे सर्व द्रव्य विशेषाधिक - जितने भी लोक अलोक के चरमान्त अचरमान्त प्रदेश हैं (जिनको ७वें ८ वें बोल में बताया गया है) उन सब को ऋजुसूत्र नय की अपेक्षा एक-एक द्रव्य मान लिया है अर्थात् दो कपाट जो अलोकान्त से अलोकान्त तक (पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण, ऊर्ध्व अधो) लिए उन दो कपाटों में रहे हुए सभी प्रदेशों को एक एक द्रव्य मान लिया गया है। अतः ये सब तो 'द्रव्य' समझ लिए फिर इनमें 'जीव पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, कालद्रव्य' इन पांच द्रव्यों को मिलाने से 'सर्व द्रव्य विशेषाधिक' हो जाते हैं। (यद्यपि इन पांच द्रव्यों में जीव व पुद्गल द्रव्य अनन्त-अनन्त होते हैं। तथापि ये 'दो कपाटों में रहे कुल प्रदेशों के अनन्तवें भाग रूप ही होते हैं अतः इनके मिलने से पूर्वोक्त राशि से द्रव्य विशेषाधिक ही होते हैं।

११. सर्व प्रदेश अनन्त गुणा - दो कपाटों के सिवाय शेष चारों दिशा के अन्तराल में अनन्तगुणा क्षेत्र होने से प्रदेश भी अनन्त गुणे हो जाते हैं।

१२. सर्व पर्याय अनन्त गुणी - लोक एवं अलोक के प्रत्येक प्रदेश पर अनन्त अनन्त अगुरुलघु आदि पर्यायें होने से-सर्व पर्यायें अनन्त गुणी हो जाती है।

नोट - चरम पद अपने आप में अनेक विवक्षाओं एवं अपेक्षाओं को लिए हुए हैं। अतः उपर्युक्त प्राचीन परम्परा पर आधारित अपेक्षाओं से अल्प बहुत्व में सामंजस्य बिठाना उचित ही प्रतीत होता है। तत्त्व बहुश्रुत गम्य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोक के चरम द्रव्यों व अलोक के चरम द्रव्यों का दर्शक चित्र

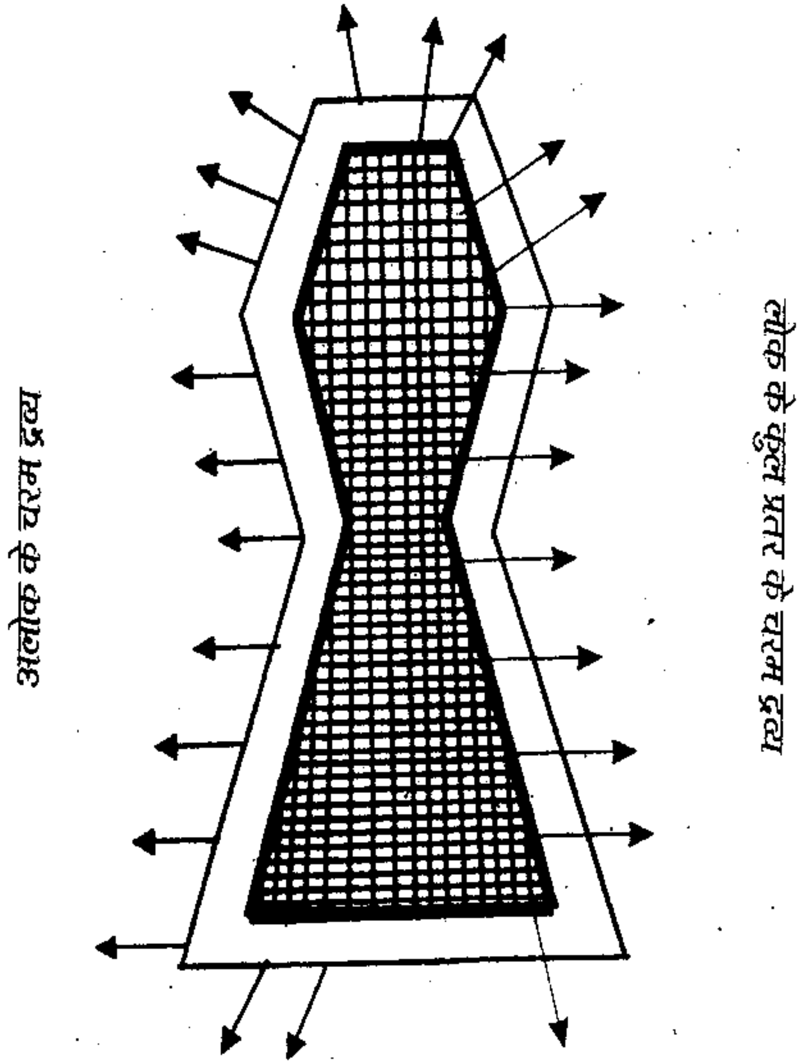

अलोक के अचरम प्रदेश

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो ऊर्ध्व कपाटों के चित्र

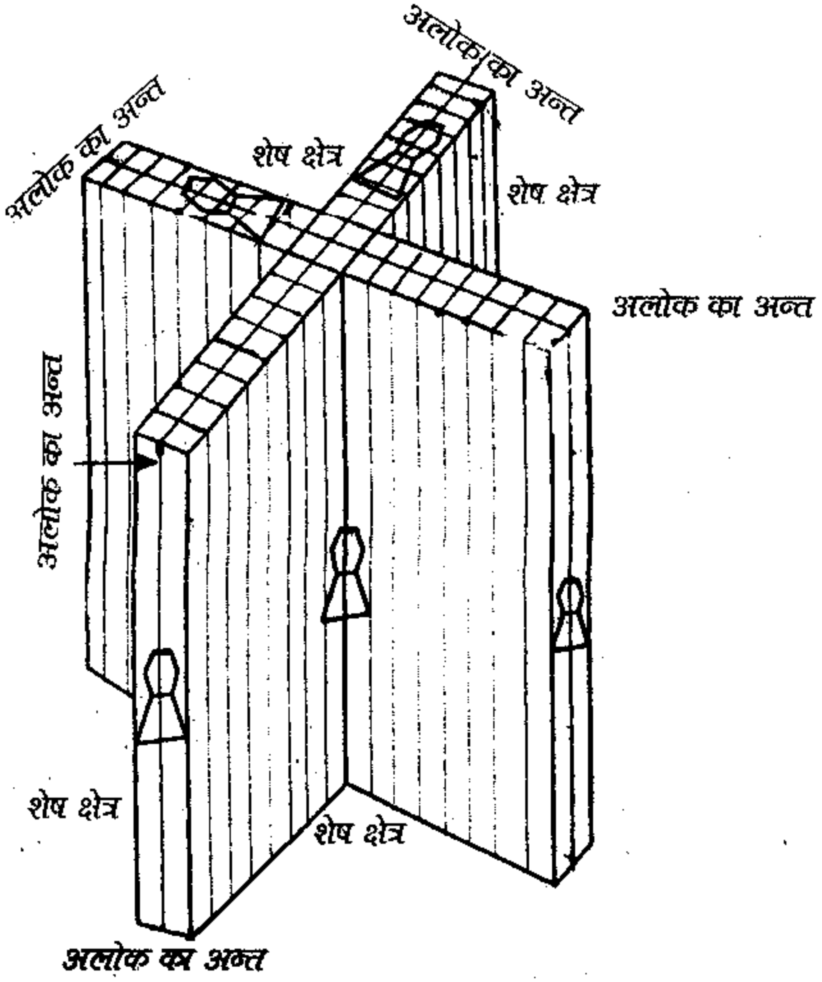

दो ऊर्ध्व कपाट वाले क्षेत्र से शेष बचा हुआ अलोक का क्षेत्र अनन्तगुणा ज्यादा होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक लघु प्रतर द्वारा-लोक व अलोक के चरम द्रव्यों व प्रदेशों का दर्शक चित्र

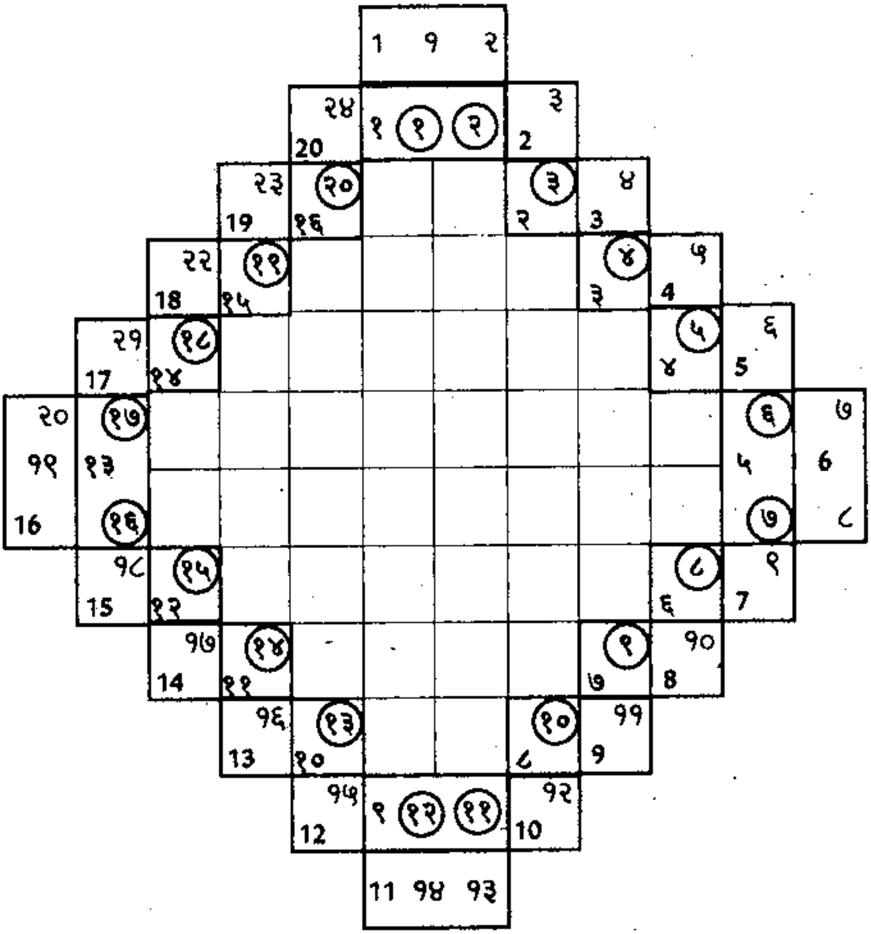

नोटः-उपर्युक्त एक प्रतर के चित्र में लोक व अलोक के 'चरम द्रव्यों व प्रदेशों को बताया गया है - उनकी संख्या क्रमशः इस प्रकार हैं - (१) लोक के चरम द्रव्य १६ (२) लोक के चरम प्रदेश २० (३) अलोक के चरम द्रव्य २० (४) अलोक के चरम प्रदेश २४। वृहत् संख्यात प्रदेशी प्रतर होने पर 'चरम द्रव्यों के चरम प्रदेश संख्यात गुणा हो जाते हैं तथा वृहत् असंख्यात प्रदेशी प्रतर होने पर 'चरम द्रव्यों से चरम प्रदेश असंख्यात गुणा हो जाते हैं।

खुलासा - उपर्युक्त प्रतर में मध्य में रहे हुए ४० प्रदेशों (जिन पर अंक नहीं लिखे हुए हैं उन) का 'युग्म प्रदेशी प्रतर वृत संस्थान' बनाया गया है। उसके बाहर के प्रथम परिक्षेप (वलय-घेरे) के आकाश प्रदेशों पर लिखे हुए 'गहरे वर्ण के अंकों (१, २. ३....) को 'लोक के चरम द्रव्यों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप में बताया गया है। उन्हीं अंकों के पास में लिखे हुए काले वर्ण के अंकों (१) (२) आदि को 'लोक के चरम प्रदेशों' के रूप म बताया गया है। द्वितीय परिक्षेप के आकाश प्रदेशों पर लिखे हुए अंग्रेजी वर्णमाला के अंकों (1, 2....) को 'अलोक के चरम द्रव्यों के रूप में बताया गया है। उन्हीं अंकों के पास में लिखे हुए हल्के वर्ण के अंकों क्रमशः १, २, ३ आदि को 'अलोक के चरम प्रदेशों' के रूप में बताया गया है।

उपर्युक्त चित्र में एक छोटे से प्रतर (८४ प्रदेशी) द्वारा लोक व अलोक के चरम द्रव्यों व प्रदेशों को बताने का प्रयास किया गया है। बहुत छोटा (कम प्रदेशों वाला) प्रतर होने से इसमें चरम द्रव्यों से चरम प्रदेश विशेषाधिक ही होते हैं। यदि प्रतर क्रमशः बड़ा-बड़ा संख्यात प्रदेशों का होने पर संख्यात गुणा का तथा असंख्यात प्रदेशों का प्रतर होने पर असंख्यात गुणा का फर्क हो जाता है। लोक का छोटे से छोटा (क्षुल्लक) प्रतर भी असंख्यात प्रदेशों का ही होने से उसमें तो चरम द्रव्यों से चरम प्रदेश असंख्यातगुणा होने में कोई बाधा नहीं है। अलोक का छोटे से छोटा प्रतर (क्षुल्लक प्रतर का बाह्य परिक्षेप) भी लोक के लघु प्रतर से विशेषाधिक प्रदेशों वाला होने से उसमें तो चरम द्रव्यों से चरम प्रदेश असंख्यातगुणा होना सुस्पष्ट ही है।

परमाणु पुद्गल आदि के चरम अचरम

परमाणु पोग्गले णं भंते! किं चरिमे १, अचरिमे २, अवत्तव्वए ३, चरिमाइं ४, अचरिमाइं ५, अवत्तव्वयाइं ६, उदाहु चरिमे य अचरिमे य ७, उदाहु चरिमे य अचरिमाइं ८, उदाहु चरिमाइं अचरिमे य ९, उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, पढमा चउभंगी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! परमाणु पुद्गल क्या १. चरम हैं? २. अचरम हैं? ३. अवक्तव्य हैं? ४. अथवा बहुवचनान्त अनेक चरम रूप हैं? ५. अनेक अचरम रूप हैं? ६. बहुत अवक्तव्य रूप हैं? अथवा ७. चरम और अचरम हैं? ८. या एक चरम और अनेक अचरम रूप हैं? ९. अथवा अनेक चरम रूप और एक अचरम हैं? १०. या अनेक चरम रूप और अनेक अचरम रूप हैं? यह प्रथम चौभंगी हुई॥ १॥

उदाहु चरिमे य अवत्तव्वए य ११, उदाहु चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२, उदाहु चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३, उदाहु चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, बीया चउभंगी।

भावार्थ - अथवा क्या परमाणु पुद्गल ११. चरम और अवक्तव्य रूप हैं? १२. अथवा एक चरम और बहुत अवक्तव्य रूप हैं? या १३. अनेक चरम रूप और एक अवक्तव्य रूप हैं? अथवा १४. अनेक चरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप हैं? यह दूसरी चौभंगी हुई॥ २॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदाहु अचरिमे य अवत्तव्वए य १५, उदाहु अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६, उदाहु अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७, उदाहु अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, तइया चउभंगी।

भावार्थ - अथवा परमाणु पुद्गल १५. अचरम और अवक्तव्य हैं? अथवा १६. एक अचरम और बहुअवक्तव्य रूप हैं? या १७. अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य रूप हैं? अथवा १८. अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप हैं? यह तीसरी चौभंगी हुई॥ ३॥

उदाहु चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९, उदाहु चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २०, उदाहु चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१, उदाहु चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२, उदाहु चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३, उदाहु चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४, उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५, उदाहु चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६। एवं एए छव्वीसं भंगा।

गोयमा! परमाणु पोग्गले णो चरिमे, णो अचरिमे, णियमा अवत्तव्वए, सेसा भंगा पडिसेहेयव्वा॥ ३५८॥

कठिन शब्दार्थ - पडिसेहेयव्वा - निषेध करना चाहिए।

भावार्थ - अथवा परमाणु पुद्गल १९. एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्य है? या २०. एक चरम, एक अचरम और बहुत अवक्तव्य रूप हैं? अथवा २१. एक चरम, अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है? अथवा २२. एक चरम, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य हैं? अथवा २३. अनेक चरम रूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है? अथवा २४. अनेक चरम रूप, एक अचरम और अनेक अवक्तव्य हैं? या २५. अनेक चरम रूप, अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है? अथवा २६. अनेक चरम रूप, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य हैं? इस प्रकार ये छब्बीस भंग होते हैं।

उत्तर - हे गौतम! परमाणु पुद्गल उपर्युक्त छब्बीस भंगों में से चरम नहीं, अचरम नहीं, किन्तु नियम से अवक्तव्य हैं। शेष तेईस भंगों का भी निषेध कर देना चाहिए।

विवेचन - परमाणु पुद्गल को लेकर चरम अचरम आदि के विषय में प्रश्न किया गया है। जिसका उत्तर अब आगे दिया जा रहा है। इन चरम, अचरम, अवक्तव्य को लेकर एकवचन बहुवचन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की अपेक्षा से छब्बीस भङ्ग बनते हैं जिनमें से कुछ भङ्ग शून्य हैं अर्थात् पुद्गल में वैसे भङ्गों का संस्थान नहीं बनता है। वे छब्बीस भङ्ग इस प्रकार हैं -

असंयोगी भंग छह - १. चरम एक २. अचरम एक, यह भङ्ग शून्य है ३. अवक्तव्य एक ४. चरम बहुत, यह भङ्ग शून्य है ५. अचरम बहुत, यह भङ्ग शून्य है ६. अवक्तव्य बहुत, यह भङ्ग शून्य है।

द्विसंयोगी भंग बारह -

७. चरम एक, अचरम एक

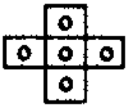

८. चरम एक, अचरम बहुत-

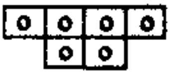

९. चरम बहुत, अचरम एक-

१०. चरम बहुत, अचरम बहुत-

११. चरम एक, अवक्तव्य एक-

१२. चरम एक, अवक्तव्य बहुत *-

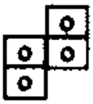

१३. चरम बहुत, अवक्तव्य एक-

---

* बारहवें भंग में समसीध में दो आकाश प्रदेशों पर एक-एक प्रदेश अवगाढ़ हैं इन्हीं दो आकाश प्रदेशों में से एक आकाश प्रदेश के ऊपर वाले आकाश प्रदेश पर चार प्रदेशों आदि स्कन्ध का एक प्रदेश अवगाढ़ है तथा दो आकाश प्रदेशों के दूसरे आकाश प्रदेश के नीचे वाले आकाश प्रदेश पर एक प्रदेश अवगाढ़ है। ये दोनों प्रदेश समसीध में नहीं होने से अर्थात् प्रतरान्तर में होने से इन्हें बहुत अवक्तव्य कहा गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४. चरम बहुत, अवक्तव्य बहुत -

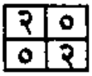

१५. अचरम एक, अवक्तव्य एक, (यह भङ्ग शून्य है)।

१६. अचरम एक, अवक्तव्य बहुत, (यह भङ्ग शून्य है)।

१७. अचरम बहुत, अवक्तव्य एक, (यह भङ्ग शून्य है)।

१८. अचरम बहुत, अवक्तव्य बहुत, (यह भङ्ग शून्य है)।

तीन संयोगी भंग आठ -

१९. चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य एक-

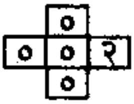

२०. चरम एक, अचरम एक, अवक्तव्य बहुत-

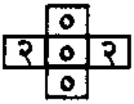

२१. चरम एक, अचरम बहुत, अवक्तव्य एक-

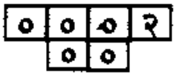

२२. चरम एक, अचरम बहुत, अवक्तव्य बहुत-

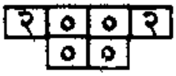

२३. चरम बहुत, अचरम एक, अवक्तव्य एक-

२४. चरम बहुत, अचरम एक, अवक्तव्य बहुत-

२५. चरम बहुत, अचरम बहुत, अवक्तव्य एक-

२६. .रम बहुत, अचरम बहुत, अवक्तव्य बहुत-

विवेचन - अनुयोग द्वार सूत्र में औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक पारिणामिक और सान्निपातिक इन छह भावों के छब्बीस भङ्ग बनाये हैं। यह छब्बीस भङ्ग जीव के हैं किन्तु इन छब्बीस में से सिर्फ छह भङ्ग जीव में पाये जाते हैं बाकी बीस भङ्ग शून्य हैअर्थात् ये बीस भङ्ग किसी जीव में पाये नहीं जाते हैं। इसी प्रकार अजीव के अर्थात् परमाणु पुद्‌गल आदि के चरम, अचरम और अवक्तव्य इन तीन पदों के छब्बीस भङ्ग बनते हैं उनमें से अठारह भङ्ग तो परमाणु आदि में पाये जाते हैं अर्थात् पुद्‌गल के उस प्रकार के संस्थान बनते हैं। किन्तु आठ भङ्ग शून्य हैं अर्थात् इस प्रकार का संस्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(स्थापना) किसी भी परमाणु आदि का नहीं बनता है वे आठ भङ्ग इस प्रकार हैं - दूसरा, चौथा, पाँचवाँ, छठा, पन्द्रहवां, सोलहवां, सतरहवां, अठारहवां। शेष अठारह भंग आठ प्रदेशों आदि सभी स्कन्धों में पाये जा सकते हैं। परमाणु द्वि प्रदेशी स्कंध आदि जितने प्रदेशावगाढ़ हो सकते हैं। उनमें यथा संभव उतने उतने भंग समझ लेने चाहिए।

दुपएसिए णं भंते! खंधे किं चरिमे, अचरिमे जाव अवत्तव्वयाइं?

गोयमा! दुपएसिए खंधे सिय चरिमे, णो अचरिमे, सिय अवत्तव्वए। सेसा भंगा पडिसेहेयव्वा॥ ३५९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! द्विप्रदेशिक स्कन्ध के विषय में इन छब्बीस भंगों में से कौनसे और कितने भंग पाये जाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्विप्रदेशिक स्कन्ध १. कथंचित् चरम है, २. अचरम नहीं है, ३. कथंचित् अवक्तव्य है। शेष तेईस भंगों का निषेध कर देना चाहिए। अर्थात् - द्विप्रदेशिक स्कन्ध में इन छब्बीस भंगों में से सिर्फ दो भंग पाये जाते हैं यथा - १. एक चरम २. एक अचरम। चौबीस भंग शून्य है।

तिपएसिए णं भंते! खंधे किं चरिमे, अचरिमे जाव अवत्तव्वयाइं?

गोयमा! तिपएसिए खंधे सिय चरिमे १, णो अचरिमे २, सिय अवत्तव्वए ३, णो चरिमाइं ४, णो अचरिमाइं ५, णो अवत्तव्वयाइं ६, णो चरिमे य अचरिमे य ७, णो चरिमे य अचरिमाइं ८, सिय चरिमाइं च अचरिमे य ९, णो चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११, सेसा भंगा पडिसेहेयव्वा॥ ३६०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! त्रिप्रदेशिक स्कन्ध के विषय में इन छब्बीस भंगों में से कौन से और कितने भंग पाये जाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! त्रिप्रदेशिक स्कन्ध १. कथञ्चित् चरम है, २. अचरम नहीं है, ३. कथंचित् अवक्तव्य है, ४. वह न तो अनेक चरम रूप है, ५. न अनेक अचरम रूप है, ६. न अनेक अवक्तव्य रूप है, ७. न एक चरम और एक अचरम है, ८. न एक चरम और अनेक अचरम रूप है, ९. कथंचित् अनेक चरम रूप और एक अचरम है, १०. वह अनेक चरमरूप और अनेक अचरम रूप नहीं है, किन्तु ११. कथंचित् एक चरम और एक अवक्तव्य है। शेष पन्द्रह भंगों का निषेध कर देना चाहिए। अभिप्राय यह है कि तीन प्रदेशिक स्कन्ध में पहला, तीसरा, नववां और ग्यारहवां ये चार भंग पाये जाते हैं शेष बाईस भंग शून्य हैं।

चउपएसिए णं भंते! खंधे किं चरिमे, अचरिमे जाव अवत्तव्वयाइं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! चउपएसिए णं खंधे सिय चरिमे १, णो अचरिमे २, सिय अवत्तव्वए ३ णो चरिमाइं ४, णो अचरिमाइं ५, णो अवत्तव्वयाइं ६, णो चरिमे य अचरिमे य ७, णो चरिमे य अचरिमाइं च ८, सिय चरिमाइं अचरिमे य ९, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११, सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२, णो चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३, णो चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, णो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५, णो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, णो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९, णो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २०, णो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१, णो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३। सेसा भंगा पडिसेहेयव्वा॥ ३६१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध के विषय में इन छब्बीस भंगों में से कितने और कौनसे भंग पाये जाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! चतुष्प्रदेशिक स्कन्ध १. कथंचित् चरम है, २. अचरम नहीं है, ३. कथंचित् अवक्तव्य है। ४. वह न तो अनेक चरम रूप है ५. न अनेक अचरम रूप है, ६. न ही अनेक अवक्तव्य रूप है ७. न वह चरम और अचरम है ८. न एक चरम और अनेक अचरम रूप है, किन्तु ९. कथञ्चित् अनेक चरम रूप और एक अचरम है, १०. कथंचित् अनेक चरम रूप और अनेक अचरम रूप है, ११. कथंचित् एक चरम और एक अवक्तव्य है और १२. कथंचित् एक चरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, १३. वह न तो अनेक चरम रूप और एक अवक्तव्य है, १४. न अनेक चरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, १५. न एक अचरम और एक अवक्तव्य है १६. न एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है १७. न अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है १८. न अनेक अचरम रूप और न अनेक अवक्तव्य रूप है और १९. न ही वह एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्य है २०. न एक चरम, एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, २१. न एक चरम, अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है २२. न एक चरम, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है किन्तु २३. कथंचित् अनेक चरम रूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है। शेष तीन भंगों का निषेध कर देना चाहिए। अभिप्राय यह है कि चार प्रदेशी स्कन्ध में पहला, तीसरा, नववां, दसवां, ग्यारहवां, बारहवां और तेईसवां, ये सात भंग पाये जाते हैं शेष भंग शून्य हैं।

पंचपएसिए णं भंते! खंधे किं चरिमे, अचरिमे जाव अवत्तव्वयाइं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! पंचपएसिए खंधे सिय चरिमे १, णो अचरिमे २, सिय अवत्तव्वए ३, णो चरिमाइं ४, णो अचरिमाइं ५, अवत्तव्वयाइं ६, सिय चरिमे य अचरिमे य ७, णो चरिमे य अचरिमाइं च ८, सिय चरिमाइं च अचरिमे य ९, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११ सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२, सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३, णो चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १५, णो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५, णो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, णो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९, णो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २०, णो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१, णो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५, णो चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६॥ ३६२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पञ्चप्रदेशिक स्कन्ध के विषय में इन छब्बीस भंगों में से कौनसे और कितने भंग पाये जाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचप्रदेशिक स्कन्ध १. कथंचित् चरम है २. अचरम नहीं है, ३. कथंचित् अवक्तव्य है किन्तु वह ४. न तो अनेक चरम रूप है, ५. न अनेक अचरम रूप है, ६. न ही अनेक अवक्तव्य रूप है किन्तु ७. कथञ्चित् चरम रूप और अचरम रूप है, वह ८. एक चरम और अनेक चरम रूप नहीं है, किन्तु ९. कथंचित् अनेक चरम रूप और एक अचरम रूप है, १०. कथंचित् अनेक चरम रूप और अनेक अचरम रूप है, ११. कथंचित् एक चरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है, १२. कथंचित् एक चरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, तथा १३. कथंचित् अनेक चरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है, किन्तु वह १४. न तो अनेक चरम रूप और न अनेक अवक्तव्य रूप है, १५. न एक अचरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है, १६. न एक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, १७. न अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है १८. न अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, १९. तथा न एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्य रूप है, २०. न एक चरम, एक अचरम और अवक्तव्य रूप है, २१. न एक चरम अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है २२. न एक चरम, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, किन्तु २३. कथंचित् अनेक चरम रूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २४. कथंचित् अनेक चरम रूप, एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२५. कथंचित् अनेक अचरम रूप, अनेक चरम रूप और एक अवक्तव्य है, किन्तु २६. अनेक चरम रूप, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप नहीं है। अभिप्राय यह है कि पांच प्रदेशी स्कन्ध में पहला, तीसरा, सातवां, नववां, दसवां, ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां, तेईसवां, चौबीसवां और पच्चीसवां ये ग्यारह भंग पाये जाते हैं। शेष पन्द्रह भंग शून्य हैं।

छप्पएसिए णं भंते! खंधे किं चरिमे, अचरिमे जाव अवत्तव्वयाइं?

गोयमा! छप्पएसिए णं खंधे सिय चरिमे १, णो अचरिमे २, सिय अवत्तव्वए ३, णो चरिमाइं ४, णो अचरिमाइं ५, णो अवत्तव्वयाइं ६, सिय चरिमे य अचरिमे य ७, सिय चरिमे य अचरिमाइं च ८, सिय चरिमाइं च अचरिमे य ९, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११, सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२, सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३, सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, णो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५, णो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९, णो चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २०, णो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१, णो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६॥ ३६३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! षट् (छह) प्रदेशिक स्कन्ध के विषय में इन छब्बीस भंगों में से कितने और कौनसे भंग पाये जाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! षट् (छह) प्रदेशिक स्कन्ध १. कथंचित् चरम है, २. अचरम नहीं है, ३. कथंचित् अवक्तव्य है, किन्तु ४. न तो वह अनेक चरम रूप है, ५. न अनेक अचरम रूप है, ६. और न ही अनेक अवक्तव्य रूप है किन्तु ७. कथंचित् चरम और अचरम है, ८. कथंचित् एक चरम और अनेक अचरम रूप है, ९. कथंचित् अनेक चरम और एक अचरम है, १०. कथंचित् अनेक चरम रूप और अनेक अचरम रूप है, ११. कथंचित् एक चरम और अवक्तव्य है, १२. कथंचित् एक चरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, १३. कथंचित् अनेक चरम रूप और एक अवक्तव्य है, १४. कथंचित् अनेक चरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, किन्तु १५. न तो एक अचरम और एक अवक्तव्य है, १६. न एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, १७. न अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१८. न ही अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्यरूप है किन्तु १९. कथंचित् एक चरम एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २०. न एक चरम एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, २१. न एक चरम अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है २२. न ही एक चरम, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है किन्तु २३. कथंचित् अनेक चरम रूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २४. कथंचित् अनेक चरम रूप, एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, २५. कथंचित् अनेक चरम रूप, अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है और २६. कथंचित् अनेक चरम रूप, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है। अभिप्राय यह हैं कि षट् (छह) प्रदेशी स्कन्ध में पहला, तीसरा, सातवां, आठवां, नववां, दसवां, ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां, चौदहवां, उन्नीसवां, तेईसवां, चौबीसवां, पच्चीसवां और छब्बीसवां ये पन्द्रह भंग पाये जाते हैं शेष ग्यारह भंग शून्य हैं।

सत्तपएसिए णं भंते! खंधे किं चरिमे, अचरिमे जाव अवत्तव्वयाइं?

गोयमा! सत्तपएसिए णं खंधे सिय चरिमे १, णो अचरिमे २, सिय अवत्तव्वए ३, णो चरिमाइं ४, णो अचरिमाइं ५, णो अवत्तव्वयाइं ६, सिय चरिमे य अचरिमे य ७, सिय चरिमे य अचरिमाइं च ८, सिय चरिमाइं च अचरिमे य ९, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११, सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२, सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३, सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, णो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५, णो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९, सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २०, सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१, णो चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६॥ ३६४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! सप्त प्रदेशिक स्कन्ध के विषय में इन छब्बीस भंगों में से कितने और कौनसे भंग पाये जाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! सप्त प्रदेशिक स्कन्ध १. कथंचित् चरम है, २. अचरम नहीं है ३. कथंचित् अवक्तव्य है, ४. किन्तु वह अनेक चरम रूप नहीं है ५. न अनेक अचरम रूप है और ६. न ही अनेक अवक्तव्य रूप है किन्तु ७. कथंचित् चरम और अचरम है, ८. कथंचित् एक चरम और अनेक अचरम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप हैं, ९. कथंचित् अनेक चरम रूप और एक अचरम है, १०. कथंचित् अनेक चरम रूप और अनेक अचरम रूप है, ११. कथंचित् एक चरम और एक अवक्तव्य है, १२. कथंचित् एक चरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, १३. कथंचित् अनेक चरम रूप और एक अवक्तव्य है, १४. कथंचित् अनेक चरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, किन्तु १५. न तो वह एक अचरम और एक अवक्तव्य है, १६. न एक अचरम और अनेक अवक्तव्य है १७. न अनेक अचरम और एक अवक्तव्य है और १८. न ही अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है किन्तु १९. कथंचित् एक चरम, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २० कथंचित् एक चरम, एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, २१. कथंचित् एक चरम, अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है २२. एक चरम अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप नहीं है, २३. कथंचित् अनेक चरम रूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २४. कथंचित् अनेक चरम रूप एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, २५. कथंचित् अनेक चरम रूप, अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है, और २६. कथंचित् अनेक चरम रूप, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है।

विवेचन - सात प्रदेशिक स्कन्ध में उपरोक्त छब्बीस भंगों में से नौ भंग नहीं पाये जाते हैं। वे इस प्रकार हैं - दूसरा, चौथा, पांचवां, छठा, पन्द्रहवां, सोलहवाँ, सतरहवां, अठारहवां और बाईसवां। इन नौ भंगों को छोड़कर शेष सतरह भंग पाये जाते हैं।

अट्ठपएसिए णं भंते! खंधे किं चरिमे, अचरिमे जाव अवत्तव्वयाइं?

गोयमा! अट्ठपएसिए खंधे सिय चरिमे १, णो अचरिमे २, सिय अवत्तव्वए ३, णो चरिमाइं ४, णो अचरिमाइं ५, णो अवत्तव्वयाइं ६, सिय चरिमे य अचरिमे य ७, सिय चरिमे य अचरिमाइं च ८, सिय चरिमाइं च अचरिमे य ९, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च १०, सिय चरिमे य अवत्तव्वए य ११, सिय चरिमे य अवत्तव्वयाइं च १२, सिय चरिमाइं च अवत्तव्वए य १३, सिय चरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १४, णो अचरिमे य अवत्तव्वए य १५, णो अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च १६, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वए य १७, णो अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च १८, सिय चरिमे य अचरिमे य अवत्तव्वए य १९, सिय चरिमे य अचरिमे अवत्तव्वयाइं च २०, सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २१, सिय चरिमे य अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २२, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वए य २३, सिय चरिमाइं च अचरिमे य अवत्तव्वयाइं च २४, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वए य २५, सिय चरिमाइं च अचरिमाइं च अवत्तव्वयाइं च २६।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अष्ट प्रदेशिक स्कन्ध के विषय में इन छब्बीस भंगों में से कितने और कौन से भंग पाये जाते हैं?

उत्तर - हे गौतम! अष्ट प्रदेशिक स्कन्ध १. कथंचित् चरम है, २. अचरम नहीं है ३. कथंचित् अवक्तव्य है किन्तु ४. न तो अनेक चरम रूप है, ५. न अनेक अचरम रूप है और ६. न ही अनेक अवक्तव्य रूप है ७. कथंचित् एक चरम और एक अचरम है, ८. कथंचित् एक चरम और अनेक अचरम रूप है, ९. कथंचित् अनेक चरम रूप और एक अचरम है, १०. कथंचित् अनेक चरम रूप और अनेक अचरम रूप है, ११. कथंचित् चरम और अवक्तव्य है, १२. कथंचित् एक चरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, १३. कथंचित् अनेक चरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है, १४. कथंचित् अनेक चरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, किन्तु १५. न तो वह एक अचरम और एक अवक्तव्य है, १६. न एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, १७. न अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है और १८. न ही अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, किन्तु १९. कथंचित् एक चरम एक अचरम और एक अवक्तव्य रूप है, २०. कथंचित् एक चरम, एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, २१. कथंचित् एक चरम अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य है, २२. कथंचित् एक चरम, अनेक अचरम रूप और अनेक अवक्तव्य रूप है, २३. कथंचित् अनेक चरम रूप, एक अचरम और एक अवक्तव्य है, २४. कथंचित् अनेक चरम रूप, एक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप है, २५. कथंचित् अनेक चरम रूप, अनेक अचरम रूप और एक अवक्तव्य रूप है, २६. कथंचित् अनेक चरम, अनेक अचरम और अनेक अवक्तव्य रूप हैं।

विवेचन - अष्ट प्रदेशिक स्कन्ध में इन छब्बीस भंगों में से आठ भंग नहीं पाये जाते हैं। वे इस प्रकार हैं - दूसरा, चौथा, पांचवां, छठा, पन्द्रहवां, सोलहवां, सतरहवां और अठारहवां। इन आठ भंगों को छोड़कर शेष अठारह भंग पाये जाते हैं।

आठ प्रदेशिक स्कन्ध से लेकर नौ प्रदेशिक, दस प्रदेशिक, संख्यात प्रदेशिक, असंख्यात प्रदेशिक और अनन्त प्रदेशिक, इन सब स्कन्धों में ये आठ भंग नहीं पाये जाते हैं। शेष भंग यथा योग्य पाये जा सकते हैं।

यह बात पहले बताई जा चुकी है कि चरम, अचरम और अवक्तव्य इन तीन पदों के असंयोगी और संयोगी छब्बीस भंग बनते हैं किन्तु आठ भंग जो ऊपर बताये गये हैं वे सब शून्य हैं अर्थात् उनके संस्थान (स्थापना और आकृति) नहीं बनते हैं। इसीलिए शून्य हैं। भंग तो बनते हैं इसीलिए छब्बीस भंग बनाये गये हैं एवं बताये गये हैं किन्तु आठ भंग शून्य हो जाने के कारण अठारह भंग की स्थापना पाई जाती है।

यहाँ पर (इन भंगों में) **'चरम'** का अर्थ - विवक्षित स्कन्ध के अन्त में रहे हुए प्रदेश। **'अचरम'**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का अर्थ - विवक्षित स्कन्ध के मध्य में रहे हुए प्रदेश। **'अवक्तव्य'** का अर्थ-समश्रेणी में रहे हुए प्रदेशों के ऊपर या नीचे प्रतरान्तर में रहे हुए प्रदेश। **'चरम एक'** - इसको इन भंगों में तीन तरह से बताया गया है - १. सम श्रेणी में दो आकाश प्रदेशों पर रहे हुए २. ओज प्रदेशी प्रतरवृत्त जघन्य प्रदेशावगाढ की तरह पूर्ण वृत्त के चारों दिशाओं के प्रदेश ३. युग्म प्रदेशी प्रतरवृत्त जघन्य प्रदेशावगाढ के अर्द्ध भाग रूप ६ आकाश प्रदेशों पर रहे हुए प्रदेश। इसमें अर्द्धवृत्त के धनुषाकार चार प्रदेशों को एक चरम माना गया है।

संखिज्जपएसिए असंखिज्जपएसिए अणंतपएसिए खंधे जहेव अट्ठपएसिए तहेव पत्तेयं भाणियव्वं।

भावार्थ - संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी प्रत्येक स्कन्ध के विषय में, जैसे अष्ट प्रदेशी स्कन्ध के सम्बन्ध में कहा, उसी प्रकार कहना चाहिए।

विवेचन - उपरोक्त छब्बीस भंगों का संग्रह करने वाली "संग्रहणी गाथाएं" इस प्रकार हैं - जो कि उपसंहार रूप में है।

परमाणुम्मि य तइओ, पढमो तइओ य होंति दुपएसे।
पढमो तइओ णवमो एक्कारसमो य तिपएसे॥ १॥
पढमो तइओ णवमो दसमो एक्कारसो य बारसमो।
भंगा चउप्पएसे तेवीसइमो य बोद्धव्वो॥ २॥
पढमो तइओ सत्तम णव दस इक्कार बार तेरसमो।
तेवीस चउव्वीसो पणवीसइमो य पंचमए॥ ३॥
बि चउत्थ पंच छट्ठं पणरस सोलं च सत्तरट्ठारं।
वीसेक्कवीस बावीसगं च वज्जेज्ज छट्ठंमि॥ ४॥
बि चउत्थ पंच छट्ठं पण्णर सोलं च सत्तरट्ठारं।
बावीसइम विहूणा सत्तपएसंमि खंधम्मि॥ ५॥
बि चउत्थ पंच छट्ठं पण्णर सोलं च सत्तरट्ठारं।
एए वज्जिय भंगा सेसा सेसेसु खंधेसु॥ ६॥ ३६५॥

भावार्थ - परमाणु पुद्गल में तृतीय (अवक्तव्य) भंग होता है। द्वि प्रदेशी स्कन्ध में प्रथम (चरम) और तृतीय (अवक्तव्य) भंग होते हैं। त्रि प्रदेशी स्कन्ध में प्रथम, तीसरा, नौवाँ और ग्यारहवाँ भंग होता है। चतुःप्रदेशी स्कन्ध में पहला, तीसरा, नौवाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवां और तेईसवाँ भंग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समझना चाहिए। पंचप्रदेशी स्कन्ध में पहला, तीसरा, सातवाँ, नववाँ, दसवाँ, ग्यारहवाँ, बारहवाँ, तेरहवां, तेईसवाँ, चौबीसवां और पच्चीसवां भंग जानना चाहिए॥ १, २, ३॥

षट्प्रदेशी स्कन्ध में दूसरा, चौथा, पांचवां, छठा, पन्द्रहवाँ, सोलहवाँ, सतरहवाँ, अठारहवाँ, बीसवाँ, इक्कीसवाँ और बाईसवाँ छोड़कर शेष भंग होते हैं॥ ४॥

सप्तप्रदेशी स्कन्ध में दूसरे, चौथे, पाँचवें, छठे, पन्द्रहवें, सोलहवें, सतरहवें, अठारहवें और बाईसवें भंग के सिवाय शेष भंग होते हैं॥ ५॥

शेष सब स्कन्धों अष्टप्रदेशी से लेकर संख्यातप्रदेशी, असंख्यातप्रदेशी और अनन्तप्रदेशी स्कन्धों में दूसरा, चौथा, पांचवाँ, छठा, पन्द्रहवाँ, सोलहवाँ, सतरहवाँ, अठारहवाँ, इन भंगों को छोड़ कर, शेष भंग होते हैं॥ ३६५॥

विवेचन - परमाणु द्विप्रदेशी स्कंध आदि में पाये जाने वाले भंगों की संख्या संग्रहणी गाथाओं में दी गयी है। जो इस प्रकार है - परमाणु में एक (तीसरा) भंग पाया जाता है। द्वि प्रदेशी स्कंध में दो (पहला, तीसरा) भंग। तीन प्रदेशी स्कंध में चार (पहला, तीसरा, नववाँ, ग्यारहवाँ) भंग। चार प्रदेशी स्कंध में सात (पहला, तीसरा, नववां, दसवाँ, ग्यारहवां, बारहवाँ, तेवीसवां) भंग। पांच प्रदेशी स्कंध में ग्यारह (पहला, तीसरा, सातवां, नववां, दसवां, ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां, तेवीसवां, चौबीसवां, पच्चीसवां) भंग। छह प्रदेशी स्कन्ध में पन्द्रह (पहला, तीसरा, सातवां, आठवां, नववां, दसवाँ, ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां, चौदहवां, उन्नीसवां, तेवीसवां, चौबीसवां, पच्चीसवां, छब्बीसवां) भंग। सात प्रदेशी स्कंध में सतरह (पहला, तीसरा, सातवां, आठवाँ, नववां, दसवां, ग्यारहवां, बारहवां, तेरहवां, चौदहवां, उन्नीसवां, बीसवां, इक्कीसवां, तेवीसवां, चौबीसवां, पच्चीसवां, छब्बीसवां) भंग। आठ प्रदेशी स्कन्ध से अनन्त प्रदेशी स्कंध तक अठारह भंग (पूर्वोक्त सतरह और एक बावीसवां) पाये जाते हैं। दूसरा, चौथा, पांचवां, छठा, पन्द्रहवां, सोलहवां, सतरहवां, अठारहवां, ये आठ भंग शून्य हैं अर्थात् किन्ही भी स्कन्धों में ये आठ भंग नहीं पाये जाते हैं।

उपर्युक्त स्थापना वाले भंगों में जो दो का अंक [२] रखा गया है उसका अर्थ - 'समश्रेणी में उसके ऊपर अथवा नीचे की तरफ, 'अवक्तव्य' के रूप में प्रदेश लगा हुआ है।

उपरोक्त भंगों में से जिन-जिन भंगों में अवक्तव्य है। उन भंगों में से अवक्तव्य के प्रदेश को टीकाकार विश्रेणी (विदिशा की श्रेणी) में स्थापना करते हैं परन्तु विश्रेणी में रहा हुआ एक परमाणु रूप अवक्तव्य से दूसरे परमाणु का स्पर्श नहीं होता। क्योंकि वह (परमाणु) तो **"सव्वेणं सव्वं फुसइ"** होता है। इसीलिए तो भगवती सूत्र शतक ८ उद्देशक ९ में आठ रुचक प्रदेश के तीन-तीन प्रदेशों के ही स्पर्श बताया गया है। किन्तु विश्रेणी का स्पर्श नहीं माना गया है। अतः चरम के साथ अवक्तव्य की स्थापना ऊपर या नीचे की श्रेणी या प्रतरान्तर में करनी चाहिये। विषम श्रेणी का अर्थ समश्रेणी के ऊपर या नीचे की श्रेणी समझना चाहिये, किन्तु विदिशा की श्रेणी नहीं समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पांच प्रदेशी आदि स्कन्धों में जो सातवें भंग की स्थापना है उस में बीच के प्रदेश को 'एक अचरम' तथा चारों तरफ के चार प्रदेशों को उस प्रकार के परिमाण से एक स्कन्ध की विवक्षा करके 'एक चरम' मान लिया है। चारों प्रदेश परस्पर सम्बद्ध (जुड़े हुए) हैं। बीच में अन्तर नहीं है। इसी प्रकार छह प्रदेशी आदि स्कन्धों में पाये जाने वाले 'आठवें भंग की स्थापना' में भी अर्द्धवृत्त की तरह किनारे के चार प्रदेशों के परस्पर सम्बद्ध होने से उनकी चारों प्रदेशों की 'एक चरम' रूप से विवक्षा की है तथा मध्य के दो प्रदेशों को 'बहुत अचरम' रूप से माना गया है।

चौथा भंग (चरम बहुत) - यह भंग किन्हीं भी स्कन्धों में नहीं बताया गया है यद्यपि भगवती सूत्र के शतक २५ उद्देशक ३ में युग्म प्रदेशी प्रतर चौरस संस्थान (चतुः प्रदेशी) में यह घटाया भी है। परन्तु चरम बहुत यह भंग अचरम व अवक्तव्य के बिना नहीं होना ही आगमकारों को इष्ट लगता है। अतः चौरस संस्थान वाले उपरोक्त आकार को अपेक्षा से चरम एक मान लेना चाहिए। अन्यथा चरम पद में इस भंग का निषेध नहीं किया जाता।

टीकाकार ने अनेक भंगों की स्थापनाएं इस प्रकार से की है कि जिसका आशय ही स्पष्ट नहीं हो पाता। फिर भी टीकाकार कहते हैं कि **"यथा कथञ्चन तथा प्रकारे"** उस किसी भी प्रकार से स्थापनाएं बना लेनी चाहिए। जिससे बराबर आशय भी समझ में आ जाय और अन्य आगम पाठों के साथ विरोध भी नहीं आवे। इसी उद्देश्य से उपरोक्त स्थापनाएं की गयी हैं।

संस्थान की अपेक्षा चरम अचरम आदि

कइ णं भंते! संठाणा पण्णत्ता?

गोयमा! पंच संठाणा पण्णत्ता। तंजहा-परिमंडले, वट्टे, तंसे, चउरंसे, आयए ॥ ३६६ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संस्थान कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! संस्थान पांच कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. परिमण्डल २. वृत्त ३. त्र्यस्र ४. चतुरस्र और ५. आयत।

विवेचन - पांच प्रकार के संस्थान कहे गये हैं - १. परिमण्डल (गोल चूड़ी के आकार अर्थात् गोल किन्तु बीच में पोला-खाली) २. वृत्त (गोल-रुपया और लड्डू के आकार अर्थात् झालर के आकार बीच में पोला नहीं) ३. त्र्यस्र (त्रिकोण-सिंघाडा के आकार) ४. चतुरस्र (चौकोर-चौकी बाजौट के आकार) ५. आयत (लम्बा-बांस आदि के आकार)।

परिमंडला णं भंते! संठाणा किं संखिज्जा, असंखिज्जा, अणंता?

गोयमा! णो संखिज्जा, णो असंखिज्जा, अणंता। एवं जाव आयता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात हैं, असंख्यात हैं अथवा अनन्त हैं?

उत्तर - हे गौतम! परिमण्डल संस्थान संख्यात नहीं, असंख्यात नहीं, किन्तु अनन्त हैं। इसी प्रकार वृत्त से लेकर यावत् आयत तक के विषय में समझ लेना चाहिए।

परिमंडले णं भंते! संठाणे किं संखिज्ज पएसिए, असंखिज्ज पएसिए, अणंत पएसिए?

गोयमा! सिय संखिज्ज पएसिए, सिय असंखिज्ज पएसिए, सिय अणंत पएसिए। एवं जाव आयए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात प्रदेशी है, असंख्यात प्रदेशी है अथवा अनन्त प्रदेशी है?

उत्तर - हे गौतम! परिमण्डल संस्थान कदाचित् संख्यात प्रदेशी है, कदाचित् असंख्यात प्रदेशी है और कदाचित् अनन्त प्रदेशी है। इसी प्रकार वृत्त से लेकर आयत तक के विषय में समझ लेना चाहिए।

परिमंडले णं भंते! संठाणे संखिज्ज पएसिए किं संखिज्ज पएसोगाढे, असंखिज्ज पएसोगाढे, अणंत पएसोगाढे?

गोयमा! संखिज्ज पएसोगाढे, णो असंखिज्ज पएसोगाढे, णो अणंत पएसोगाढे। एवं जाव आयए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संख्यात प्रदेशी परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है अथवा अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ होता है?

उत्तर - हे गौतम! संख्यात प्रदेशी परिमण्डल संस्थान संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, किन्तु न तो असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है और न अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ होता है। इसी प्रकार आयत संस्थान तक के विषय में कह देना चाहिए।

परिमंडले णं भंते! संठाणे असंखिज्ज पएसिए किं संखिज्ज पएसोगाढे, असंखिज्ज पएसोगाढे, अणंत पएसोगाढे?

गोयमा! सिय संखिज्ज पएसोगाढे, सिय असंखिज्ज पएसोगाढे, णो अणंत पएसोगाढे। एवं जाव आयए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंख्यात प्रदेशी परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है अथवा अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ होता है?

उत्तर - हे गौतम! असंख्यात प्रदेशी परिमण्डल संस्थान कदाचित् संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है और कदाचित् असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, किन्तु अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ नहीं होता। इसी प्रकार वृत्त से लेकर आयत संस्थान तक के विषय में कह देना चाहिए।

परिमंडले णं भंते! संठाणे अणंत पएसिए किं संखिज्ज पएसोगाढे, असंखिज्ज पएसोगाढे, अणंत पएसोगाढे?

गोयमा! सिय संखिज्ज पएसोगाढे, सिय असंखिज्ज पएसोगाढे, णो अणंत पएसोगाढे। एवं जाव आयए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनन्त प्रदेशी परिमण्डल संस्थान क्या संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, अथवा अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ होता है?

उत्तर - हे गौतम! अनन्त प्रदेशी परिमण्डल संस्थान कदाचित् संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है और कदाचित् असंख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ होता है, किन्तु अनन्त प्रदेशों में अवगाढ़ नहीं होता। इसी प्रकार वृत्त संस्थान से लेकर आयत संस्थान तक के विषय में समझ लेना चाहिए।

परिमंडले णं भंते! संठाणे संखिज्ज पएसिए संखिज्ज पएसोगाढे किं चरिमे, अचरिमे, चरिमाइं, अचरिमाइं, चरिमंतपएसा, अचरिमंतपएसा?

गोयमा! परिमंडले णं संठाणे संखिज्ज पएसिए संखिज्ज पएसोगाढे णो चरिमे, णो अचरिमे, णो चरिमाइं, णो अचरिमाइं, णो चरिमंतपएसा, णो अचरिमंतपएसा, णियमं अचरिमं, चरिमाणि य चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य। एवं जाव आयए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संख्यात प्रदेशी एवं संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान क्या १. चरम है, २. अचरम है, ३. बहुवचनान्त अनेक चरम रूप है, ४. अनेक अचरम रूप है, ५. चरमान्त प्रदेश है अथवा ६. अचरमान्त प्रदेश है?

उत्तर - हे गौतम! संख्यात प्रदेशी और संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान न तो १. चरम है, २. न अचरम है, ३. न बहुवचनान्त चरम है, ४. न बहुवचनान्त अचरम है, ५. न चरमान्त प्रदेश है और ६. न ही अचरमान्त प्रदेश है, किन्तु नियम से अचरम, बहुवचनान्त अनेक चरमरूप, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश है। इसी प्रकार संख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़ वृत्त संस्थान से लेकर आयत संस्थान तक के विषय में कह देना चाहिए।

परिमंडले णं भंते! संठाणे असंखिज्ज पएसिए संखिज्ज पएसोगाढे किं चरिमे अचरिमे जाव अचरिमंतपएसा?

गोयमा! असंखिज्ज पएसिए संखिज्ज पएसोगाढे जहा संखिज्ज पएसिए। एवं जाव आयए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंख्यात प्रदेशी और संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान क्या १. चरम है, २. अचरम है, ३. अनेक चरम, ४. अनेक अचरम रूप है, ५. चरमान्त प्रदेश है या ६. अचरमान्त प्रदेश है?

उत्तर - हे गौतम! असंख्यात प्रदेशी और संख्यात प्रदेशों में अवगाढ़ परिमण्डल संस्थान के विषय में संख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़ के समान समझ लेना चाहिए यावत् आयत संस्थान पर्यन्त समझ लेना चाहिए।

परिमंडले णं भंते! संठाणे असंखिज्ज पएसिए असंखिज्ज पएसोगाढे किं चरिमे अचरिमे जाव अचरिमंतपएसा?

गोयमा! संखिज्ज पएसिए असंखिज्ज पएसोगाढे णो चरिमे जहा संखिज्ज पएसोगाढे। एवं जाव आयए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंख्यात प्रदेशी और असंख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमंडल संस्थान क्या १. चरम है, २. अचरम हैं, ३. अनेक चरम रूप है, ४. अनेक अचरम रूप है, ५. चरमान्त प्रदेश है या ६. अचरमान्त प्रदेश है?

उत्तर - हे गौतम! असंख्यात प्रदेशी और असंख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमंडल संस्थान चरम नहीं है इत्यादि सारा कथन संख्यात प्रदेशावगाढ़ की तरह कह देना चाहिए। इसी प्रकार यावत् आयत संस्थान तक कह देना चाहिये।

परिमंडले णं भंते! संठाणे अणंत पएसिए संखिज्ज पएसोगाढे किं चरिमे अचरिमे जाव अचरिमंतपएसा?

गोयमा! तहेव जाव आयए। अणंत पएसिए असंखिज्ज पएसोगाढे जहा संखिज्ज पएसोगाढे, एवं आयए॥ ३६७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनन्त प्रदेशी और संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान क्या १. चरम है २. अचरम है, ३. अनेक चरम रूप है, ४. अनेक अचरम रूप है, ५. चरमान्त प्रदेश है या ६. अचरमान्त प्रदेश है?

उत्तर - हे गौतम! इसकी प्ररूपणा संख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़ के समान यावत् आयत संस्थान तक समझ लेनी चाहिये।

परिमंडलस्स णं भंते! संठाणस्स संखिज्ज पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स संखिज्ज पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, अचरिमाइं संखिज्ज गुणाइं, अचरिमं चरमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा परिमंडलस्स संठाणस्स संखिज्ज पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स चरिमंतपएसा, अचरिमंतपएसा संखिज्ज गुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया, दव्वट्ठपएसट्ठयाए सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स संखिज्ज पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं संखिज्ज गुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दोवि विसेसाहियाइं, चरिमंतपएसा संखिज्ज गुणा, अचरिमंतपएसा संखिज्ज गुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दोऽवि विसेसाहिया। एवं वट्ट तंस चउरंसायएसु वि जोएयव्वं॥ ३६८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! संख्यातप्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान के अचरम, अनेक चरम, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य प्रदेश इन दोनों की अपेक्षा से कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्य की अपेक्षा-संख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान का एक अचरम सबसे थोड़ा है, उसकी अपेक्षा अनेक चरम संख्यात गुणा अधिक हैं, अचरम और बहुवचनान्त चरम, ये दोनों मिल कर विशेषाधिक हैं। प्रदेशों की अपेक्षा-संख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान के चरमान्त प्रदेश सबसे थोड़े हैं, उनकी अपेक्षा अचरमान्त प्रदेश संख्यात गुणा अधिक हैं, उनसे चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश दोनों मिल कर विशेषाधिक हैं। द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा-संख्यात प्रदेशी-संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान का एक अचरम सबसे थोड़ा है, उसकी अपेक्षा अनेक चरम संख्यात गुणा हैं, उनसे एक अचरम और अनेक चरम ये दोनों मिल कर विशेषाधिक हैं, उनकी अपेक्षा चरमान्त प्रदेश संख्यात गुणा हैं, उनसे अचरमान्त प्रदेश संख्यात गुणा हैं, उनसे चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश ये दोनों मिल कर विशेषाधिक हैं।

इसी प्रकार की योजना वृत्त, त्र्यस्त्र, चतुरस्त्र और आयत संस्थान के चरमादि के अल्पबहुत्व के विषय में कर लेनी चाहिए।

परिमंडलस्स णं भंते! संठाणस्स असंखिज्ज पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स अचरिमस्स चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखिज्ज पएसियस्स, संखिज्ज पए-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं संखिज्ज गुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं, पएसट्ठयाए सव्वत्थोवा परिमंडलसंठाणस्स असंखिज्ज पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स चरिमंतपएसा, अचरिमंतपएसा संखिज्ज गुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया, दव्वट्ठपएसट्ठयाए-सव्वत्थोवे परिमंडलस्स संठाणस्स असंखिज्ज पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स दव्वट्ठयाए एगे अचरिमे, चरिमाइं संखिज्ज गुणाइं, अचरिमं च चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं चरिमंतपएसा संखिज्ज गुणा, अचरिमंतपएसा संखिज्ज गुणा, चरिमंतपएसा य अचरिमंतपएसा य दो वि विसेसाहिया। एवं जाव आयए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंख्यात प्रदेशी एवं संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान के अचरम, अनेक चरम, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्य की अपेक्षा-असंख्यात प्रदेशी एवं संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान का एक अचरम सबसे थोड़ा है, उसकी अपेक्षा अनेक चरम संख्यात गुणा अधिक हैं, उनसे एक अचरम और अनेक चरम, ये दोनों विशेषाधिक हैं। प्रदेशों की अपेक्षा-असंख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान के चरमान्त प्रदेश, सबसे थोड़े हैं, उनकी अपेक्षा अचरमान्त प्रदेश संख्यात गुणा हैं, उससे चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश, ये दोनों मिल कर विशेषाधिक हैं। द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा-असंख्यात प्रदेशी संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान का एक अचरम सबसे थोड़ा हैं, उसकी अपेक्षा अनेक चरम संख्यात गुणा अधिक हैं, उनसे एक अचरम और बहुत चरम ये दोनों मिल कर विशेषाधिक हैं, उनसे अचरमान्त प्रदेश संख्यात गुणा हैं, उनसे चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश, ये दोनों मिल कर विशेषाधिक हैं। इसी प्रकार आयत तक के चरमादि के अल्पबहुत्व के विषय में कथन करना चाहिए।

परिमंडलस्स णं भंते! संठाणस्स असंखिज्ज पएसियस्स असंखिज्ज पएसोगाढस्स अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! जहा रयणप्पभाए अप्पाबहुयं तहेव णिरवसेसं भाणियव्वं, एवं जाव आयए॥ ३६९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असंख्यात प्रदेशी एवं असंख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के अचरम, अनेक चरम, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से और द्रव्य एवं प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे, अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमादि का अल्पबहुत्व कहा गया है, उसी प्रकार सब कह देना चाहिए। इसी प्रकार की प्ररूपणा आयत संस्थान तक समझ लेनी चाहिए।

परिमंडलस्स णं भंते! संठाणस्स अणंत पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठपएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! जहा संखिज्ज पएसियस्स संखिज्ज पएसोगाढस्स, णवरं संकमेणं अणंत गुणा, एवं जाव आयए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनन्त प्रदेशी एवं संख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान के अचरम, अनेक चरम, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से द्रव्य की अपेक्षा, प्रदेशों की अपेक्षा एवं द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे, अल्प, बहुत, तुल्य अथवा विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे संख्यात प्रदेशावगाढ़ संख्यात प्रदेशी परिमण्डल संस्थान के चरम आदि के अल्पबहुत्व के विषय में कहा गया है, वैसे ही इसके विषय में भी कह देना चाहिए। विशेषता यह है कि संक्रमण में अनन्त गुणा हैं। इसी प्रकार वृत्त संस्थान से लेकर आयत संस्थान तक कह देना चाहिए।

परिमंडलस्स णं भंते! संठाणस्स अणंत पएसियस्स असंखिज्ज पएसोगाढस्स अचरिमस्स य चरिमाण य चरिमंतपएसाण य अचरिमंतपएसाण य जहा रयणप्पभाए, णवरं संकमेणं अणंत गुणा, एवं जाव आयए॥ ३७०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनन्त प्रदेशी एवं असंख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान के अचरम, अनेक चरम, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश में से द्रव्य की अपेक्षा से, प्रदेशों की अपेक्षा से तथा द्रव्य और प्रदेशों की अपेक्षा से कौन, किससे, अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है?

उत्तर - हे गौतम! जैसे रत्नप्रभापृथ्वी के चरम, अचरम आदि के विषय में अल्पबहुत्व कहा गया है, उसी प्रकार अनन्त प्रदेशी एवं असंख्यात प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल संस्थान के चरम, अचरम आदि के अल्पबहुत्व के विषय में समझ लेना चाहिए। विशेषता यह है कि संक्रमण में अनन्त गुणा है। इसी प्रकार वृत्त संस्थान से लेकर यावत् आयत संस्थान के चरम आदि के अल्पबहुत्व के विषय में समझ लेना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - परिमंडल आदि संस्थानों के अल्पबहुत्व-अवगाढ़ प्रदेशों की अपेक्षा से समझनी चाहिये। संख्यात प्रदेशावगाढ़ असंख्य प्रदेशी परिमंडल आदि संस्थानों में प्रति प्रदेश असंख्य प्रदेशों का संक्रमण तथा संख्यात-असंख्यात प्रदेशावगाढ़ अनंत प्रदेशी परिमंडल आदि संस्थानों में प्रति प्रदेश अनन्त प्रदेशों का संक्रमण समझना चाहिये। यहाँ पर आकाश (अवगाढ़) प्रदेशों की मुख्यता करके असंख्य प्रदेशों या अनन्त प्रदेशों को भी आकाश (अवगाढ़) प्रदेशों जितना मान लिया गया है। **'संक्रमण'** - क्षेत्र से संख्यात असंख्यात आकाश प्रदेश होने पर भी द्रव्य रूप से एक-एक आकाश प्रदेश पर असंख्य और अनन्त प्रदेशों का स्थित होना। यहाँ पर जघन्य प्रदेशावगाढ़ (बीस प्रदेश एवं बीस प्रदेशावगाढ़) परिमण्डल आदि संस्थान नहीं समझ कर तथा=प्रकार के (जिससे कि संख्यात गुणा, असंख्यात गुणा की अल्प-बहुत्व बराबर घटित हो सके ऐसे) मध्यम आदि प्रदेशावगाढ़ परिमण्डल आदि संस्थान समझ लेना चाहिए।

यहाँ पर मूल पाठ में जो **'संक्रमण'** शब्द दिया है उसका अर्थ टीकाकार ने इस प्रकार किया है - क्षेत्र के विषय में जब द्रव्य का विचार किया जाय उसको संक्रमण कहते हैं। उस संक्रमण के विषय में अनन्त गुणा कहना चाहिए। उस समय मूल पाठ इस प्रकार होगा - **"सव्वत्थोवे एगे अचरिमे, चरिमाइं खेत्तओ असंखेज्जगुणाइं, दव्वओ अणंतगुणाइं, अचरिमं चरिमाणि य दो वि विसेसाहियाइं।"**

अर्थात् - सबसे थोड़ा एक अचरम, क्षेत्र की अपेक्षा बहुत चरम असंख्यात गुणा और द्रव्य की अपेक्षा अनन्तगुणा। एक अचरम और बहुत चरम ये दोनों मिल कर विशेषाधिक हैं।

गति आदि की अपेक्षा चरम अचरम आदि वक्तव्यता

अब गति आदि ग्यारह बोलों की चरम आदि का वर्णन इस प्रकार है -

गति, स्थिति, भव, भाषा, आण-प्राण (श्वासोच्छ्वास) आहार, भाव, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श ये ग्यारह बोल हैं। इन ग्यारह बोलों के द्वारा नैरयिक आदि चौबीस दण्डकों पर चरम अचरम आदि की अपेक्षा से विचार किया जायेगा।

नोट - जहाँ पर **चरिमे, अचरिमे, णेरइए, वेमाणिए** शब्द आता है वहाँ पर एक वचन सम्बन्धी प्रश्न और उत्तर हैं। जहाँ पर **णेरइया, वेमाणिया, चरिमा, अचरिमा** शब्द आता है वहाँ बहुवचन सम्बन्धी प्रश्नोत्तर हैं ऐसा समझना चाहिए।

एक वचन के उत्तर में **"सिय चरिमे सिय अचरिमे"** ऐसा पाठ है। **"सिय"** शब्द का अर्थ है कदाचित्। एक वचन आश्रयी चौबीस ही दण्डक का एक जीव कभी चरम और कभी अचरम मिल सकता है और कभी नहीं भी मिल सकता है। निष्कर्ष यह है कि यह बोल अशाश्वत है।

बहुवचन के उत्तर में **"चरिमा वि, अचरिमा वि"** ऐसा पाठ है। जिसका अर्थ है चौबीस ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दण्डकों में से प्रत्येक दण्डक के बहुत जीव सदा चरम भी मिलते हैं और अचरम भी मिलते हैं। इसलिए बहुवचन सम्बन्धी उत्तर का बोल शाश्वत है। चारों गति के विरह काल में भी चरम, अचरम बहुत जीव मिलते ही हैं। इसीलिए यह बोल शाश्वत है।

आगे गति चरम, स्थिति चरम आदि ग्यारह बोलों से विचारणा की गयी है। उसको इस प्रकार समझना चाहिए कि जो जीव नरक आदि गति में नहीं जायेगा और वहाँ जाकर भाषा नहीं बोलेगा आहार आदि नहीं करेगा किन्तु उस गति और उस भव में रहते हुए अनेकों बार भाषा बोलते हुए भी भाषा चरम और आहार करते हुए भी आहार चरम आदि कहा जा सकता है। ऐसे ही सभी चरमों में उन उन दण्डकों में भी समझ लेना चाहिए।

कहीं कहीं ऐसी व्याख्या मिलती है कि जो नरकादिपने अन्तिम बार भाषा बोल रहा है या बोल रहे हैं। वे भाषा चरम हैं। किन्तु यह व्याख्या करना उचित नहीं है क्योंकि ऐसी व्याख्या करने पर तो बहुवचन के प्रश्नों के उत्तर में जो आहार चरम, भाषा चरम आदि को शाश्वत बताया है वह घटित नहीं हो सकेगा। अतः उपर्युक्त पहली व्याख्या करना ही आगमानुकूल है, अतएव उचित है।

जो जीव जिस गति का चरम बन गया है उस गति में होने वाली स्थिति, भव आदि ग्यारह ही बोलों का चरम समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार भव, भाषा आदि के लिए भी समझ लेना चाहिए कि वह आगे आगे के सभी बोलों का चरम बन गया है। परन्तु स्थिति के विषय में दो विचार धाराएं हैं यथा- जो जिस स्थिति का चरम बना है वह वापिस उस गति में तो जा सकता है किन्तु उस स्थिति को प्राप्त नहीं करेगा जैसे कि कोई नैरयिक नरक में दस सागरोपम की स्थिति में गया था वह वापिस नरक गति में तो जा सकता है किन्तु वह दस सागरोपम की स्थिति को प्राप्त नहीं करेगा किन्तु दस सागरोपम से कम या ज्यादा स्थिति प्राप्त कर सकता है। दूसरी विचार धारा यह है कि वह उस गति सम्बन्धी सभी स्थिति का चरम बन गया है अर्थात् नरक गति की दस हजार वर्ष की स्थिति से लेकर तेतीस सागरोपम की स्थिति तक सभी स्थितियों को प्राप्त नहीं करेगा। निष्कर्ष यह है कि वह वापिस नरक गति में जायेगा ही नहीं तो फिर स्थिति प्राप्त करने का तो प्रश्न रहता ही नहीं है। इन दोनों मान्यताओं में से कौनसी ठीक है यह तत्त्व तो केवली गम्य है।

१. गति चरम-अचरम

जीवे णं भंते! गइ चरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव गति चरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम है?

उत्तर - हे गौतम! जीव गति चरम की अपेक्षा से कदाचित् कोई चरम है, कदाचित् कोई अचरम है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइए णं भंते! गइ चरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक जीव गति चरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीव गति चरम की अपेक्षा से कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है। इसी प्रकार एक असुरकुमार से लेकर लगातार एक वैमानिक देव तक जानना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में गति की अपेक्षा चरम-अचरम का निरूपण किया गया है। गति पर्याय रूप चरम को गति चरम कहते हैं। प्रश्न के समय जो जीव मनुष्य गति में विद्यमान है और उसके पश्चात् फिर कभी किसी गति में उत्पन्न नहीं होगा, अपितु मुक्ति प्राप्त कर लेगा, इस प्रकार उस जीव की वह मनुष्य गति चरम अर्थात् अन्तिम है, वह गति चरम है, जो जीव पृच्छाकालिक (प्रश्न करते समय) गति के पश्चात् पुनः किसी गति में उत्पन्न होगा, वही गति जिसकी अन्तिम नहीं है, वह गति-अचरम है। सामान्यतया गति चरम मनुष्य ही हो सकता है, क्योंकि मनुष्य गति से ही मुक्ति प्राप्त होती है। इस अपेक्षा से तद्भवमोक्षगामी जीव गतिचरम है, शेष गति-अचरम हैं। विशेष की अपेक्षा से विचार किया जाय तो जो जीव जिस गति में अन्तिम बार है, वह उस गति की अपेक्षा से गति चरम है। जैसे - प्रश्न करते समय समय कोई जीव नरक गति में विद्यमान है, किन्तु नरक से निकलने के बाद फिर वह कभी भी नरकगति में उत्पन्न नहीं होगा, उसे विशेष अपेक्षा से 'नरकगति चरम' कहा जा सकता है, किन्तु सामान्यतया उसे 'गति चरम' नहीं कहा जा सकता, क्योंकि नरक गति से निकलने पर उसे दूसरी गति में जन्म लेना ही पड़ेगा। अतएव सामान्य गति चरम मनुष्य ही होता है। सामान्य जीव विषयक जो गति चरम सूत्र है, वहाँ सामान्य दृष्टि से मनुष्य को ही कदाचित् गति चरम समझना चाहिए। परन्तु यहाँ आगे के जितने भी सूत्र हैं, वे विशेष दृष्टि को लेकर हैं, इसलिए गति चरम का अर्थ हुआ - जो जीव जिस गति पर्याय से निकल कर पुनः उसमें उत्पन्न नहीं होगा, वह उस गति की अपेक्षा से गति चरम है और जो जीव पुनः उस गति में उत्पन्न होगा, वह उस गति की अपेक्षा से गति अचरम है।

णेरइया णं भंते! गइचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक जीव गति चरम की अपेक्षा से चरम हैं अथवा अचरम हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक जीव गति चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। इसी प्रकार लगातार अनेक वैमानिक देवों तक कह देना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२. स्थिति चरम-अचरम

णेरइए णं भंते! ठिईचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! एक नैरयिक जीव स्थितिचरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक जीव स्थिति चरम की अपेक्षा से कदाचित् चरम है, कदाचित् अचरम है। लगातार एक वैमानिक देव पर्यन्त इसी प्रकार कथन करना चाहिए। अर्थात् चौबीस ही दण्डक के जीवों में एक वचन की अपेक्षा से इसी प्रकार का प्रश्न और उत्तर समझ लेना चाहिए।

णेरइया णं भंते! ठिईचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक जीव स्थिति चरम की अपेक्षा से चरम हैं अथवा अचरम हैं?

उत्तर - हे गौतम! स्थिति चरम की अपेक्षा अनेक नैरयिक जीव चरम भी हैं और अचरम भी हैं। लगातार अनेक वैमानिक देवों तक इसी प्रकार की प्ररूपणा करनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में स्थिति की अपेक्षा चरम-अचरम का निरूपण किया गया है। स्थिति पर्याय रूप चरम को स्थिति चरम कहते हैं। जो नैरयिक जीव पृच्छा के समय जिस स्थिति आयु का अनुभव कर रहा है, वह स्थिति अगर उसकी अन्तिम है, फिर कभी उसे वह स्थिति प्राप्त नहीं होगी तो वह नैरयिक स्थिति की अपेक्षा चरम कहलाता है। यदि भविष्य में फिर कभी उसे उस स्थिति का अनुभव करना पड़ेगा, तो वह स्थिति उसके लिये अचरम है।

३. भव चरम-अचरम

णेरइए णं भंते! भव चरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक भव चरम की अपेक्षा चरम है या अचरम ?

उत्तर - हे गौतम! भव चरम की अपेक्षा से एक नैरयिक कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है। इसी प्रकार एक वैमानिक तक इसी प्रकार कहना चाहिए।

णेरइया णं भंते! भवचरिमेणं कि चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक भव चरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक जीव भव चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। लगातार अनेक वैमानिक देवों तक इसी प्रकार समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भव की अपेक्षा चरम और अचरम का निरूपण किया गया है। भव पर्याय रूप चरम भव चरम है। अर्थात्-पृच्छा काल में जिस नैरयिक आदि जीव का वह वर्तमान भव अन्तिम है, वह भव चरम है और जिसका वह भव अन्तिम नहीं है, वह भव अचरम है। बहुत-से नैरयिक जीव ऐसे भी हैं, जो वर्तमान नैरयिक भव के पश्चात् पुनः नैरयिक भव में उत्पन्न नहीं होंगे, वे नैरयिक भव की अपेक्षा भव चरम हैं, किन्तु जो नैरयिक भविष्य में पुनः नैरयिक भव में उत्पन्न होंगे, वे भव अचरम हैं। नैरयिक एवं देवों के १४ दण्डकों में गति चरम और भव चरम का आशय एक समान समझना चाहिये।

४. भाषा चरम-अचरम

णेरइए णं भंते! भासाचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाषा चरम की अपेक्षा से एक नैरयिक जीव चरम है या अचरम?

उत्तर - हे गौतम! भाषा चरम की अपेक्षा से एक नैरयिक जीव कदाचित् चरम है तथा कदाचित् अचरम है। इसी तरह लगातार एक वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

णेरइया णं भंते! भासाचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि, एवं जाव एगिंदियवज्जा णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाषा चरम की अपेक्षा से अनेक नैरयिक चरम हैं अथवा अचरम हैं?

उत्तर - हे गौतम! वे भाषा चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। एकेन्द्रिय जीवों को छोड़कर वैमानिक देवों तक लगातार इसी प्रकार कथन करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भाषा की अपेक्षा चरम और अचरम का निरूपण किया गया है। जो जीव भाषा की अपेक्षा से चरम हैं, अर्थात् - जिन्हें यह भाषा अन्तिम रूप में मिली है, फिर कभी नहीं मिलेगी, वे भाषा-चरम हैं, जिन्हें फिर भाषा प्राप्त होगी, वे भाषा-अचरम हैं। एकेन्द्रिय जीव भाषा रहित होते हैं, क्योंकि उन्हें जिह्वेन्द्रिय प्राप्त नहीं होती, इसलिए वे भाषा-चरम या भाषा-अचरम की कोटि में परिगणित नहीं होते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. आनापान चरम-अचरम

णेरइए णं भंते! आणापाणु चरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक आनापान (श्वासोच्छ्वास) चरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम ?

उत्तर - हे गौतम! आनापान चरम की अपेक्षा से एक नैरयिक जीव कदाचित् चरम है, कदाचित् अचरम है। इसी प्रकार लगातार एक वैमानिक पर्यन्त प्ररूपणा करनी चाहिए।

णेरइया णं भंते! आणापाणु चरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक जीव आनापान चरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम?

उत्तर - हे गौतम! आनापान चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। इसी प्रकार अविच्छिन्न रूप से अनेक वैमानिक देवों तक प्ररूपणा करनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आणु पाणु की अपेक्षा चरम और अचरम का निरूपण किया गया है। आन प्राण पर्याय रूप चरम आन प्राण चरम कहलाता है। पृच्छा के समय जो जीव उस भव में अन्तिम श्वासोच्छ्वास ले रहा होता है, उसके बाद उस भव में फिर श्वासोच्छ्वास नहीं लेगा, वह श्वासोच्छ्वास चरम है, उससे भिन्न जो हैं, वे श्वासोच्छ्वास-अचरम हैं।

६. आहार चरम-अचरम

णेरइए णं भंते! आहारचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आहार चरम की अपेक्षा से एक नैरयिक जीव चरम है अथवा अचरम?

उत्तर - हे गौतम! आहार चरम की अपेक्षा से नैरयिक जीव कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है। लगातार एक वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार कहना चाहिए।

णेरइया णं भंते! आहारचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि, एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! अनेक नैरयिक आहार चरम की अपेक्षा से चरम हैं अथवा अचरम हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक आहार चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। वैमानिक देवों तक निरन्तर इसी प्रकार प्ररूपणा करनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में आहार की अपेक्षा चरम और अचरम का निरूपण किया गया है। आहार पर्याय रूप चरम को आहार चरम कहते हैं। सामान्यतया आहार चरम युक्त मनुष्य होते हैं। विशेषतया उस गति या भव की दृष्टि से जो अन्तिम आहार ले रहा हो, वह उस गति या भव की अपेक्षा आहार चरम है, जो उससे भिन्न हो, वह आहार अचरम है।

७. भाव चरम-अचरम

णेरइए णं भंते! भावचरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक जीव भाव चरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम ?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक जीव भाव चरम की अपेक्षा से कदाचित् चरम और कदाचित् अचरम है। इसी प्रकार लगातार एक वैमानिक पर्यन्त कथन करना चाहिए।

णेरइया णं भंते! भावचरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! अनेक नैरयिक जीव भाव चरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक जीव भाव चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। इसी प्रकार लगातार अनेक वैमानिक देवों तक प्रतिपादन करना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भाव की अपेक्षा से चरम और अचरम का निरूपण किया गया है। औदयिक आदि पांच भावों के अर्थ में यहाँ भाव शब्द है। औदयिक आदि भावों में से कोई भाव जिस जीव के लिए अन्तिम हो, फिर कभी अथवा वर्त्तमान गति में फिर कभी वह भाव प्राप्त नहीं होगा, तब उस जीव को भाव चरम कहा जायेगा, इसके विपरीत भाव अचरम है।

८-११. वर्णादि चरम-अचरम

णेरइए णं भंते! वण्ण चरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक वर्ण चरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक वर्ण चरम की अपेक्षा से कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है। इसी प्रकार निरन्तर एक वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिए।

णेरइया णं भंते! वण्ण चरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ-प्रश्न-हे भगवन्! अनेक नैरयिक जीव वर्ण चरम की अपेक्षा से चरम हैं या अचरम हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक जीव वर्ण चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। इसी प्रकार लगातार अनेक वैमानिक देवों तक कथन करना चाहिए।

णेरइए णं भंते! गंध चरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक गन्ध चरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम है?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक गन्ध चरम की अपेक्षा से कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है। लगातार एक वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार प्ररूपणा करनी चाहिए।

णेरइया णं भंते! गंध चरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! गन्ध चरम की अपेक्षा से अनेक नैरयिक जीव चरम हैं अथवा अचरम हैं?

उत्तर - हे गौतम! अनेक नैरयिक जीव गन्ध चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। इसी प्रकार लगातार वैमानिक देवों तक प्ररूपणा करनी चाहिए।

णेरइए णं भंते! रस चरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ-प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक जीव रस चरम की अपेक्षा से चरम है या अचरम है?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक जीव रस चरम की अपेक्षा से कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है। निरन्तर एक वैमानिक पर्यन्त इसी प्रकार प्रतिपादन करना चाहिए।

णेरइया णं भंते! रस चरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक रस चरम की अपेक्षा से चरम हैं अथवा अचरम?

उत्तर - हे गौतम! वे रस चरम की अपेक्षा से चरम भी हैं और अचरम भी हैं। इसी प्रकार लगातार वैमानिक देवों तक कहना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेरइए णं भंते! फास चरिमेणं किं चरिमे अचरिमे?

गोयमा! सिय चरिमे, सिय अचरिमे। एवं णिरंतरं जाव वेमाणिए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! एक नैरयिक जीव स्पर्श चरम की अपेक्षा से चरम है अथवा अचरम है?

उत्तर - हे गौतम! एक नैरयिक स्पर्श चरम की अपेक्षा से कदाचित् चरम है और कदाचित् अचरम है। इसी प्रकार लगातार एक वैमानिक देव तक कह देना चाहिए।

णेरइया णं भंते! फास चरिमेणं किं चरिमा अचरिमा?

गोयमा! चरिमा वि अचरिमा वि। एवं णिरंतरं जीव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनेक नैरयिक जीव स्पर्श चरम की अपेक्षा से चरम हैं अथवा अचरम हैं?

उत्तर - हे गौतम! स्पर्श चरम की अपेक्षा से अनेक नैरयिक जीव चरम भी हैं और अचरम भी हैं। इसी प्रकार की प्ररूपणा लगातार अनेक वैमानिक देवों तक करनी चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वर्ण आदि की अपेक्षा चरम-अचरम का निरूपण किया गया है। जिस जीव के लिए वर्ण, गन्ध, रस या स्पर्श अन्तिम हो, फिर उसे प्राप्त न हो, वह वर्णादि-चरम है, जिसे पुनः वर्णादि प्राप्त हो रहे हैं, होंगे भी, वह वर्णादि-अचरम है।

संगहणी गाहा-

"गइ ठिइ भवे य भासा आणापाणु चरिमे य बोद्धव्वा।
आहार भाव चरिमे वण्णरसे गंधफासे य"॥ ३७१ ॥

संग्रहणी गाथा का अर्थ - १. गति २. स्थिति ३. भव ४. भाषा ५. आनापान (श्वासोच्छ्वास) ६. आहार ७. भाव ८. वर्ण ९. गन्ध १०. रस और ११. स्पर्श, इन ग्यारह द्वारों की अपेक्षा से जीवों की चरम-अचरम प्ररूपणा समझनी चाहिए।

विवेचन - उपरोक्त ग्यारह द्वारों के माध्यम से एक वचन और बहुवचन के रूप में नैरयिकों से लेकर वैमानिकों तक के चरम-अचरम विषयक प्रश्नों के उत्तर एक सरीखे हैं। एकवचनात्मक नैरयिक जीव कदाचित् चरम है, कदाचित् अचरम है, अर्थात् कोई नैरयिक आदि चरम होता है, कोई अचरम। इसी प्रकार बहुवचनात्मक नैरयिक जीव चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

॥ पण्णवणाए भगवईए दसमं चरमपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना भगवती सूत्र का दसवाँ चरम पद समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक्कारसमं भासापयं

ग्यारहवां भाषा पद

उक्खेवो - (उत्क्षेप-उत्थानिका) अवतरणिका - पण्णवणा (प्रज्ञापना) सूत्र के ग्यारहवें पद का नाम भाषा पद है। संसारी जीव जो भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हो चुके हैं। उन जीवों को अपने मन के भाव प्रकट करने के लिए भाषा (वचन) एक मुख्य साधन है। इसके बिना परस्पर विचारों का आदान प्रदान (लेना और देना) नहीं हो सकता है। इसी प्रकार व्यावहारिक और शास्त्रीय अध्ययन (पठन-पाठन) तथा ज्ञान उपार्जन करने में कठिनाई होती है। अपने मनोगत भावों को प्रकट करने के लिए भाषा (वचन) बहुत बड़ा साधन है। इससे कर्म-बन्धन और कर्म क्षय दोनों ही हो सकते हैं। जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा की आराधना और विराधना भी हो सकती है। इस कारण से शास्त्रकार ने भाषा पद की रचना की है। इसमें भाषा का लक्षण, भेद, भाषा, वर्गणा, स्त्री, पुरुष, नपुंसक लिङ्ग सम्बन्धी वचन आदि बातों का विस्तार पूर्वक विचार किया गया है तथा आदि द्वार, उत्पत्ति द्वार, संस्थान द्वार आदि अठारह द्वारों से भाषा का सूक्ष्म विवेचन किया गया है। जो आगे मूल पाठ से स्पष्ट हो जायेगा।

प्रज्ञापना सूत्र के दसवें पद में रत्नप्रभा आदि चौबीस दण्डक के जीवों के चरम और अचरम विभाग का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्यारहवें पद में भाषा पर्याप्ति के पर्याप्तक जीवों के सत्य आदि भाषा के भेद बताये गये हैं। इसका प्रथम सूत्र है-

चार प्रकार की भाषा

से णूणं भंते! मण्णामीति ओहारिणी भासा, चिंतेमीति ओहारिणी भासा, अह मण्णामीति ओहारिणी भासा, अह चिंतेमीति ओहारिणी भासा, तह मण्णामीति ओहारिणी भासा, तह चिंतेमीति ओहारिणी भासा?

हंता गोयमा! मण्णामीति ओहारिणी भासा, चिंतेमीति ओहारिणी भासा, अह मण्णामीति ओहारिणी भासा, अह चिंतेमीति ओहारिणी भासा, तह मण्णामीति ओहारिणी भासा, तह चिंतेमीति ओहारिणी भासा॥ ३७२॥

कठिन शब्दार्थ - णूणं - निश्चय, **मण्णामि** - मानता हूँ, **ओहारिणी** - अवधारिणी-अर्थ का बोध कराने वाली, **भासा** - भाषा, **अह** - यथा, **तह** - तथा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मैं ऐसा मानता हूँ कि भाषा अवधारिणी-अर्थ का बोध कराने वाली है। मैं ऐसा चिन्तन करता हूँ-विचार करता हूँ कि भाषा अवधारिणी है। हे भगवन्! क्या मैं ऐसा मानूं कि भाषा अवधारिणी है? क्या मैं ऐसा चिंतन करूँ कि भाषा अवधारिणी है? मैं उसी प्रकार ऐसा मानूं कि भाषा अवधारिणी है? तथा मैं उसी प्रकार ऐसा चिंतन करूँ कि भाषा अवधारिणी है?

उत्तर - हाँ गौतम! तुम मानते हो कि भाषा अवधारिणी है, तुम चिन्तन करते हो कि भाषा अवधारिणी है। तुम मानो कि भाषा अवधारिणी है, तुम चिन्तन करो कि भाषा अवधारिणी है। तुम उसी प्रकार मानो कि भाषा अवधारिणी है तथा उसी प्रकार चिन्तन करो कि भाषा अवधारिणी है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में श्री गौतम स्वामी ने भाषा की अवधारिणियता के विषय में अपने मन्तव्य की सत्यता का भगवान् महावीर स्वामी से निर्णय कराया है।

"**भासा**" यह अर्धमागधी भाषा का शब्द है जिसकी संस्कृत छाया "भाषा" होती है। जिसका व्युत्पत्ति अर्थ इस प्रकार है - "**भाष व्यक्तायां वाचि**" स्पष्ट बोलने अर्थ में भाषा शब्द का प्रयोग होता है। **भाष्यते पोच्यते इति भाषा**। जिसके द्वारा पदार्थों का स्पष्ट बोध हो उसे भाषा कहते हैं। भाषा शब्द के पर्यायवाची (एकार्थक) शब्द अभिधान राजेन्द्र कोष में इस प्रकार दिये हैं -

वक्कं वयणं च गिरा, सरस्सई भारही य गो वाणी।

भासा पन्नवणी दे-सणी य वयजोग जोगे य॥

अर्थ - वाक्यं वचनं च गीः सरस्वती भारती च गौर्वाक् भाषा प्रज्ञपनी देशनी च वाग्योगो योगश्च।

अर्थात् - वाक्य, वचन, गिर, सरस्वती, भारती, गो, वाक्, भाषा, प्रज्ञापनी, देशनी, वचन योग और योग। ये सब एकार्थक शब्द हैं अर्थात् भाषा शब्द के पर्यायवाची शब्द हैं।

मूल में "**से**" शब्द दिया है जिसका मुख्य अर्थ तो यह होता है - 'वह'। किन्तु यहाँ पर 'से' शब्द का अर्थ है 'अथ'। अथ शब्द का अर्थ इस प्रकार किया गया है-

अथ प्रक्रिया प्रश्नान्तरर्यमङ्गलोपन्यासप्रतिवचनसमुच्चयेषु।

अर्थ - प्रक्रिया प्रश्न, अनन्तर, मंगल, उपन्यास, प्रतिवचन और समुच्चय इतने अर्थों में 'अथ' शब्द का प्रयोग होता है।

'ओहारिणी' अवधारिणी - अवधार्यते - अवगम्यते अर्थो अनया इति अवधारिणी। अवबोधबीज भूता इत्यर्थः, भाष्यते इति भाषा, तद् योग्यतया परिणामित निसृज्यमान द्रव्य संहतिः, एष पदार्थः।

अर्थ - जिससे पदार्थों का ज्ञान हो अर्थात् ज्ञान की मूलभूत भाषा को अवधारिणी भाषा कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो बोली जाती हो उसे भाषा कहते हैं। भाषा वर्गणा के योग्य पुद्गलों को लेकर एवं उनको भाषा रूप में परिणत करके छोड़ना, ऐसे द्रव्य समूह को भाषा कहते हैं।

नोट - संस्कृत में तीन प्रकार '**स**' होते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं - **श**=तालव्य, क्योंकि इसको बोलते समय जीभ तालु की तरफ लगती है, तालु की तरफ खींचती है। **ष**=मूर्धन्य-मूर्धा का अर्थ है मस्तक। इस 'ष' को बोलते समय जीभ ऊपर मस्तक की तरफ खींचती है। इसलिए इसको मूर्धन्य कहते हैं। **स**=दन्त्य-इसको बोलते समय जीभ दांतों पर लगती है इसलिए इसको दन्त्य कहते हैं। संस्कृत की तरह हिन्दी में भी यह 'स' तीन प्रकार का होता है उनके नाम इस प्रकार हैं - 'श'-तालवी, ष-मूर्धनी, स-दन्ती।

अर्धमागधी और प्राकृत में एक ही प्रकार का 'स' होता है। यथा - 'स' अतएव अर्धमागधी भाषा का शब्द है-"भासा"। इसकी संस्कृत छाया होती है भाषा। इस प्रकार अर्धमागधी भाषा की संस्कृत छाया करते समय यथा योग्य ध्यान रखना पड़ता है। अतएव अर्धमागधी भाषा को समझने के लिए संस्कृत इसकी सहायक है अतः आवश्यक है।

गौतम स्वामी ने भाषा विषयक जो छह प्रश्न पूछे हैं भगवान् ने उन्हीं छह वाक्यों को वाधिस दोहराते हुए इस प्रकार उत्तर दिया-हाँ गौतम! तुम्हारा मनन और चिंतन सही है। तुम मानते हो तथा युक्ति पूर्वक सोचते हो कि भाषा अवधारिणी है यह मैं भी अपने केवलज्ञान से जानता हूँ। इसके पश्चात् भी तुम यह मानो कि भाषा अवधारिणी है, तुम निःसंदेह होकर चिंतन करो कि भाषा अवधारिणी है। यानी तुम्हारी मान्यता यथार्थ और निर्दोष है अतः तुमने पहले जैसा माना और सोचा था उसी प्रकार मानो और सोचो कि भाषा अवधारिणी है। यह निर्णय हो जाने के बाद कि "भाषा अवधारिणी है" - यह भाषा सत्य है या असत्य आदि का निर्णय करने के लिए आगे पूछते हैं कि -

ओहारिणी णं भंते! भासा किं सच्चा, मोसा, सच्चामोसा, असच्चामोसा?

गोयमा! सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अवधारिणी - अर्थ का बोध कराने वाली भाषा क्या सत्य, मृषा, सत्यमृषा या असत्यामृषा है?

उत्तर - हे गौतम! अवधारिणी भाषा कदाचित् सत्य होती है, कदाचित् मृषा होती है, कदाचित् सत्यमृषा होती है और कदाचित् असत्यामृषा होती है।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'ओहारिणी णं भासा सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा'?

गोयमा! आराहिणी सच्चा, विराहिणी मोसा, आराहणविराहिणी सच्चामोसा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जा णेव आराहणी णेव विराहिणी णेवाराहणविराहिणी सा असच्चामोसा णामं चउत्थी भासा, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'ओहारिणी णं भासा सिय सच्चा, सिय मोसा, सिय सच्चामोसा, सिय असच्चामोसा॥ ३७३॥'

कठिन शब्दार्थ - **आराहिणी** - आराधिनी, **विराहिणी** - विराधिनी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि अवधारिणी भाषा कदाचित् सत्य, कदाचित् मृषा, कदाचित् सत्यमृषा और कदाचित् असत्यामृषा होती है?

उत्तर - हे गौतम! जो आराधिनी भाषा है वह सत्य है, जो विराधिनी भाषा है वह मृषा है। जो आराधनीविराधनी है वह सत्यमृषा है और जो न आराधनी है न विराधनी है और न आराधनी-विराधनी भाषा है वह असत्यामृषा है। हे गौतम! इस कारण से मैं ऐसा कहता हूँ कि अवधारिणी भाषा कदाचित् सत्य, कदाचित् मृषा, कदाचित् सत्यमृषा और कदाचित् असत्यमृषा होती है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में अवधारिणी भाषा के चार भेद किये गये हैं -

१. सत्य भाषा - सत्-सत्पुरुषों-मुनियों या शिष्टजनों के लिए जो हितकारक हो अथवा इहलोक परलोक की आराधना करने में सहायक होने से जो मुक्ति प्राप्त कराने वाली है वह सत्य भाषा है।

२. मृषा भाषा - सत्य भाषा से विपरीत स्वरूप वाली भाषा मृषा भाषा है अर्थात् झूठ भाषा है।

३. सत्यामृषा भाषा - जिस भाषा में सत्य और असत्य दोनों मिश्रित हो अर्थात् जिसमें कुछ अंश सत्य हो और कुछ अंश असत्य हो, ऐसी मिश्रभाषा, सत्यामृषा कहलाती है।

४. असत्यामृषा भाषा - ऐसी भाषा जो न तो सत्य है न असत्य है और न सत्यामृषा है। यानी जिसमें इन तीनों भाषा में से किसी भाषा का लक्षण घटित न हो वह असत्यामृषा कहलाती है। इस भाषा का विषय आमंत्रण करना या आज्ञा देना आदि है। कहा है -

सच्चा हिया सयामिह संतो मुणयो गुणा पयत्था वा।
तव्विवरीया मोसा मीसा जा तदुभय सहावा॥
अणहिगया तीसु वि सद्दो च्चिय केवलो असच्चमुसा॥

प्रश्न - आराधनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर - **'आराध्यते मोक्षमार्गोऽनया'** - जिसके द्वारा सम्यग्-दर्शन आदि मोक्षमार्ग का आराधन होता है ऐसी भाषा आराधनी कहलाती है और आराधनी होने से वह सत्यभाषा कहलाती है।

प्रश्न - विराधनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर - **'विराध्यते मुक्तिमार्गोऽनया'** - जिसके द्वारा मुक्ति मार्ग की विराधना होती हो अर्थात् सम्यग्-दर्शन आदि मोक्षमार्ग के प्रतिकूल भाषा मृषा भाषा कहलाती है। विवाद के विषय में वस्तु का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थापन करवाने के आशय से सर्वज्ञ के मत से प्रतिकूल रूप से जो बोली जाती है जैसे कि - 'आत्मा नहीं है' अथवा 'वह एकान्त नित्य है' इत्यादि असत्य भाषा है तथा सत्य होते हुए भी दूसरों को पीड़ा उत्पन्न करने वाली विपरीत वस्तु के कथन से दूसरों को पीड़ा पहुँचाने का हेतु होने से या मुक्ति मार्ग की विराधना करने वाली होने से विराधनी और विराधक भाव वाली होने से मृषाभाषा कहलाती है।

प्रश्न - आराधनी-विराधनी सत्यामृषा भाषा कैसे कहलाती है?

उत्तर - जो आराधनी-विराधनी उभय रूप हो वह सत्यामृषा यानी जो भाषा आंशिक रूप से आराधनी और आंशिक रूप से विराधनी हो वह आराधनी-विराधनी कहलाती है। जैसे - किसी गांव या नगर में पांच बालकों का जन्म हुआ और यदि यह कहा जाय कि इस गांव या नगर में दस बालकों का जन्म हुआ है। वह स्थूल व्यवहार नय के मत से आराधनी-विराधनी भाषा कहलाती है क्योंकि पांच बालकों का जन्म हुआ है उतने अंशों में यथार्थता होने से आराधनी और दस पूरे नहीं होने से इतने अंश में अयथार्थता का संभव होने से विराधनी होती है। इस प्रकार आराधनी-विराधनी दोनों होने से सत्यमृषा कहलाती है।

प्रश्न - जो आराधनी न हो विराधनी भी न हो और उभय रूप भी न हो ऐसी भाषा कौनसी होती है?

उत्तर - जिसमें आराधनी के लक्षण नहीं होने से आराधनी नहीं है तथा जो विपरीत वस्तु के कथन के अभाव और परपीड़ा का हेतु नहीं होने से विराधनी भी नहीं है तथा जो अमुक अंश में संवाद-यथार्थता और अमुक अंश में विसंवाद-अयथार्थता के अभाव से आराधनी विराधनी भी न हो ऐसी भाषा असत्यामृषा समझनी चाहिए। जैसे-हे साधु! प्रतिक्रमण करो। स्थण्डिल का प्रतिलेखन करो। आदि व्यवहार साधक आमंत्रणी आदि भेद वाली असत्यामृषा नामक चौथी भाषा है।

प्रज्ञापनी भाषा

अह भंते! गाओ मिया पसू पक्खी, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! जा य गाओ मिया पसू पक्खी, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ३७४॥

कठिन शब्दार्थ - गाओ - गाय, **मिया** - मृग, **पसू** - पशु, **पक्खी** - पक्षी, **पण्णवणी** - प्रज्ञापनी - अर्थ का प्रतिपादन करने वाली।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या गाय, मृग, पशु और पक्षी यह भाषा प्रज्ञापनी (अर्थ का प्रतिपादन करने वाली) है? और यह भाषा मृषा (असत्य) नहीं है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! गाय, मृग, पशु और पक्षी यह भाषा प्रज्ञापनी है। किन्तु यह भाषा मृषा नहीं है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में प्रज्ञापनी भाषा का प्रतिपादन किया गया है। प्रज्ञापनी भाषा का अर्थ है - जिसमें अर्थ (पदार्थ) का प्रतिपादन (प्ररूपण) किया जाय उसे प्रज्ञापनी भाषा कहते हैं।

उपर्युक्त सूत्र में गाय आदि शब्द जाति वाचक हैं। जैसे गाय कहने से गो जाति का बोध होता है और जाति में स्त्री, पुरुष और नपुंसक तीनों लिंगों वाले आ जाते हैं। इसलिए गाय आदि शब्द तीन लिंगी होते हुए भी इस प्रकार एक लिंग में उच्चारण की जाने वाली भाषा पदार्थ का कथन करने के लिए प्रयुक्त होने से प्रज्ञापनी है तथा यह यथार्थ वस्तु का कथन करने वाली होने से सत्य है क्योंकि शब्द चाहे किसी भी लिंग का हो, यदि वह जातिवाचक है तो देश काल और प्रसंग के अनुसार उस जाति के अन्तर्गत वह तीनों लिंगों वाले अर्थों का बोधक होता है। यह भाषा न तो परपीड़ा जनक है और न किसी को धोखा देने आदि उद्देश्य से बोली जाती है। इसलिए यह प्रज्ञापनी भाषा असत्य नहीं है।

अह भंते! जा य इत्थीवऊ, जा य पुमवऊ, जा य णपुंसगवऊ, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! जा य इत्थीवऊ, जा य पुमवऊ, जा य णपुंसगवऊ पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ३७५॥

कठिन शब्दार्थ - **इत्थीवऊ** - स्त्रीवाक्-स्त्रीलिंगवाची, **पुमवऊ** - पुंवाक्-पुरुषलिंगवाची, **णपुंसगवऊ** - नपुंसकवाक्-नपुंसक लिंगवाची।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! क्या जो स्त्रीवाक् (स्त्रीलिंगवाची), पुंवाक् (पुरुषलिंगवाची), नपुंसकवाक् (नपुंसकलिंगवाची) यह भाषा प्रज्ञापनी है? यह भाषा मृषा-असत्य नहीं है?

उत्तर - हे गौतम! स्त्रीलिंगवाचक, पुरुषलिंगवाचक और नपुंसकलिंग वाचक यह भाषा प्रज्ञापनी (अर्थ का प्रतिपादन करने वाली) है। यह भाषा असत्य नहीं है।

विवेचन - शाला, माला आदि स्त्री लिङ्ग वाचक भाषा है। घट, पट आदि पुल्लिङ्ग-पुरुषलिङ्गवाचक भाषा है तथा धनम् वनम् आदि नपुंसकलिङ्गवाचक भाषा है परन्तु इन शब्दों से स्त्रीत्व, पुरुषत्व या नपुंसकत्व के लक्षण घटित नहीं होते हैं ऐसी स्थिति में किसी शब्द को स्त्रीलिंग, किसी को पुरुषलिंग और किसी को नपुंसकलिंग कहना क्या प्रज्ञापनी भाषा है?

भगवान् ने इसका उत्तर हाँ में दिया है। किसी भी शब्द का प्रयोग किया जाता है तो वह शब्द स्त्री, पुरुष या नपुंसक के लक्षणों का वाचक नहीं होता? विभिन्न लिंगों वाले शब्दों के लिंगों की व्यवस्था शब्दानुशासन (व्याकरण) या गुरु की उपदेश परम्परा से होती है। इस प्रकार शाब्दिक व्यवहार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की अपेक्षा यथार्थ वस्तु का प्रतिपादन करने के कारण यह भाषा प्रज्ञापनी है। इसका प्रयोग न तो किसी दूषित आशय से किया जाता है और न इनसे किसी को पीड़ा उत्पन्न होती है अतः ऐसी प्रज्ञापनी भाषा सत्य है, असत्य नहीं।

नोट - कौनसा शब्द किस लिङ्ग का है, यह बात व्याकरण के द्वारा ज्ञात होती है। किन्तु आगे जाकर व्याकरण वालों ने भी लिख दिया है कि **'लिङ्गम् अतन्त्रम्'** अर्थात् कौन सा शब्द किस लिङ्ग में चलता है यह निश्चित करना सम्पूर्ण रूप से निश्चय नहीं किया जा सकता है। जैसे कि **'दार'** शब्द का अर्थ होता है स्वपत्नी (निजभार्या)। इस प्रकार इस शब्द का अर्थ स्त्री सूचक होते हुए भी इस (दार) शब्द के रूप पुल्लिङ्ग में चलते हैं। इसी प्रकार दार, स्त्री (भार्या) और कलत्र तीनों शब्द स्त्री अर्थ में आते हैं। किन्तु इनका लिङ्ग अलग अलग है। जैसे कि 'दार' शब्द का लिङ्ग ऊपर बताया जा चुका है कि वह पुल्लिंग में चलता है। स्त्री (भार्या) शब्द स्त्रीलिङ्ग में चलता है। कलत्र शब्द का अर्थ तो स्त्री (भार्या) होता है। किन्तु कलत्र शब्द नपुंसक लिङ्ग में चलता है यथा कलत्रम् (एक वचन), कलत्रे (द्वि वचन), कलत्राणि (बहुवचन)। इस प्रकार संस्कृत में अनेक शब्द ऐसे हैं जिनका हिन्दी अर्थ स्त्रीलिङ्ग, पुल्लिङ्ग आदि में दिखाई देता है किन्तु संस्कृत में भिन्न-भिन्न लिङ्ग में चलते हैं अतः आखिर में वैयाकरण विद्वानों ने भी यह लिख दिया है कि **'लिङ्गं अतन्त्रम्'** किस शब्द का कौनसा लिङ्ग है, ऐसा निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता है।

अह भंते! जा य इत्थी आणमणी*, जा य पुम आणमणी, जा य णपुंसग आणमणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! जा य इत्थी आणमणी, जा य पुम आणमणी, जा य णपुंसग आणमणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ३७६॥

कठिन शब्दार्थ - आणमणी (आणवणी) - आज्ञापनी।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जो यह स्त्री आज्ञापनी, पुरुष आज्ञापनी और नपुंसक आज्ञापनी भाषा है वह प्रज्ञापनी है? वह भाषा मृषा नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! स्त्री आज्ञापनी, पुरुष आज्ञापनी और नपुंसक आज्ञापनी भाषा प्रज्ञापनी है और यह भाषा मृषा-असत्य नहीं है।

विवेचन - जिस भाषा से किसी को आज्ञा दी जाए वह आज्ञापनी भाषा कहलाती है। जिस भाषा से किसी स्त्री को आज्ञा दी जाए तो वह स्त्री आज्ञापनी, पुरुष को आज्ञा दी जाए वह पुरुष आज्ञापनी और किसी नपुंसक को आज्ञा दी जाए वह नपुंसक आज्ञापनी कहलाती है। आज्ञापनी भाषा सिर्फ आज्ञा

* पाठान्तर - "**आणमणी**" (आगे भी सर्वत्र इसी तरह समझना)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देने में प्रयुक्त होती है जिसे आज्ञा दी जाती है वह तदनुसार क्रिया करेगा ही, यह निश्चित नहीं है। जैसे-कोई श्रावक किसी श्राविका से कहे - 'प्रतिदिन सामायिक करो' या श्रावक अपने पुत्र से कहे - 'यथा समय धर्म की आराधना करो' या श्रावक किसी नपुंसक से कहे 'नौ तत्त्वों का चिंतन किया करो' ऐसी आज्ञा देने पर जिसे आज्ञा दी गई है, वह यदि उस आज्ञानुसार क्रिया न करे तो ऐसी स्थिति में आज्ञा देने वाले की भाषा क्या प्रज्ञापनी और सत्य है? इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं कि जो भाषा किसी स्त्री, पुरुष या नपुंसक के लिए आज्ञात्मक है वह आज्ञापनी भाषा प्रज्ञापनी है और असत्य नहीं है। आज्ञापनी भाषा दो प्रकार की है-१. परलोक बाधिनी और २. परलोक अबाधिनी। जो भाषा स्व और पर के ऊपर उपकार की बुद्धि से बिना किसी कपट के किसी पारलौकिक फल की सिद्धि के लिए स्वीकृत ऐहिक आलंबन के प्रयोजन वाली, विवक्षित कार्य को सिद्धि करने के सामर्थ्य युक्त विनीत स्त्री आदि शिष्य वर्ग को प्रेरणा करने वाली आज्ञापनी भाषा परलोक बाधिनी नहीं होती अतः यही भाषा साधु के लिए प्रज्ञापनी प्ररूपणा करने योग्य है क्योंकि उससे परलोक में बाधा नहीं होती है। दूसरी भाषा इससे उलटी है और वह स्व पर को संक्लेश उत्पन्न करने वाली होने से असत्य है।

अह भंते! जा य इत्थी पण्णवणी, जा य पुम पण्णवणी, जा य णपुंसग पण्णवणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! जा य इत्थी पण्णवणी, जा य पुम पण्णवणी, जा य णपुंसग पण्णवणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ३७७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जो यह स्त्री प्रज्ञापनी, पुरुष-प्रज्ञापनी और नपुंसक प्रज्ञापनी भाषा है क्या यह प्रज्ञापनी है? यह भाषा मृषा नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! यह जो स्त्री प्रज्ञापनी, पुरुष प्रज्ञापनी और नपुंसक प्रज्ञापनी है, यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नहीं है।

विवेचन - प्रश्न - स्त्री प्रज्ञापनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर - जो भाषा योनि, कोमलता, अस्थिरता, मुग्धता आदि स्त्री के लक्षण बतलाने वाली है वह स्त्री प्रज्ञापनी भाषा है।

प्रश्न - पुरुष प्रज्ञापनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर - पुरुषचिह्न, कठोरता, दृढ़ता आदि रूप पुरुष के लक्षण बतलाने वाली भाषा पुरुष प्रज्ञापनी कहलाती है।

प्रश्न - नपुंसक प्रज्ञापनी भाषा किसे कहते हैं?

उत्तर - स्तन आदि और दाढ़ी मूंछ आदि के सद्भाव और अभाव युक्त इत्यादि रूप नपुंसक के लक्षण बतलाने वाली भाषा नपुंसक प्रज्ञापनी भाषा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भंते! जा जाईइ इत्थीवऊ, जाईइ पुमवऊ, जाईइ णपुंसगऊ पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! जाईइ इत्थीवऊ, जाईइ पुमवऊ, जाईइ णपुंसगवऊ पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ३७८॥

कठिन शब्दार्थ - जाईइ - जाति में

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो जाति में स्त्रीवाक् (स्त्रीलिंग वाचक), जाति में पुरुषलिंग वाचक और जाति में नपुंसकलिंग वाचक है क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है? यह भाषा मृषा नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! जाति में स्त्रीलिंग वाचक, जाति में पुरुषलिंग वाचक, जाति में नपुंसकलिंगवाचक है यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नहीं है।

अह भंते! जा जाईइ इत्थी आणमणी (आणवणी), जाईइ पुम आणमणी, जाईइ णपुंसग आणमणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! जाईइ इत्थी आणमणी, जाईइ पुम आणमणी, जाईइ णपुंसग आणमणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ३७९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो जाति में स्त्री आज्ञापनी, जाति में पुरुष आज्ञापनी और जाति में नपुंसक आज्ञापनी है क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है? यह भाषा मृषा नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! जाति में जो स्त्री आज्ञापनी है जाति में पुरुष आज्ञापनी है और जो नपुंसक आज्ञापनी है यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा मृषा नहीं है।

अह भंते! जाईइ इत्थी पण्णवणी, जाईइ पुम पण्णवणी, जाईइ णपुंसग पण्णवणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! जाईइ इत्थी पण्णवणी, जाईइ पुम पण्णवणी, जाईइ णपुंसग पण्णवणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ३८०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जो जाति में स्त्री प्रज्ञापनी है, जाति में पुरुष प्रज्ञापनी है या जाति में नपुंसक प्रज्ञापनी है क्या यह प्रज्ञापनी भाषा है? क्या यह भाषा मृषा तो नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! जो जाति में स्त्री प्रज्ञापनी है, जाति में पुरुष प्रज्ञापनी है, जाति में नपुंसक प्रज्ञापनी है यह प्रज्ञापनी भाषा है और यह भाषा असत्य नहीं है।

विवेचन - जो भाषा जाति की अपेक्षा, स्त्री के लक्षण प्रतिपादन करने वाली है, पुरुष के लक्षण प्रतिपादन करने वाली है या नपुंसक के लक्षण प्रतिपादन करने वाली है वह भाषा प्रज्ञापना सत्य भाषा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, मृषा नहीं है। क्योंकि जातिगत गुणों का निरूपण बाहुल्य को लेकर किया जाता है, एक-एक व्यक्ति की अपेक्षा से नहीं। अतः कदाचित् कहीं किसी व्यक्ति में जाति गुण से विपरीत कोई बात पाई जाए तो भी बहुलता के कारण कोई दोष न होने से वह भाषा प्रज्ञापनी है, मृषा नहीं।

मंदकुमार आदि की भाषा

अह भंते! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ बुयमाणे अहमेसे बुयामि-अहमेसे बुयामीति?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो।

कठिन शब्दार्थ - मंदकुमारए - मंदकुमार-अत्यंत छोटा बालक, **मंदकुमारिया** - मंदकुमारिका-अत्यंत छोटी बालिका।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या मंदकुमार (अत्यंत छोटा बोलक) अथवा मंदकुमारिका (अत्यंत छोटी बालिका) बोलती हुई ऐसा जानती है कि मैं बोल रही हूँ?

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी मनुष्य (कुमार अथवा कुमारिका) जान सकते हैं।

अह भंते! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ आहारं आहारेमाणे-अहमेसे आहारमाहारेमित्ति?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या मंदकुमार या मंदकुमारिका आहार करती हुई जानती है कि मैं आहार कर रही हूँ?

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी मनुष्य (मंदकुमार या मंदकुमारिका) जान सकते हैं।

अह भंते! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ-अयं मे अम्मापियरो?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या मन्दकुमार या मन्दकुमारिका यह जानती है कि ये मेरे माता-पिता है?

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी मनुष्य (मंदकुमार या मंदकुमारिका) जान सकते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भंते! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ-अयं मे अइराउले, अयं मे अइराउलेत्ति?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो।

कठिन शब्दार्थ - अइराउले - अधिराजकुल-स्वामी का घर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या मन्दकुमार या मंदकुमारिका यह जानती है कि यह मेरे स्वामी का घर है?

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी मनुष्य (कुमार या कुमारिका) जान सकते हैं।

अह भंते! मंदकुमारए वा मंदकुमारिया वा जाणइ-अयं मे भट्टिदारए, अयं मे भट्टिदारएत्ति?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो॥ ३८१॥

कठिन शब्दार्थ - भट्टिदारए - भर्तृदारक-स्वामी पुत्र।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या मंदकुमार या मन्दकुमारिका यह जानती है कि यह मेरे स्वामी का पुत्र है?

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी मनुष्य (कुमार अथवा कुमारिका) जान सकते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मंदकुमार एवं मंदकुमारिका की भाषा विषयक निरूपण किया गया है। मंदकुमार का अर्थ है-छोटा बालक, नवजात शिशु-उत्तानशय (चत्ता सोने वाला) पसवाड़ा बदलने की भी शक्ति नहीं है ऐसा, जिसका बोध अभी परिपक्व नहीं है। इसी प्रकार मंदकुमारिका का अर्थ है - छोटी बालिका, अबोध बालिका। ऐसे छोटे बालक और बालिका के संबंध में प्रश्न है कि जब वह भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें भाषा रूप में परिणत कर बोलता है तब क्या उसे मालूम रहता है कि मैं यह बोल रहा हूँ या मैं यह खा रहा हूँ या ये मेरे माता पिता है अथवा यह मेरे स्वामी का घर है या यह मेरे स्वामी का पुत्र है? भगवान् फरमाते हैं कि - "**णण्णत्थ सण्णिणो**" - सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। यहाँ 'अन्यत्र' शब्द परिवर्जन के अर्थ में है। यहाँ संज्ञी का अर्थ समनस्का मन वाला नहीं है अपितु संज्ञा से युक्त है। संज्ञा का अर्थ है - अवधिज्ञान, जाति स्मरण ज्ञान या विशिष्ट मन का सामर्थ्य। जो बालक बालिका इस प्रकार की विशिष्ट संज्ञा से युक्त होते हैं वे ही इन बातों को जानते हैं।

यद्यपि मंदकुमार (छोटा बालक) या मंदकुमारिका (छोटी बालिका) मनः पर्याप्ति से पर्याप्त हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फिर भी उनका मन रूप करण अभी तक असमर्थ है और मन करण असमर्थ होने से उनका क्षयोपशम भी मन्द होता है क्योंकि श्रुत ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम प्रायः मन रूप करण के सामर्थ्य के आश्रय से उत्पन्न होता है ऐसा लोक में देखा जाता है।

अह भंते! उट्टे गोणे खरे घोडए अए एलए जाणइ बुयमाणे-अहमेसे बुयामि?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो।

कठिन शब्दार्थ - **उट्टे** - ऊँट, **गोणे** - बैल, **खरे** - गधा, **घोडए** - घोड़ा, **अए** - अज (बकरा), **एलए** - एलक (भेड़)।

भावार्थ - हे भगवन्! ऊँट, बैल, गधा, घोड़ा, बकरा और भेड़ क्या बोलता हुआ यह जानता है कि मैं यह बोल रहा हूँ।

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी जान सकता है।

अह भंते! उट्टे जाव एलए जाणइ आहारं आहारेमाणे-अहमेसे आहारेमि?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऊँट यावत् भेड़ आहार करता हुआ यह जानता है कि मैं यह आहार करता हूँ?

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी जान सकता है।

अह भंते! उट्टे गोणे खरे घोडए अए एलए जाणइ-अयं मे अम्मापियरो?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऊँट, बैल, गधा, घोड़ा, बकरा और भेड़ क्या यह जानता है कि ये मेरे माता-पिता हैं?

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी जान सकता है।

अह भंते! उट्टे जाव एलए जाणइ-अयं मे अइराउलेत्ति?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऊँट यावत् भेड़ यह जानता है कि यह मेरे स्वामी का घर है?

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी जान सकता है।

अह भंते! उट्टे जाव एलए जाणइ-अयं मे भट्टिदारए भट्टिदारए?

गोयमा! णो इणट्ठे समट्ठे, णण्णत्थ सण्णिणो॥ ३८२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! ऊँट यावत् भेड़ यह जानता है कि यह मेरे स्वामी का पुत्र है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! सिवाय संज्ञी के यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् संज्ञी जान सकता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मंदकुमार मंदकुमारिका के अनुसार ही ऊँट आदि के विषय में पांच प्रश्न किये गये हैं। जिनका निष्कर्ष यह है कि अवधिज्ञानी, जाति स्मरण ज्ञानी या विशिष्ट क्षयोपशम वालों के सिवाय किसी भी ऊँट, बैल, गधा, घोड़ा, बकरा और भेड़ को यह ज्ञान नहीं होता है कि मैं यह बोल रहा हूँ, यह आहार कर रहा हूँ, ये मेरे माता-पिता हैं, यह मेरे स्वामी का घर है अथवा यह मेरे स्वामी का पुत्र है। यहाँ ऊँट आदि भी अत्यंत बाल अवस्था वाले ही समझना बड़ी (परिपक्व) वय वाले नहीं क्योंकि परिपक्व अवस्था में ऊँट आदि को इन बातों का ज्ञान होना संभव है।

एकवचन आदि की अपेक्षा भाषा निरूपण

अह भंते! मणुस्से महिसे आसे हत्थि सीहे वग्घे विगे दीविए अच्छे तरच्छे परस्सरे सियाले विराले सुणए कोलसुणए कोक्कंतिए ससए चित्तए चिल्ललए जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वा सा एगवऊ?

हंता गोयमा! मणुस्से जाव चिल्ललए जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वा सा एगवऊ।

कठिन शब्दार्थ - **मणुस्से** - मनुष्य, **महिसे** - महिष-भैंसा, **आसे** - अश्व-घोड़ा, **हत्थि** - हस्ती-हाथी, **सीहे** - सिंह-केशरीसिंह, **वग्घे** - व्याघ्र-बाघ, हल्की जाति का सिंह, **विगे** - वृक-भेड़िया, **दीविए** - द्वीपी-द्वीपक (गेंडा), **अच्छे** - ऋक्ष-रीछ, **तरच्छे** - तरक्ष बिज्जू-तेंदुआ (लकड़बग्घा), **परस्सरे**- पाराशर (अष्टापद), **सियाले**- शृंगाल, **विराले** - बिडाल-बिलाव, **सुणए** - शुनक-कुत्ता, **कोलसुणए**- कोल शुनक-शिकारी कुत्ता, **कोक्कंतिए** - लोमड़ी, **ससए** - शशक-खरगोश, **चित्तए** - चित्रक-चीता, **चिल्ललए** - चिल्ललक-एक जंगली जानवर।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! मनुष्य, महिष, अश्व, हस्ती, सिंह, बाघ, वृक (भेड़िया), दीपड़ा (गेंडा), रींछ, तरक्ष, पाराशर (अष्टापद), सियाल, बिलाव, शुनक (कुत्ता), कोलशुनक (शिकारी कुत्ता), कोकंतिक (लोमड़ी), शशक (खरगोश), चित्रक (चीता), चिल्ललक ये और इसी प्रकार के अन्य जितने भी जीव हैं, क्या वे सब एक वचन हैं?

उत्तर - हां गौतम! मनुष्य यावत् चिल्ललक तथा ये और इसी प्रकार के अन्य जितने भी जीव हैं वे सब एक वचन हैं।

अह भंते! मणुस्सा जाव चिल्ललगा जे यावण्णा तहप्पगारा सव्वा सा बहुवऊ?

हंता गोयमा! मणुस्सा जाव चिल्ललगा....सव्वा सा बहुवऊ॥ ३८३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों यावत् चिल्ललकों तथा ये और इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं वे सब बहुवचन है?

उत्तर - हाँ गौतम! मनुष्यों यावत् चिल्ललकों और इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं वे सब बहुवचन हैं।

नोट - जो अकारान्त शब्द होते हैं उनका अर्धमागधी भाषा में एकवचन में अन्त में '**ए**' लग जाता है। जैसे कि '**मणुस्स**' शब्द का प्रथमा के एकवचन में '**मणुस्से**' '**महिस**' का '**महिसे**' रूप बन जाता है और बहुवचन में '**आ**' लगता है जैसे कि '**मणुस्सा**' '**महिसा**'।

अह भंते! मणुस्सी महिसी वलवा हत्थिणिया सीही वग्घी विगी दीविया अच्छी तरच्छी परस्सरी रासभी सियाली विराली सुणिया कोलसुणिया कोक्कंतिया ससिया चित्तिया चिल्ललिया जा यावण्णा तहप्पगारा सव्वा सा इत्थिवऊ?

हंता गोयमा! मणुस्सी जाव चिल्ललिया जा यावण्णा तहप्पगारा सव्वा सा इत्थिवऊ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मानुषी (मनुष्य स्त्री), महिषी, घोड़ी, हथिनी, सिंहनी, व्याघ्री, वृकी (भेड़िनी), द्वीपिनी (गेंडी), रींछणी, तरक्षी, अष्टापदी, सियारणी, बिल्ली, कुत्ती, शिकारी कुत्ती, लोमडी, खरगोशनी, चित्ती, चिल्लालिका ये और इसी प्रकार के अन्य जितने भी जीव हैं क्या वे सब स्त्रीवचन हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! मानुषी यावत् चिल्लालिका ये और इसी प्रकार के अन्य जितने भी जीव हैं वे सब स्त्रीवचन हैं।

अह भंते! मणुस्से जाव चिल्ललए जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वा सा पुमवऊ?

हंता गोयमा! मणुस्से महिसे जाव चिल्ललए जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वा सा पुमवऊ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्य यावत् चिल्ललक तथा अन्य इसी प्रकार के जितने भी जीव हैं क्या वे सब पुरुष वचन (पुल्लिंग) हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! मनुष्य, महिष, अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया), दीपडा (गेंडा), रींछ, तरक्ष (तेंदुआ), पाराशर (अष्टापद), सियार, बिलाव, कुत्ता, शिकारी कुत्ता, कोकन्तिक (लोमड़ी), खरगोश, चीत्ता और चिल्ललक ये और इसी प्रकार के अन्य जितने भी प्राणी हैं वे सब पुरुष वचन (पुल्लिंग) हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भंते! कंसं कंसोयं परिमंडलं सेलं थूभं जालं थालं तारं रूवं अच्छिपव्वं कुंडं पउमं दुद्धं दहिं णवणीयं असणं सयणं भवणं विमाणं छत्तं चामरं भिंगारं अंगणं णिरंगणं आभरणं रयणं जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वं तं णपुंसगवऊ?

हंता गोयमा! कंसं जाव रयणं जे यावण्णे तहप्पगारा सव्वं तं णपुंसगवऊ ॥ ३८४॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! कांस्य (कांसा), कंसोक (कंसोल) परिमंडल, शैल, स्तूप, जाल, स्थाल, तार, रूप, अक्षि (नेत्र), पर्व, कुण्ड, पद्म, दूध, दही, नवनीत, अशन, शयन, भवन, विमान, छत्र, चामर, भृंगार, आंगन, निरंगन, आभरण (आभूषण) और रत्न तथा इसी प्रकार के अन्य जितने भी शब्द हैं वे सब क्या नपुंसकवाची (नपुंसक वचन) हैं?

उत्तर - हाँ गौतम! कांस्य से लेकर रत्न पर्यन्त तथा इसी प्रकार के अन्य जितने भी शब्द हैं वे सब नपुंसकवाची (नपुंसकलिंग) हैं।

अह भंते! पुढवि त्ति इत्थिवऊ, आउ त्ति पुमवऊ, धण्णे त्ति णपुंसगवऊ पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! पुढवि त्ति इत्थिवऊ, आउ त्ति पुमवऊ, धण्णे त्ति णपुंसगवऊ पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वी स्त्रीवाची (स्त्रीवचन-स्त्रीलिंग) है, अप् (पानी) पुरुषवाची (पुल्लिंग) है, धान्य नपुंसकवाची है क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है? क्या यह भाषा मृषा नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! पृथ्वी स्त्रीवाची, अप् पुरुषवाची और धान्य नपुंसकवाची शब्द है। यह भाषा प्रज्ञापनी है और यह भाषा मृषा नहीं है।

अह भंते! पुढवि त्ति इत्थिआणमणी, आउ त्ति पुमआणमणी, धण्णे त्ति णपुंसग आणमणी पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! पुढवित्ति इत्थिआणमणी, आउ त्ति पुमआणमणी, धण्णे त्ति णपुंसगआणमणी, पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वी यह स्त्री आज्ञापनी है, अप् पुरुष आज्ञापनी है और धान्य नपुंसक आज्ञापनी है, क्या यह भाषा प्रज्ञापनी है? क्या यह भाषा मृषा नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! पृथ्वी स्त्री आज्ञापनी है, अप् पुरुष आज्ञापनी है और धान्य नपुंसक आज्ञापनी है। यह भाषा प्रज्ञापनी है और यह भाषा मृषा नहीं है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भंते! पुढवि त्ति इत्थिपण्णवणी, आउ त्ति पुमपण्णवणी, धण्णे त्ति णपुंसग पण्णवणी आराहणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! पुढवि त्ति इत्थिपण्णवणी, आउ त्ति पुमपण्णवणी, धण्णे त्ति णपुंसग पण्णवणी आराहणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वी स्त्री प्रज्ञापनी है, अप् पुरुष प्रज्ञापनी है और धान्य नपुंसक प्रज्ञापनी है? क्या यह भाषा आराधनी है? क्या यह भाषा मृषा नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! पृथ्वी स्त्री प्रज्ञापनी है, अप् पुरुष प्रज्ञापनी है और धान्य नपुंसकप्रज्ञापनी है। यह भाषा आराधनी है और यह भाषा मृषा नहीं है।

इच्चेवं भंते! इत्थिवयणं वा पुमवयणं वा णपुंसगवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! इत्थिवयणं वा पुमवयणं वा णपुंसगवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ३८५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इसी प्रकार स्त्रीवचन, पुरुषवचन या नपुंसक वचन बोलते हुए जीव की भाषा क्या प्रज्ञापनी है? क्या यह भाषा मृषा नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! स्त्रीवचन, पुरुष वचन और नपुंसक वचन बोलते हुए जीव की भाषा क्या प्रज्ञापनी है, क्या यह भाषा मृषा नहीं है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्रों में भाषा के प्रतिपादन के संबंध में जो संदेह (शंकाएं) थीं उन्हें दूर किया गया है।

स्त्रीलिंग वाचक, पुलिंग वाचक और नपुंसक लिंग वाचक भाषा साधु बोलता है तब वह बोलते हुए की भाषा प्रज्ञापनी है क्योंकि शाब्दिक व्यवहार का अनुसरण करने से इसमें कोई दोष नहीं है। दोष तभी होता है जब वस्तु का जैसा स्वरूप हो उससे विपरीत या अन्य रूप में कथन किया जाये। जिस वस्तु का जैसा स्वरूप है उसे वैसा ही कहा जाए तो उसमें क्या दोष हैं? अर्थात् कोई दोष नहीं है।

उपरोक्त प्रश्नोत्तरों में व्याकरण की दृष्टि से शब्दों के लिंग की अपेक्षा से लिंग बताया गया है किन्तु उनमें स्त्रीपना (स्त्री के लिङ्ग आदि) पुरुषपना और नपुंसकपना पाया जाता हो यह बात नहीं है। व्याकरणों में भी संस्कृत व्याकरण और प्राकृत व्याकरण में शब्दों के लिङ्ग भिन्न-भिन्न तरह भी हो जाते हैं और रूप भी भिन्न-भिन्न बन जाते हैं तथा वचन भी व्याकरण की दृष्टि से समझना चाहिए क्योंकि संस्कृत में तीन लिङ्ग और तीन वचन होते हैं। प्राकृत में लिंग तो तीन होते हैं किन्तु वचन दो ही होते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं-एक वचन और बहुवचन। हिन्दी में लिङ्ग भी दो ही होते हैं - स्त्रीलिंग और पुल्लिंग और वचन भी दो ही होते हैं-एक वचन और बहुवचन। अब भाषा के कारण आदि के विषय में प्रश्न करते हैं -

भाषा का स्वरूप

भासा णं भंते! किमाइया, किंपवहा, किंसंठिया, किंपज्जवसिया?

गोयमा! भासा णं जीवाइया, सरीरप्पहवा, वज्जसंठिया, लोगंतपज्जवसिया पण्णत्ता।

कठिन शब्दार्थ - **किं** - क्या, **आइया** - आदिका-प्रारम्भिका, **पवहा** - प्रभवा-उत्पत्ति, **पज्जवसिया**- पर्यवसान (अन्त), **वज्ज संठिया** - वज्र संस्थिता, **अणुमया** - अनुमत।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाषा का मूल कारण क्या है? भाषा किस से उत्पन्न होती है? उसका आकार कैसा है? भाषा का पर्यवसान (अन्त) कहाँ होता है?

उत्तर - हे गौतम! भाषा का मूल कारण जीव है, भाषा शरीर से उत्पन्न होती है, वज्र का जैसा उसका आकार है और लोक के अन्त में उसका पर्यवसान (अन्त) होता है।

भासा कओ य पभवइ? कइहिं च समएहिं भासइ भासं?

भासा कइप्पगारा? कइ वा भासा अणुमया उ?॥

सरीरप्पहवा भासा, दोहि य समएहिं भासइ भासं।

भासा चउप्पगारा, दोण्णि य भासा अणुमया उ॥ ३८६॥

भावार्थ - प्रश्न - १. भाषा कहाँ से उत्पन्न होती है? २. भाषा कितने समयों में बोली जाती है? ३. भाषा कितने प्रकार की है? ४. कितनी भाषाएं अनुमत-बोलने योग्य है?

उत्तर - १. शरीर से भाषा उत्पन्न होती है २. दो समयों में भाषा बोली जाती है ३. भाषा चार प्रकार की होती है ४. उनमें से दो भाषाएं अनुमत-बोलने योग्य है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भाषा विषयक निम्न प्रश्नों का समाधान किया गया है -

१. भाषा का मौलिक कारण क्या है ? - भाषा का मूल कारण जीव हैं क्योंकि जीव के तथाविध प्रयत्नों के बिना अवबोध के कारण भूत भाषा की उत्पत्ति संभव नहीं है। इस संबंध में आचार्य भद्रबाहु स्वामी कहते हैं -

तिविहम्मि सरीरम्मि, जीव पएसा हवंति जीवस्स।

जहिं उ गेण्हइ गहणं, तो भासइ भासओ भासं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

- औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीन प्रकार के शरीरों में जीव से संबद्ध जीव प्रदेश होते हैं जिनसे जीव भाषा द्रव्यों को ग्रहण करता है तत्पश्चात् भाषक (वक्ता) बोलता है।

२. भाषा किनसे उत्पन्न होती है ? - भाषा शरीर से उत्पन्न होती है क्योंकि औदारिक, वैक्रिय और आहारक इन तीन शरीरों में से किसी एक शरीर के सामर्थ्य से भाषा द्रव्य निकलते हैं।

३. भाषा का संस्थान कैसा होता है? - भाषा वज्र संस्थिता-वज्र के जैसे संस्थान आकार वाली होती है क्योंकि तथाप्रकार के प्रयत्न से निकले हुए भाषा के द्रव्य सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं और लोक की आकृति वज्र जैसी है अतः भाषा भी वज्र के आकार वाली बतलाई गयी है।

४. भाषा का अन्त कहाँ पर होता है? - भाषा का अन्त लोकान्त में होता है अर्थात् किसी भी स्थान से बोली गयी भाषा लोकान्त तक चली जाती है इसके आगे नहीं जाने का कारण यह है कि लोकान्त से आगे गति क्रिया में सहायक धर्मास्तिकाय का अभाव होने से भाषा द्रव्यों का गमन लोकान्त से आगे नहीं होता है। इस प्रकार सभी तीर्थंकर भगवन्तों ने फरमाया है।

५. भाषा किस योग से उत्पन्न होती है? - भाषा शरीर से उत्पन्न होती है। यहाँ शरीर के ग्रहण से काययोग का ग्रहण किया जाता है क्योंकि काय योग से भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके उन्हें भाषा रूप में परिणत करके फिर वचन योग से बाहर निकाला जाता है। अर्थात् काय योग के सामर्थ्य से भाषा उत्पन्न होती है। आचार्य भद्रबाहु स्वामी कहते हैं - **''गिण्हइ काइएणं निसरइ तहवाइएण जोगेणं''** अर्थात् जीव भाषा वर्गणा को काय योग से ग्रहण करता है और वचन योग से उन्हें बाहर निकालता है।

६. कितने समय में भाषा बोलता है? - जीव दो समयों में भाषा बोलता है क्योंकि वह प्रथम समय में भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है और दूसरे समय में उन्हें भाषा रूप में परिणत करके छोड़ता है।

७. भाषा के कितने प्रकार हैं? - भाषा चार प्रकार की कही गयी है - १. सत्य भाषा २. मृषा भाषा ३. सत्यामृषा भाषा और ४. असत्यामृषा भाषा।

८. कौनसी भाषा बोलने की अनुज्ञा है ? - सत्य भाषा और असत्यामृषा (व्यवहार) भाषा-दो प्रकार की भाषा बोलने की तीर्थंकर भगवान् ने अनुज्ञा दी है। भगवान् ने साधु को मृषा और सत्यामृषा (मिश्र) भाषा बोलने की अनुज्ञा नहीं दी है क्योंकि ये दोनों भाषाएं अयथार्थ का प्रतिपादन करने वाली होने से मोक्ष के प्रतिकूल है।

भाषा का उद्‌भव (उत्पत्ति) किस योग से होता है? क्या काययोग से मनयोग से या वचनयोग से? शास्त्रकार ने उत्तर दिया है कि भाषा काययोग से उत्पन्न होती है इसका अर्थ यह है कि वक्ता प्रथम काययोग से भाषा के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करके फिर वचनयोग से उन्हें बाहर निकालता है। इस कारण भाषा को **'काय योग प्रभवा'** कहना उचित है। जीव दो समयों में भाषा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोलता है। प्रथम समय में वह भाषा योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर और दूसरे समय में उन्हें भाषा रूप में परिणत करके छोड़ता है।

भाषा रूप में ग्रहण किये हुए पुद्गलों का भिन्न (भेदन करके) और अभिन्न (भेदन किये बिना) रूप से निकालना कहा गया है। इनके पांच भेद इस प्रकार हैं - १. खण्ड भेद २. प्रतर भेद ३. चूर्णिका भेद ४. अनुतटिका भेद ५. उत्करिका भेद।

१. खण्ड भेद - लोहा, ताम्बा, सीसा, सोना-चांदी आदि का टुकड़े रूप से जो भेद होता है वह खण्ड भेद हैं।

२. प्रतर भेद - बांस, बैंत, केले का वृक्ष और अभ्रक की प्रतर की तरह जो भेद होता है वह प्रतर भेद हैं।

३. चूर्णिका भेद - तिल, मूंग, उडद, पींपल, मिर्च, सूंठ आदि का चूर्ण रूप से जो भेद होता है वह चूर्णिका भेद हैं।

४. अनुतटिका भेद - कूप, तालाब, द्रह बावड़ी, पुष्करणी, सरोवर आदि का अनुतटिका रूप से जो भेद होता है वह अनुतटिका भेद है।

५. उत्करिका भेद - मसूर, मूंग, उडद, तिल की फली और एरण्ड बीज, ये सूखने पर फटकर इनमें से दाने उछल कर बाहर निकलते हैं।

उक्त पांच प्रकार के भेद से भिन्न (अलग-अलग) द्रव्यों का अल्प बहुत्व - १. सब से थोड़े उत्करिका भेद से भिन्न हुए द्रव्य २. अनुतटिका भेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्त गुणा ३. चूर्णिका भेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्त गुणा ४. प्रतर भेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्त गुणा ५. खण्ड भेद से अलग हुए द्रव्य अनन्त गुणा हैं।

पहले चार प्रकार की भाषा बताई गयी है उनमें से साधु-साध्वी को दो प्रकार की भाषा बोलने की तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा है यथा - सत्या, असत्यामृषा भाषा तथा मिश्रभाषा (असत्यामृषा) और मृषा (असत्य भाषा) बोलने की अनुज्ञा नहीं है क्योंकि ये दोनों भाषाएं वस्तु स्वरूप का यथार्थ रूप से प्रतिपादन नहीं करती है। अतएव ये दोनों भाषाएं मोक्ष की विरोधिनी हैं।

पर्याप्तक-अपर्याप्तक भाषा

कइविहा णं भंते! भासा पण्णत्ता ?

गोयमा! दुविहा भासा पण्णत्ता। तंजहा - पजत्तिया य अपजत्तिया य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाषा कितनी प्रकार की कही गयी है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! भाषा दो प्रकार की कही गयी है। वे इस प्रकार हैं - १. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक।

पज्जत्तिया णं भंते! भासा कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सच्चा य मोसा य॥ ३८७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक भाषा कितने प्रकार की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक भाषा दो प्रकार की कही गयी है। वे इस प्रकार हैं - १. सत्य और २ मृषा।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में भाषा दो प्रकार की कही गयी है - पर्याप्तक भाषा और अपर्याप्तक भाषा। जो भाषा प्रतिनियत रूप से-निश्चित अर्थ रूप से जानी जा सकती है। अर्थात् अर्थ का सम्यक् या असम्यक् निर्णय करवाने में सामर्थ्य युक्त भाषा पर्याप्तक भाषा कहलाती है जो दो प्रकार की है- १. सत्य और २. मृषा। ये दोनों भाषाएं सत्य या असत्य इस प्रकार निश्चित रूप से जानी जा सकती है।

जो भाषा सत्य और असत्य दोनों रूप से मिश्रित होने से और सत्य तथा असत्य दोनों के प्रतिषेध रूप होने से प्रतिनियत रूप से-सत्य या असत्य इस प्रकार निश्चित अर्थ रूप से नहीं जानी जा सकती है वह अपर्याप्तक भाषा कहलाती है। जो अर्थ का निर्णय करवाने के सामर्थ्य से रहित है ऐसी सत्यामृषा और असत्यामृषा रूप भाषा अपर्याप्तक है।

पर्याप्तक भाषा के भेद

सच्चा णं भंते! भासा पज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दसविहा पण्णत्ता। तंजहा - जणवयसच्चा १, सम्मयसच्चा २, ठवण सच्चा ३, णामसच्चा ४, रूवसच्चा ५, पडुच्चसच्चा ६, ववहारसच्चा ७, भावसच्चा ८, जोगसच्चा ९, ओवम्मसच्चा १०।

"जणवय १ सम्मय २ ठवणा ३ णामे ४ रूवे ५ पडुच्चसच्चे ६ य।
ववहार ७ भाव ८ जोगे ९ दसमे ओवम्मसच्चे य १०"॥ ३८८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक सत्यभाषा कितने प्रकार की कही गयी है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक सत्य भाषा दस प्रकार की कही गयी है। वह इस प्रकार है - १. जनपद सत्य २. सम्मत सत्य ३. स्थापना सत्य ४. नाम सत्य ५. रूप सत्य ६. प्रतीत्य सत्य (अपेक्षा सत्य) ७. व्यवहार सत्य ८. भाव सत्य ९. योग सत्य और १०. उपमा सत्य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गाथार्थ - जनपद १ सम्मत २ स्थापना ३ नाम ४ रूप ५ प्रतीत्य ६।
व्यवहार ७ भाव ८ योग ९ और दसवां उपमा सत्य॥

विवेचन - सत्य भाषा के दस भेद-

जणवय सम्मत ठवणा, नामे रूवे पडुच्च सच्चे य।
ववहार भाव जोगे, दसमे ओवम्म सच्चे य॥

१ जनपद सत्य २. सम्मत सत्य ३. स्थापना सत्य ४. नाम सत्य ५. रूप सत्य ६. प्रतीत्य सत्य ७. व्यवहार सत्य ८. भाव सत्य ९. योग सत्य १०. उपमा सत्य।

१. जनपद सत्य - देश विशेष की अपेक्षा इष्ट अर्थ का ज्ञान कराने वाली, व्यवहार की हेतु रूप जो भाषा है वह जनपद सत्य है। जैसे कोंकण देश में पानी को 'पिच्च' कहते हैं।

२. सम्मत सत्य - सभी लोगों को सम्मत होने से जो सत्य रूप प्रसिद्ध है वह सम्मत सत्य है। जैसे पंकज शब्द का अर्थ कीचड़ से उत्पन्न होने वाला होता है। कीचड़ से कमल, कुमुद, शेवाल, मेंढ़क आदि उत्पन्न होते हैं किन्तु कमल को ही पंकज कहते हैं, अन्य को नहीं।

३. स्थापना सत्य - सदृश अथवा विसदृश आकार वाली वस्तु में वस्तु विशेष की स्थापना करके उसे उस नाम से कहना स्थापना सत्य है। जैसे शतरञ्ज के मोहरों को हाथी, घोडा, ऊँट आदि कहना। विशेष प्रकार से अङ्क लिखकर उसमें संख्या विशेष का आरोप करना भी स्थापना सत्य है। जैसे एक अङ्क के आगे दो शून्य रखने पर सौ की संख्या मानना, तीन शून्य रखने पर हजार की संख्या मानना। स्थापना सत्य के सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना के भेद से दो भेद हैं। जिसकी स्थापना करनी है उसकी आकृति बना कर उसमें उसकी स्थापना करना सद्भाव स्थापना है जैसे चार भुजा की मूर्ति में चार भुजा की स्थापना कर उसे चार भुजा कहना। जैसे घोड़े के चार पैर, दो कान, दो आँख आदि मिट्टी का आकृति बनाकर उसे घोड़ा कहना। आकार आदि की अपेक्षा न कर जिस किसी वस्तु में वस्तु विशेष की स्थापना करना असद्भाव स्थापना है। जैसे पांच पचेटा (कंकर) रख कर आखा चढ़ा कर उसे शीतलामाता कहना। अथवा जैसे बच्चे द्वारा लकड़ी के टूकड़े को दोनों पैरों के बीच में रखकर खींचते चलना और कहना कि मेरा घोड़ा आया किन्तु उस लकड़ी में किसी प्रकार के घोड़े का आकार नहीं है तथा जैसे आज किसी मनुष्य ने राम, कृष्ण, आदिनाथ भगवान् तथा महावीर स्वामी को किसी ने देखा नहीं है किन्तु उनकी मूर्ति बनाना यह सद्भाव स्थापना है। नाम और स्थापना वन्दनीय और पूजनीय नहीं होते हैं।

४. नाम सत्य - गुण की अपेक्षा न कर किसी का नाम विशेष रख देना नाम सत्य है। जैसे कुल की वृद्धि न करने वाले व्यक्ति का नाम 'कुल वर्धन' रखना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. रूप सत्य - रूप-वेश देख कर वेश के गुणों से रहित व्यक्ति को भी उस रूप से कहना रूप सत्य है। जैसे कपट से साधु का वेश पहनने वाले व्यक्ति को साधु कहना।

६. प्रतीत्य सत्य - दूसरी वस्तु की अपेक्षा जो सत्य है वह प्रतीत सत्य है। जैसे कनिष्ठा (चिट्टी) अंगुली की अपेक्षा अनामिका अंगुली बड़ी है और मध्यांगुली की अपेक्षा अनामिका अंगुली छोटी है। जैसे एक ही व्यक्ति अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है और पुत्र की अपेक्षा पिता है।

७. व्यवहार सत्य - व्यवहार यानी लोक विवक्षा की अपेक्षा जो सत्य है वह व्यवहार सत्य है। जैसे पहाड़ जलता है घड़ा झरता है आदि। सच तो यह है कि पहाड़ नहीं जलता है पर पहाड़ में रहे हुए तृण काष्ठादि जलते हैं। इसी तरह घड़ा नहीं झरता है किन्तु घड़े में रहा हुआ पानी झरता है। किन्तु लोक व्यवहार से 'पहाड़ जलता है', 'घड़ा झरता है' जो कहा जाता है वह व्यवहार सत्य है।

८. भाव सत्य - वर्णादि भाव की अपेक्षा जो सत्य है यानी जिसमें जिस वर्ण विशेष की अधिकता है उसे उस वर्ण विशेष वाला कहना भाव सत्य है जैसे कोयल काली है, तोता हरा है, बगुला सफेद है। यद्यपि इनमें निश्चय से पांचों ही वर्ण पाते हैं किन्तु काले, हरे और सफेद वर्ण की अधिकता की अपेक्षा इन्हें काला, हरा और सफेद कहा जाता है।

९. योग सत्य - योग का अर्थ सम्बन्ध है। सम्बन्ध की अपेक्षा जो सत्य है वह योग सत्य है। जैसे छत्र के सम्बन्ध से पुरुष को छत्री (छत्र वाला) और दंड के सम्बन्ध से दंडी (वाला) कहना।

१०. उपमा सत्य - उपमा की अपेक्षा सत्य उपमा सत्य है। उपमा चार तरह की है - १. सत् को सत् की उपमा जैसे महापद्म तीर्थंकर (आगामी उत्सर्पिणी का प्रथम तीर्थंकर) भगवान् महावीर जैसे होंगे। २. सत् को असत् की उपमा जैसे नारकी देवता का पल्योपम सागरोपम का आयुष्य सत् है किन्तु पल्य और सागर की उपमा असत् है।

असत् को सत् की उपमा जैसे पत्र और वृक्ष की बातचीत -

पान खिरन्तो इम कहे, सुन तरुवर वनराय।
अबके बिछुड़े कब मिलें, दूर पड़ेंगे जाय॥
तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र इक बात।
इस घर याही रीत है, इक आवत इक जात॥
पान खिरन्तो देखने, हंसी कूँपलियाँ।
मो बीती तोय बीतसी, धीरी रह बापरियाँ॥
कब पान मुख बोलियो, कब तरुवर दियो जवाब।
वीर वखाणी उपमा, अनुयोग द्वार मंझार॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असत् को असत् की उपमा-जैसे घोड़े का सींग गधे के सींग सरीखा है और गधे का सींग घोड़े के सींग जैसा है।

मोसा णं भंते! भासा पज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दसविहा पण्णत्ता। तंजहा - कोहणिस्सिया १, माणणिस्सिया २, मायाणिस्सिया ३, लोहणिस्सिया ४, पेज्जणिस्सिया ५, दोसणिस्सिया ६, हासणिस्सिया ७, भयणिस्सिया ८, अक्खाइयाणिस्सिया ९, उवघाइयणिस्सिया १०।

'कोहे माणे माया लोभे पेज्जे तहेव दोसे य।

हास भए अक्खाइयउवघाइयणिस्सिया दसमा॥ ३८९॥'

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पर्याप्तक मृषा भाषा कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! पर्याप्तक मृषा भाषा दस प्रकार की कही गई है वह इस प्रकार है - १. क्रोध निःसृत २. मान निःसृत ३. माया निःसृत ४. लोभ निःसृत ५. प्रेम (राग) निःसृत ६. द्वेष निःसृत ७. हास्य निःसृत ८. भय निःसृत ९. आख्यायिका निःसृत और १०. उपघात निःसृत।

गाथार्थ - क्रोध १ मान २ माया ३ लोभ ४ राग ५ द्वेष ६।

हास्य भय आख्यायिका उपघात निःसृत दसवां॥

विवेचन - असत्य भाषा के दस भेद -

कोहे माणे माया लोभे, पिज्जे तहेव दोसे य।

हास भय अक्खाइय, उवघाइय णिस्सिया दसमा॥

१. क्रोध निःसृत २. मान निःसृत ३. माया निःसृत ४. लोभ निःसृत ५. प्रेम (राग) निःसृत ६. द्वेष निःसृत ७. हास्य निःसृत ८. भय निःसृत ९. आख्यायिका निःसृत १०. उपघात निःसृत।

क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम (राग), द्वेष, हास्य और भय के वश बोली हुई भाषा सत्य या असत्य होने पर भी असत्य होती है। कथाओं में असंभव बातों का वर्णन आख्यायिका निःसृत असत्य है। जीवों की हिंसा हो ऐसी भाषा बोलना, 'तूं चोर है' इस प्रकार झूठा दोष देना उपघात निःसृत असत्य है।

अपर्याप्तक भाषा के भेद

अपज्जत्तिया णं भंते! कइविहा भासा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सच्चामोसा य असच्चामोसा य।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक भाषा कितने प्रकार की कही गई है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक भाषा दो प्रकार की कही गई है - सत्यामृषा और असत्यामृषा।

सच्चामोसा णं भंते! भासा अपज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दसविहा पण्णत्ता। तंजहा-उप्पण्णमिस्सिया १, विगयमिस्सिया २, उप्पण्णविगयमिस्सिया ३, जीवमिस्सिया ४, अजीवमिस्सिया ५, जीवाजीवमिस्सिया ६, अणंतमिस्सिया ७, परित्तमिस्सिया ८, अद्धामिस्सिया ९, अद्धद्धामिस्सिया १० ॥ ३९० ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक सत्यामृषा भाषा कितने प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक सत्यामृषा भाषा दस प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है -

१. उत्पन्ना मिश्रिता २. विगत मिश्रिता ३. उत्पन्न विगत मिश्रिता ४. जीवा मिश्रिता ५. अजीवमिश्रिता ६. जीवाजीव मिश्रिता ७. अनंत मिश्रिता ८. प्रत्येक मिश्रिता ९. अद्धामिश्रिता और १०. अद्धाद्धा मिश्रिता।

विवेचन - मिश्र भाषा के दस भेद इस प्रकार हैं - १. उत्पन्न मिश्रिता २. विगत मिश्रिता ३. उत्पन्न विगत मिश्रिता ४. जीव मिश्रिता ५. अजीव मिश्रिता ६. जीव अजीव मिश्रिता ७. अनन्त मिश्रिता ८. प्रत्येक मिश्रिता ९. अद्धा मिश्रिता १०. अद्धद्धा मिश्रिता।

१. उत्पन्न मिश्रिता (उप्पण्ण मिस्सिया) - किसी गांव या नगर की जन्म लेने वालों की संख्या निश्चित रूप से ज्ञात न होने पर भी यह कहना कि 'आज यहाँ दस बालक जन्मे' उत्पन्न मिश्रिता भाषा है क्योंकि दस से कम या अधिक बालक भी जन्म सकते हैं।

२. विगत मिश्रिता (विगत मिस्सिया) - गांव या नगर विशेष की निश्चित मृत्यु होने वालों की संख्या ज्ञात न होने पर भी यह कहना कि 'आज यहाँ दस मरे' विगत मिश्रिता भाषा है। दस से कम या ज्यादा भी मर सकते हैं।

३. उत्पन्न विगत मिश्रिता (उप्पण्ण विगत मिस्सिया) - गांव या नगर विशेष की निश्चित जन्म मृत्यु संख्या ज्ञात न होने पर भी 'दस जन्मे, दस मरे' इस प्रकार निश्चित जन्म मृत्यु संख्या कहना उत्पन्न विगत मिश्रिता भाषा है। जन्म मृत्यु संख्या ज्यादा कम भी हो सकती है।

४. जीव मिश्रिता (जीव मिस्सिया) - कोई व्यक्ति धान लाया। जिसमें धनेरिया आदि जीव हैं और कंकर भी हैं, उसे देखकर कहना कि जीव ही जीव उठा लाया। यह भाषा जीवित प्राणियों की अपेक्षा सत्य है और कंकर आदि की अपेक्षा असत्य है अतः मिश्रित है।

५. अजीव मिश्रित (अजीव मिस्सिया) - कोई व्यक्ति गेहूँ आदि धान लाया जिसमें कंकर भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। उसके लिए कहना कि कंकर ही कंकर उठा लाया। यह भाषा कंकर की अपेक्षा सत्य और धान की अपेक्षा असत्य होने से मिश्रित है।

६. जीवाजीव मिश्रिता (जीवाजीव मिस्सिया) - उक्त कंकर मिश्रित धान्य राशि के लिये यह कहना कि आधोआध उठा लाया जीवाजीव मिश्रिता भाषा है क्योंकि धान और कंकर का परिमाण न्यूनाधिक संभव है।

७. अनन्त मिश्रित (अणंत मिस्सिया) - पत्ते अथवा अन्य प्रत्येक वनस्पति काय से मिश्रित मूले आदि के लिए ' यह अनन्तकाय है' कहना अनन्त मिश्रिता भाषा हैं।

८. प्रत्येक मिश्रिता (परित्त मिस्सिया) - प्रत्येक वनस्पति के समूह को अनन्तकाय के साथ मिला हुआ देख कर 'यह प्रत्येक वनस्पति है' कहना प्रत्येक मिश्रिता भाषा है।

९. अद्धा मिश्रिता (अद्धा मिस्सिया) - अद्धा का अर्थ काल है। यहाँ दिन रात समझना। जैसे दिन रहते किसी को कहना-उठ, रात्रि हो गई अथवा रात्रि रहते किसी को कहना-चलो, सूर्योदय हो गया। यह अद्धा मिश्रिता भाषा है।

१०. अद्धद्धा मिश्रिता (अद्धद्धा मिस्सिया) - दिन या रात्रि का एक देश अद्धद्धा कहा जाता है। जैसे पहले पौरुषी (पोरसी) के समय ही किसी को, 'उठो चलो दोपहर हो गया' कहना अद्धद्धा मिश्रिता भाषा है।

असच्चामोसा णं भंते! भासा अपज्जत्तिया कइविहा पण्णत्ता?

गोयमा! दुवालसविहा पण्णत्ता। तंजहा -

आमंतणी १, आणमणी २, जायणी ३, तह पुच्छणी य ४, पण्णवणी ५।
पच्चक्खाणी भासा ६, भासा इच्छाणुलोमा ७ य॥
अणभिग्गहिया भासा ८, भासा य अभिग्गहंमि बोद्धव्वा ९।
संसयकरणी भासा १०, वोयड ११, अव्वोयडा चेव १२॥ ३९१॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अपर्याप्तक असत्यामृषा भाषा कितनी प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! अपर्याप्तक असत्यामृषा भाषा बारह प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार हैं - १. आमंत्रणी २. आज्ञापनी ३. याचनी ४. पृच्छनी ५. प्रज्ञापनी ६. प्रत्याख्यानी ७. इच्छालोमा ८. अनभिगृहीता ९. अभिगृहीता १०. संशयकरणी ११. व्याकृता और १२. अव्याकृता भाषा।

विवेचन - व्यवहार भाषा के बारह भेद -

आमंतणी आणमणी, जायणी तह पुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी भासा, भासा इच्छाणुलोमा य॥ १॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणभिग्गहिया भासा, भासा य अभिग्गहम्मि बोद्धव्वा।
संसय करणी भासा, वोगड अव्वोगडा चेव॥ २॥

१. आमंत्रणी २. आज्ञापनी ३. याचनी ४. पृच्छनी ५. प्रज्ञापनी ६. प्रत्याख्यानी ७. इच्छानुलोमा ८. अनभिगृहीता (अणभिग्गहिया) ९. अभिगृहीता १०. संशयकरणी ११. व्याकृत (वोगडा), १२. अव्याकृत (अव्वोगडा)।

१. आमंत्रणी - 'हे देवदत्त!' इस प्रकार संबोधन रूप भाषा।

२. आज्ञापनी - आज्ञा रूप भाषा जैसे - यह करो, उठो, बैठो।

३. याचनी - 'अमुक वस्तु दो' इस प्रकार याचना रूप भाषा।

४. पृच्छनी - अज्ञात अथवा संदिग्ध वस्तु का ज्ञान करने के लिए उस विषय के ज्ञाता से पूछना।

५. प्रज्ञापनी - विनीत जन (शिष्यों) को उपदेश देना जिससे वे प्राणीवध से निवृत्त हों और दूसरे भव में दीर्घायु और नीरोग हों।

६. प्रत्याख्यानी - प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) करना या मांगने आदि पर निषेध करने रूप भाषा।

७. इच्छानुलोमा - कोई व्यक्ति किसी कार्य को शुरू करते हुए पूछे, उस पर यह कहना कि जैसी तुम्हारी इच्छा।

८. अनभिगृहीता (अणभिग्गहिया) - जिस भाषा से नियत का अर्थ निश्चय न हो। जैसे बहुत कार्य होने पर कोई किसी से पूछे कि अब क्या करूँ? इस पर यह कहना कि जो देखो सो करो।

९. अभिगृहीता (अभिग्गहिया) - जिस भाषा से नियत अर्थ का निश्चय हो। जैसे उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में यह कहना कि अभी यह कार्य करो, यह मत करो।

१०. संशयकरणी - जो भाषा अनेक अर्थ वाली होने से श्रोता के मन में संशय उत्पन्न करती है जैसे सैंधव लाओ। सैंधव शब्द लवण, वस्त्र, पुरुष और घोड़े के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस कारण श्रोता के मन में संशय उत्पन्न होता है कि इन चार वस्तुओं में से क्या लाने को कहा जा रहा है।

११. व्याकृता (वोगडा) - प्रकट स्पष्ट अर्थ वाली भाषा।

१२. अव्याकृता (अव्वोगडा) - जो भाषा गंभीर शब्द अर्थ वाली होने से स्पष्ट न हो।

भाषक और अभाषक की वक्तव्यता

जीवा णं भंते! किं भासगा, अभासगा?

गोयमा! जीवा भासगा वि, अभासगा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीव भाषक है या अभाषक है?

उत्तर - हे गौतम! जीव भाषक भी है और अभाषक भी हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'जीवा भासगा वि, अभासगा वि'?

गोयमा! जीवा दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - संसार समावण्णगा य असंसार समावण्णगा य। तत्थ णं जे ते असंसार समावण्णगा ते णं सिद्धा, सिद्धा णं अभासगा। तत्थ णं जे ते संसार समावण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - सेलेसी पडिवण्णगा य असेलेसी पडिवण्णगा य। तत्थ णं जे ते सेलेसी पडिवण्णगा ते णं अभासगा। तत्थ णं जे ते असेलेसी पडिवण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-एगिंदिया य अणेगिंदिया य। तत्थ णं जे ते एगिंदिया ते णं अभासगा। तत्थ णं जे ते अणेगिंदिया ते दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'जीवा भासगा वि अभासगा वि'॥ ३९२॥

कठिन शब्दार्थ - भासगा - भाषक, **सेलेसी पडिवण्णगा** - शैलेशी प्रतिपन्नक।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! यह आप किस प्रकार कहते हैं कि जीव भाषक भी है और अभाषक भी है?

उत्तर - हे गौतम! जीव दो प्रकार कहे गये हैं-१. संसार समापन्नक (संसारी) और २. असंसार समापन्नक (असंसारी)। उनमें से जो असंसार समापन्नक हैं वे सिद्ध हैं और सिद्ध अभाषक होते हैं। उनमें से जो संसारी (संसार समापन्नक) हैं वे दो प्रकार के हैं - शैलेशी प्रतिपन्नक और अशैलेशी प्रतिपन्नक। उनमें जो शैलेशी प्रतिपन्नक हैं वे अभाषक हैं। उनमें जो अशैलेशी प्रतिपन्नक हैं वे दो प्रकार के कहे गए हैं वे इस प्रकार हैं - एकेन्द्रिय - एक इन्द्रिय वाले और अनेकेन्द्रिय - अनेक इन्द्रिय वाले। उनमें से जो एकेन्द्रिय हैं वे अभाषक हैं। उनमें से जो अनेकेन्द्रिय है वे दो प्रकार के कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - १. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक। उनमें से अपर्याप्तक हैं वे अभाषक हैं। उनमें से जो पर्याप्तक हैं वे भाषक हैं। इसलिए हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि जीव भाषक भी है और अभाषक भी है।

णेरइया णं भंते! किं भासगा, अभासगा?

गोयमा! णेरइया भासगा वि, अभासगा वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक भाषक हैं या अभाषक हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक भाषक भी होते हैं और अभाषक भी होते हैं?

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ-'णेरइया भासगा वि, अभासगा वि?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! णेरइया दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य। तत्थ णं जे ते अपज्जत्तगा ते णं अभासगा, तत्थ णं जे ते पज्जत्तगा ते णं भासगा, से एएणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ-'णेरइया भासगा वि, अभासगा वि।' एवं एगिंदियवज्जाणं णिरंतरं भाणियव्वं॥ ३९३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आप किस कारण से ऐसा कहते हैं कि नैरयिक भाषक भी होते हैं और अभाषक भी होते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं-१. पर्याप्तक और २. अपर्याप्तक। उनमें से जो अपर्याप्तक हैं वे अभाषक हैं और जो पर्याप्तक हैं वे भाषक हैं। हे गौतम! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि नैरयिक भाषक भी हैं और अभाषक भी हैं। इसी प्रकार एकेन्द्रियों को छोड़ कर शेष सभी जीवों के लिए निरन्तर कहना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में सभी संसारी जीवों की भाषकता और अभाषकता का निरूपण किया गया है। एकेन्द्रिय को छोड़ कर शेष सभी जीव भाषक भी होते हैं और अभाषक भी होते हैं। एकेन्द्रिय अभाषक ही होते हैं क्योंकि उनके रसनेन्द्रिय (जिह्वा) नहीं होती है।

चतुर्विध भाषाजात

कइ णं भंते! भासज्जाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि भासज्जाया पण्णत्ता। तंजहा-सच्चमेगं भासज्जायं, बिइयं मोसं, तइयं सच्चामोसं, चउत्थं असच्चामोसं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाषा कितनी प्रकार की कही गई है?

उत्तर - हे गौतम! भाषा चार प्रकार की कही गई है। वह इस प्रकार है - १. पहली सत्य भाषा २. दूसरी मृषा भाषा ३. तीसरी सत्या मृषा और ४. चौथी असत्यामृषा।

जीवा णं भंते! किं सच्चं भासं भासंति, मोसं भासं भासंति, सच्चामोसं भासं भासंति, असच्चामोसं भासं भासंति?

गोयमा! जीवा सच्चं वि भासं भासंति, मोसं वि भासं भासंति, सच्चामोसं वि भासं भासंति, असच्चामोसं वि भासं भासंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या जीव सत्य भाषा बोलते हैं, मृषा भाषा बोलते हैं, सत्या मृषा भाषा बोलते हैं या असत्यामृषा भाषा बोलते हैं?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जीव सत्य भाषा भी बोलते हैं, मृषा भाषा भी बोलते हैं, सत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं और असत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं?

णेरइया णं भंते! किं सच्चं भासं भासंति जाव असच्चामोसं भासं भासंति?

गोयमा! णेरइया णं सच्चं वि भासं भासंति जाव असच्चामोसं वि भासं भासंति। एवं असुरकुमारा जाव थणियकुमारा। बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया य णो सच्चं०, णो मोसं०, णो सच्चामोसं भासं भासंति, असच्चामोसं भासं भासंति।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या नैरयिक सत्य भाषा बोलते हैं, मृषा भाषा बोलते हैं, सत्यामृषा भाषा बोलते हैं अथवा असत्यामृषा भाषा बोलते हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक सत्य भाषा भी बोलते हैं, मृषा भाषा भी बोलते हैं, सत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं और असत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं।

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों तक समझ लेना चाहिए।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीव न तो सत्य भाषा बोलते हैं न मृषा भाषा बोलते हैं न ही सत्यामृषा भाषा बोलते हैं किन्तु वे असत्यामृषा भाषा बोलते हैं।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया णं भंते! किं सच्चं भासं भासंति जाव असच्चामोसं भासं भासंति?

गोयमा! पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिया णो सच्चं भासं भासंति, णो मोसं भासं भासंति, णो सच्चामोसं भासं भासंति, एगं असच्चामोसं भासं भासंति, णण्णत्थ सिक्खापुव्वगं उत्तरगुणलद्धिं वा पडुच्च सच्चं वि भासं भासंति, मोसं वि भासं भासंति, सच्चामोसं वि भासं भासंति, असच्चामोसं वि भासं भासंति। मणुस्सा जाव वेमाणिया एए जहा जीवा तहा भाणियव्वा॥ ३९४॥

कठिन शब्दार्थ - सिक्खापुव्वगं - शिक्षा पूर्वक, **उत्तरगुणलद्धिं** - उत्तर गुण लब्धि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! क्या पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव सत्य भाषा बोलते हैं यावत् असत्यामृषा भाषा बोलते हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीव सत्य भाषा, मृषा भाषा और सत्यामृषा भाषा नहीं बोलते हैं किन्तु एक असत्यामृषा भाषा बोलते हैं सिवाय शिक्षा पूर्वक या उत्तर गुण लब्धि की अपेक्षा से सत्य भाषा भी बोलते हैं, मृषा भाषा भी बोलते हैं, सत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं तथा असत्यामृषा भाषा भी बोलते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में चौबीस दण्डक के जीव कौन कौनसी भाषा बोलते हैं इसका निरूपण किया गया है। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय जीवों में सत्य भाषा, मृषा भाषा और सत्यामृषा इन तीन भाषाओं का निषेध किया गया है क्योंकि उनमें सम्यग् ज्ञान नहीं होता और न ही दूसरों को ठगने आदि का भी विचार होता। तिर्यंच पंचेन्द्रिय भी यथावस्थित वस्तु के प्रतिपादन के अभिप्राय से सम्यक् (यथार्थ) नहीं बोलते और न ही दूसरों को ठगने के आशय से बोलते हैं किन्तु जब बोलते हैं तब क्रोधित अवस्था में या दूसरों को मारने के अभिप्राय से एक असत्यामृषा ही बोलते हैं अतः उनकी भाषा असत्यामृषा होती है। क्या सभी की एक असत्यामृषा भाषा ही होती है? इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं-नहीं, वे शिक्षा आदि के सिवाय सत्य आदि भाषा नहीं बोलते हैं किन्तु तोता, मैना आदि शिक्षा पूर्वक संस्कार विशेष से या तथा प्रकार के क्षयोपशम की विशेषता से जाति स्मरण रूप या विशिष्ट व्यवहार की कुशलता रूप लब्धि की अपेक्षा सत्य आदि चारों भाषा बोलते हैं।

भाषा द्रव्यों के विभिन्न रूप

जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गिण्हइ ताइं किं ठियाइं गिण्हइ, अठियाइं गिण्हइ?

गोयमा! ठियाइं गिण्हइ, णो अठियाइं गिण्हइ।

कठिन शब्दार्थ - ठियाइं - स्थित-गमन क्रिया रहित, **अठियाइं** - अस्थित।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को भाषा रूप में ग्रहण करता है, क्या वे स्थित (स्थिर) द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है किन्तु अस्थित द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता।

जाइं भंते! ठियाइं गिण्हइ ताइं किं दव्वओ गिण्हइ, खेत्तओ गिण्हइ, कालओ गिण्हइ, भावओ गिण्हइ?

गोयमा! दव्वओ वि गिण्हइ, खेत्तओ वि गिण्हइ, कालओ वि गिण्हइ, भावओ वि गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है उन्हें क्या द्रव्य से ग्रहण करता है, क्षेत्र से ग्रहण करता है, काल से ग्रहण करता है या भाव से ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! वह स्थित द्रव्यों को द्रव्य से भी ग्रहण करता है, क्षेत्र से भी ग्रहण करता है, काल से भी ग्रहण करता है और भाव से भी ग्रहण करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाइं भंते! दव्वओ गिण्हइ ताइं किं एगपएसियाइं गिण्हइ, दुपएसियाइं जाव अणंत पएसियाइं गिण्हइ?

गोयमा! णो एगपएसियांइं गिण्हइ जाव णो असंखिज्ज पएसियाइं गिण्हइ, अणंत पएसियाइं गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन स्थित द्रव्यों को द्रव्य से ग्रहण करता है क्या वह एक प्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता है, द्विप्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् अनन्त प्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव न तो एक प्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता हैं यावत् न असंख्यात प्रदेशी द्रव्यों को ग्रहण करता है किन्तु अनन्त प्रदेश वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बताया गया है कि जीव भाषा रूप में स्थित (स्थिर) रहे हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है जो द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से ग्रहण किये जाते हैं। जीव द्रव्य से अनन्त परमाणु रूप भाषा स्कन्धों को ग्रहण करता है किन्तु एक परमाणु, दो परमाणु यावत् असंख्यात परमाणु के स्कन्धों को ग्रहण नहीं करता क्योंकि वे स्वभाव से ही जीवों द्वारा ग्रहण करने के योग्य नहीं होते हैं। जीव अनन्त प्रदेशी द्रव्यों को ही ग्रहण करता है क्योंकि अनंत परमाणुओं से बना हुआ स्कन्ध ही जीव द्वारा ग्राह्य होता है।

जाइं खेत्तओ गिण्हइ ताइं किं एगपएसोगाढाइं गिण्हइ, दुपएसोगाढाइं गिण्हइ जाव असंखिज्ज पएसोगाढाइं गिण्हइ?

गोयमा! णो एगपएसोगाढाइं गिण्हइ जाव णो संखिज्ज पएसोगाढाइं गिण्हइ, असंखिज्ज पएसोगाढाइं गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जिन स्थित द्रव्यों को जीव क्षेत्र से ग्रहण करता है क्या वे एक प्रदेशावगाढ (एक प्रदेश में रहे हुए) दो प्रदेश में रहे हुए यावत् असंख्यात प्रदेशों में रहे हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव न तो एक प्रदेशावगाढ़ (एक प्रदेश) में रहे हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् न संख्यात प्रदेशों में रहे हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है, किन्तु असंख्यात प्रदेशावगाढ़ (असंख्यात प्रदेशों) में रहे हुए द्रव्यों को ग्रहण करता है।

विवेचन - क्षेत्र से जीव असंख्यात प्रदेशावगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है क्योंकि एक प्रदेश आदि अवगाढ़ द्रव्य स्वभाव से ही ग्रहण के अयोग्य हैं। लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात ही हैं इसलिए अनन्त प्रदेशावगाढ़ नहीं कहना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाइं कालओ गिण्हइ ताइं किं एगसमयठिइयाइं गिण्हइ, दुसमयठिइयाइं गिण्हइ जाव असंखिज्ज समयठिइयाइं गिण्हइ?

गोयमा! एगसमयठिइयाइं वि गिण्हइ, दुसमयठिइयाइं वि गिण्हइ जाव असंखिज्ज समयठिइयाइं वि गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन स्थित द्रव्यों को काल से ग्रहण करता है तो क्या वह एक समय की स्थिति वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, दो समय की स्थिति वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव एक समय की स्थिति वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, दो समय की स्थिति वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है।

विवेचन - काल से जीव एक समय की स्थिति वाले यावत् असंख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है क्योंकि पुद्गलों की स्थिति असंख्यात काल तक की संभव है।

जाइं भावओ गिण्हइ ताइं किं वण्णमंताइं गिण्हइ, गंधमंताइं गिण्हइ, रसमंताइं गिण्हइ, फासमंताइं गिण्हइ?

गोयमा! वण्णमंताइं वि गिण्हइ जाव फासमंताइं वि गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन स्थित द्रव्यों को भाव से ग्रहण करता है क्या वह वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, गंध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है या स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव वर्ण वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, गन्ध वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है, रस वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है और स्पर्श वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है।

जाइं भावओ वण्णमंताइं गिण्हइ ताइं किं एगवण्णाइं गिण्हइ जाव पंचवण्णाइं गिण्हइ?

गोयमा! गहणदव्वाइं पडुच्च एगवण्णाइं वि गिण्हइ जाव पंचवण्णाइं वि गिण्हइ, सव्वग्गहणं पडुच्च णियमा पंचवण्णाइं गिण्हइ, तंजहा - कालाइं णीलाइं लोहियाइं हालिद्दाइं सुक्किल्लाइं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव भाव से जिन वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है तो क्या वह एक वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् पांच वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! ग्रहण द्रव्यों की अपेक्षा से एक वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् पांच वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है। किन्तु सर्व ग्रहण की अपेक्षा से वह नियम से पांच वर्ण वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है। जो इस प्रकार है - काले, नीले, लाल, पीले और सफेद।

विवेचन - भाव से भाषा रूप में ग्रहण किये हुए द्रव्य, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाले होते हैं। भाव से वर्ण वाले जिन भाषा द्रव्यों को जीव ग्रहण करता है वे **"गहण दव्वाइं"** - ग्रहण द्रव्य - ग्रहण करने योग्य द्रव्य कितनेक एक वर्ण वाले, कितनेक दो वर्ण वाले, कितनेक तीन वर्ण वाले, कितनेक चार वर्ण वाले और कितनेक पांच वर्ण वाले होते हैं जबकि सर्व ग्रहण की अपेक्षा एक प्रयत्न से ग्रहण किये हुए सभी द्रव्यों के समुदाय की अपेक्षा वे नियम से पांच वर्ण वाले होते हैं।

ग्रहण द्रव्य - एक बार जो भाषा के द्रव्य स्कन्ध ग्रहण किये जाते हैं। उनमें प्रत्येक स्कन्ध में रहे हुए वर्ण आदि को बताना। इसे स्थान मार्गणा भी कहते हैं।

सर्व ग्रहण - सभी स्कन्धों के वर्णादि को समुच्चय रूप से बताना। इसे विधान मार्गणा भी कहते हैं।

जाइं वण्णओ कालाइं गिण्हइ ताइं किं एगगुणकालाइं गिण्हइ जाव अणंत गुणकालाइं गिण्हइ?

गोयमा! एगगुणकालाइं वि गिण्हइ जाव अणंतगुण कालाइं वि गिण्हइ। एवं जाव सुक्किल्लाइं वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव वर्ण से जिन स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है क्या वह एक गुण काले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् अनंत गुण काले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव एक गुण काले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् अनंतगुण काले द्रव्यों को ग्रहण करता है। इसी तरह यावत् शुक्ल वर्ण के द्रव्यों तक भी कह देना चाहिए।

जाइं भावओ गंधमंताइं गिण्हइ ताइं किं एगगंधाइं गिण्हइ, दुगंधाइं गिण्हइ?

गोयमा! गहणदव्वाइं पडुच्च एगगंधाइं वि गिण्हइ दुगंधाइं वि गिण्हइ, सव्वग्गहणं पडुच्च णियमा दुगंधाइं गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाव से जीव जिन गंध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है क्या वह एक गंध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है या दो गंध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! ग्रहण की अपेक्षा से वह एक गन्ध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है तथा दो गंध वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है किन्तु सर्व ग्रहण की अपेक्षा नियम से दो गंध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाइं गंधओ सुब्भिगंधाइं गिण्हइ, ताइं किं एगगुण सुब्भिगंधाइं गिण्हइ जाव अणंतगुण सुब्भिगंधाइं गिण्हइ?

गोयमा! एगगुण सुब्भिगंधाइं वि गिण्हइ जाव अणंतगुण सुब्भिगंधाइं वि गिण्हइ। एवं दुब्भिगंधाइं वि गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव गंध से जिन द्रव्यों को ग्रहण करता है क्या वह एक गुण सुगन्ध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् अनंत गुण सुगन्ध वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव एक गुण सुगन्ध वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है यावत् अनन्त गुण सुगन्ध वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है। इसी तरह दुर्गन्ध वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है।

जाइं भावओ रस मंताइं गिण्हइ ताइं किं एग रसाइं गिण्हइ जाव किं पंच रसाइं गिण्हइ?

गोयमा! गहणदव्वाइं पडुच्च एग रसाइं वि गिण्हइ जाव पंच रसाइं वि गिण्हइ, सव्वग्गहणं पडुच्च णियमा पंच रसाइं गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव भाव से रस वाले जिन द्रव्यों को ग्रहण करता है तो क्या वह एक रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् पांच रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव ग्रहण द्रव्यों की अपेक्षा से वह एक रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् पांच रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है किन्तु सर्व ग्रहण की अपेक्षा से नियम से पांच रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है।

जाइं रसओ तित्त रसाइं गिण्हइ ताइं किं एगगुणतित्तरसाइं गिण्हइ जाव अणंत गुण तित्तरसाइं गिण्हइ?

गोयमा! एगगुणतित्तरसाइं वि गिण्हइ जाव अणंत गुण त्तित्तरसाइं वि गिण्हइ, एवं जाव महुर रसाइं वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव रस से तीखे रस वाले जिन द्रव्यों को ग्रहण करता है क्या वह एक गुण तीखे रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् अनन्त गुण तीखे रस वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! वह एक गुण तीखे रस वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है यावत् अनन्त गुण तीखे रस वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है। इसी प्रकार यावत् मीठे रस वाले द्रव्यों के विषय में भी कह देना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाइं भावओ फासमंताइं गिण्हइ ताइं किं एगफासाइं गिण्हइ जाव अट्ठफासाइं गिण्हइ?

गोयमा! गहणदव्वाइं पडुच्च णो एगफासाइं गिण्हइ, दुफासाइं गिण्हइ जाव चउफासाइं गिण्हइ, णो पंचफासाइं गिण्हइ जाव णो अट्ठफासाइं गिण्हइ, सव्वग्गहणं पडुच्च णियमा चउफासाइं गिण्हइ, तंजहा - सीयफासाइं गिण्हइ, उसिणफासाइं गिण्हइ, णिद्धफासाइं गिण्हइ, लुक्खफासाइं गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाव से जिन स्पर्श द्रव्यों को जीव ग्रहण करता है क्या वह एक स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् आठ स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! ग्रहण द्रव्यों की अपेक्षा से एक स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है दो स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् चार स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है किन्तु पांच स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता यावत् आठ स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है। सर्व ग्रहण की अपेक्षा से नियम से चार स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है वे इस प्रकार है - शीत स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, उष्ण स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है, स्निग्ध स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है और रूक्ष स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है।

विवेचन - भाव से स्पर्श वाले जिन द्रव्यों को जीव भाषा रूप में ग्रहण करता है वे ग्रहण द्रव्य की अपेक्षा एक स्पर्शी नहीं होते क्योंकि एक परमाणु में दो स्पर्श अवश्य होते हैं जैसा कि कहा है -

कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः।
एक रस वर्णगन्धो, द्वि स्पर्शः कार्य लिंगश्च॥

स्थूल अवयविका जो अन्तिम कारण होता है अर्थात् जिस अन्तिम कारण से स्थूल अवयवी बनता है वह परमाणु सूक्ष्म और नित्य होता है। उसमें एक रस, एक गन्ध और एक वर्ण पाया जाता है और दो स्पर्श पाये जाते हैं। वह परमाणु उसके कार्य रूप से पहचाना जाता है। उस परमाणु के फिर दो विभाग नहीं हो सकते हैं।

अतः वे द्रव्य दो स्पर्शी-दो स्पर्श वाले, तीन स्पर्श वाले या चतुःस्पर्शी-चार स्पर्श वाले होते हैं किन्तु पांच स्पर्श वाले से लेकर आठ स्पर्श वाले तक नहीं होते। सर्व ग्रहण की अपेक्षा वे नियम से शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है।

कर्कश, मृदु, गुरु, लघु ये चार स्पर्श स्वाभाविक नहीं होते हैं संयोग जन्य होते हैं। अतः परमाणु से लगाकर सूक्ष्म अनंत प्रदेशी स्कन्धों तक अर्थात् सूक्ष्म परिणाम वाले पुद्गलों में नहीं पाये जाते हैं। भाषा के द्रव्य भी सूक्ष्म परिणाम परिणत होने से उसमें भी ये चार स्पर्श नहीं पाये जाते हैं। बादर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणाम वाले स्कन्धों में ही कर्कश आदि चार स्पर्श पाये जाते हैं। जहाँ कर्कश आदि स्पर्श होते हैं वहाँ वर्णादि बीस ही बोल पाये जाते हैं।

जाइं फासओ सीयाइं गिण्हइ ताइं किं एग गुण सीयाइं गिण्हइ जाव अणंत गुण सीयाइं गिण्हइ?

गोयमा! एगगुणसीयाइं वि गिण्हइ जाव अणंतगुण सीयाइं वि गिण्हइ, एवं उसिणणिद्धलुक्खाइं जाव अणंतगुणाइं वि गिण्हइ॥ ३९५॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव स्पर्श से जिन शीत स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है क्या वह एक गुण शीत स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है यावत् अनन्तगुण शीत स्पर्शवाले द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव एक गुण शीत द्रव्यों को भी ग्रहण करता है यावत् अनंत गुण शीत स्पर्श वाले द्रव्यों को भी ग्रहण करता है। इसी प्रकार उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष स्पर्श वाले यावत् अनंत गुण उष्ण आदि स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है तक कहना चाहिये।

जाइं भंते! जाव अणंतगुण लुक्खाइं गिण्हइ ताइं किं पुट्ठाइं गिण्हइ, अपुट्ठाइं गिण्हइ?

गोयमा! पुट्ठाइं गिण्हइ, णो अपुट्ठाइं गिण्हइ।

कठिन शब्दार्थ - पुट्ठाइं - स्पृष्ट, **अपुट्ठाइं** - अस्पृष्ट।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन एक गुण काले यावत् अनंत गुण रूक्ष स्पर्श वाले द्रव्यों को ग्रहण करता है तो क्या वह स्पृष्ट द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्पृष्ट द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव स्पृष्ट द्रव्यों को ग्रहण करता है, अस्पृष्ट द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है।

जाइं भंते! पुट्ठाइं गिण्हइ ताइं किं ओगाढाइं गिण्हइ, अणोगाढाइं गिण्हइ।

गोयमा! ओगाढाइं गिण्हइ, णो अणोगाढाइं गिण्हइ।

कठिन शब्दार्थ - ओगाढाइं - अवगाढ, **अणोगाढाइं** - अनवगाढ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन स्पृष्ट द्रव्यों को ग्रहण करता है क्या वह अवगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है या अनवगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव अवगाढ द्रव्यों को ग्रहण करता है, अनवगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है।

जाइं भंते! ओगाढाइं गिण्हइ ताइं किं अणंतरोगाढाइं गिण्हइ, परंपरोगाढाइं गिण्हइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! अणंतरोगाढाइं गिण्हइ, णो परंपरोगाढाइं गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन अवगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है क्या वह अनन्तरावगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है या परम्परावगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव अनन्तरावगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है किन्तु परम्परावगाढ द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है।

जाइं भंते! अणंतरोगाढाइं गिण्हइ ताइं किं अणूइं गिण्हइ, बायराइं गिण्हइ?

गोयमा! अणूइं वि गिण्हइ, बायराइं वि गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन अनन्तरावगाढ़ द्रव्यों को ग्रहण करता है क्या वह अणु द्रव्यों को ग्रहण करता है या बादर द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव अणु द्रव्यों को भी ग्रहण करता है और बादर द्रव्यों को भी ग्रहण करता है।

जाइं भंते! अणूइं वि गिण्हइ, बायराइं वि गिण्हइ ताइं किं उड्ढं गिण्हइ, अहे गिण्हइ, तिरियं गिण्हइ?

गोयमा! उड्ढं वि गिण्हइ, अहे वि गिण्हइ, तिरियं वि गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन अणु और बादर द्रव्यों को ग्रहण करता है तो क्या वह ऊर्ध्व दिशा में स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अधो दिशा में स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या तिरछी दिशा में स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव ऊँची, नीची और तिरछी दिशा में स्थित अणु या बादर द्रव्यों को ग्रहण करता है।

जाइं भंते! उड्ढं वि गिण्हइ, अहे वि गिण्हइ, तिरियं वि गिण्हइ ताइं किं आइं गिण्हइ, मज्झे गिण्हइ, पज्जवसाणे गिण्हइ?

गोयमा! आइं वि गिण्हइ, मज्झे वि गिण्हइ, पज्जवसाणे वि गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन ऊर्ध्व (ऊँची) अधो (नीची) और तिरछी दिशा के द्रव्यों को ग्रहण करता है तो क्या वह उन्हें आदि में ग्रहण करता है मध्य में ग्रहण करता है या अन्त में ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव उन द्रव्यों को आदि में भी ग्रहण करता है, मध्य में भी ग्रहण करता है और अन्त में भी ग्रहण करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाइं भंते! आइं वि गिण्हइ, मज्झे वि गिण्हइ, पज्जवसाणे वि गिण्हइ ताइं किं सविसए गिण्हइ, अविसए गिण्हइ?

गोयमा! सविसए गिण्हइ, णो अविसए गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को आदि मध्य और अन्त में ग्रहण करता है तो क्या वह स्व विषयक द्रव्यों को ग्रहण करता है या अविषयक द्रव्यों को ग्रहण करता है।

उत्तर - हे गौतम! जीव स्व विषयक द्रव्यों को ग्रहण करता है किन्तु अविषयक द्रव्यों को ग्रहण नहीं करता है।

जाइं भंते! सविसए गिण्हइ ताइं किं आणुपुव्विं गिण्हइ, अणाणुपुव्विं गिण्हइ?

गोयमा! आणुपुव्विं गिण्हइ, णो अणाणुपुव्विं गिण्हइ।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन स्व विषयक द्रव्यों को ग्रहण करता है वह आनुपूर्वी से ग्रहण करता है या अनानुपूर्वी से ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव उन स्वविषयक द्रव्यों को आनुपूर्वी से ग्रहण करता है किन्तु अनानुपूर्वी से ग्रहण नहीं करता है।

जाइं भंते! आणुपुव्विं गिण्हइ ताइं किं तिदिसिं गिण्हइ जाव छ दिसिं गिण्हइ?

गोयमा! णियमा छ दिसिं गिण्हइ।

''पुट्ठोगाढअणंतर अणू य तह बायरे य उड्ढमहे।
आइविसयाणुपुव्विं णियमा तह छ दिसिं चेव॥ ३९६॥''

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को आनुपूर्वी से ग्रहण करता है क्या उन्हें तीन दिशाओं से ग्रहण करता है यावत् छह दिशाओं से ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! आनुपूर्वी से ग्रहण किये हुए द्रव्यों को नियम से छह दिशाओं से ग्रहण करता है।

गाथार्थ - स्पृष्ट, अवगाढ, अनन्तरावगाढ़, अणु तथा बादर, ऊर्ध्व अधो आदि स्व विषयक आनुपूर्वी तथा नियम से छह दिशाओं से भाषा योग्य द्रव्यों को जीव ग्रहण करता है।

विवेचन - जो पुद्गल आत्मा से स्पृष्ट (स्पर्श किये हुए) होते हैं उन्हें ग्रहण करते हैं, अस्पृष्ट को ग्रहण नहीं करते। स्पृष्ट पुद्गलों में भी जो आत्म प्रदेशों के साथ एक क्षेत्र में रहे हुए हैं उन अवगाढ़ पुद्गलों को ग्रहण किया जाता है, अनवगाढ़ पुद्गलों को ग्रहण नहीं किया जाता। अवगाढ़ पुद्गलों में भी अनंतरावगाढ़, अव्यवहित (आंतरा रहित) पुद्गलों को ग्रहण किया जाता है किन्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परम्परावगाढ़ पुद्गल ग्रहण नहीं किये जाते। अनंतरावगाढ़ अणु (थोड़े प्रदेश वाले) और बादर (बहुत प्रदेश वाले) दोनों तरह के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं। ये अणु बादर पुद्गल ऊपर के, नीचे के और तिरछे के ग्रहण किये जाते हैं। ये द्रव्य अन्तर्मुहूर्त्त तक ग्रहण योग्य होते हैं। इन्हें प्रथम, द्वितीय आदि समयों में तथा अन्त समय में भी ग्रहण किया जाता है। ये पुद्गल स्व विषय यानी श्रोत्रेन्द्रिय के विषय होने पर ग्रहण किये जाते हैं तथा आनुपूर्वी से यानी क्रम से ग्रहण किये जाते हैं अर्थात् जो समीप होते हैं उन्हें पहले व उनसे आगे के पुद्गलों को बाद में ग्रहण किया जाता है तथा नियमपूर्वक छहों दिशाओं से आये हुए पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं। पुट्ठा ओगाढ आदि चौदह बोलों का अर्थ इस प्रकार है-

१. पुट्ठा (स्पृष्ट) - आत्म-प्रदेशों के साथ स्पर्श में आये हुए पुद्गल।

२. ओगाढा (अवगाढ) - आत्मा के प्रदेशों का अवगाहन आकाश के जितने प्रदेशों में है, उन्हीं प्रदेशों में रहे हुए भाषा के पुद्गलों का ग्रहण होना। पूरा शरीर जितना क्षेत्र 'अवगाढ़' में ले सकते हैं।

३. अन्तरावगाढ़ - स्व स्व अवगाहित प्रदेशों का ग्रहण समझना अर्थात् स्वर यंत्र की जगह से ही लेना (जहाँ से निस्सरण होता है - वहीं से लेना)। हाथ, पैर आदि दूसरी जगह के प्रदेशों से नहीं लेना। 'कागलिया' भी भाषा बोलने का एक यंत्र है। इसके आगे पीछे होने से गले में खरखराहट आदि होकर स्वर बिगड़ जाता है।

४-५. अणु बादर - चाहे वे स्कन्ध कम प्रदेश वाले हों या अधिक प्रदेशों वाले हों - परन्तु अनन्त प्रदेशी स्कन्धों (उससे प्रायोग्य छोटे-बडे) को ग्रहण करती है। सूक्ष्म स्कन्ध होने पर भी मेदे के छोटे बड़े कणवत् अणु-बादर।

६-७-८. ऊर्ध्व, अधः तिर्यग् दिशा से पुद्गल ग्रहण करना-स्वरयंत्र असंख्य प्रदेशावगाढ़ होने से उसके तीन विभाग करना- उन तीनों विभाग की दिशाओं से भाषा के योग्य पुद्गल ग्रहण करना। ऊर्ध्व, अधः एवं तिर्यग् ग्रहण में तो - 'अवगाहित शरीरस्थ जीव प्रदेशों की ऊर्ध्वादि दिशा से भाषा के पुद्गल ग्रहण करना बताया है।'

९-१०-११. आदि, मध्य, अन्त में ग्रहण - भाषा बोलने के असंख्य समय के अन्तर्मुहूर्त के काल के तीन विभाग करना - उसमें आदि में, मध्य में तथा अन्त में ग्रहण करता है।

१२. आनुपूर्वी से - अनन्तरावगाढ़ क्षेत्र में अनन्त वर्गणाओं के जो असंख्यात प्रदेशावगाढ़ स्कन्ध रहे हुए हैं। उनमें से भाषा के योग्य द्रव्य जिस अनुक्रम में ग्रहण करने हो-वह अनुक्रम 'आनुपूर्वी' से समझना। भाषा वर्गणा के पुद्गल आत्मावगाढ़ हो जाने पर भी जिस भाषा यंत्र से वे ग्रहण किये जाते हैं। उनमें भी पहले समीप वाले बाद में उसके आगे वालों का ग्रहण करता है। अतः 'आनुपूर्वी' शब्द देने की आवश्यकता रहती है। आनुपूर्वी में यहाँ काल की अपेक्षा क्रम समझना। क्षेत्र वही होने पर भी अमुक पुद्गल प्रथम समय में ग्रहण करने के, अमुक द्वितीय समय में ग्रहण करने के इत्यादि रूप से जो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काल की अपेक्षा पहले पीछे का क्रम है - वह 'आनुपूर्वी' शब्द से कहा गया है जैसे कुंजड़े के सब्जी बेचने में दृष्टि-आज बेचने की, कल बेचने की इस तरह।

१३. स्व विषय का लेवे - भाषा योग्य वर्गणा सभी आकाश प्रदेशों पर सभी वर्गणाएं होने पर भी भाषा वर्गणा के पुद्गल ही ग्रहण करना।

१४. नियमा छह दिशा से - अवगाहित छहों दिशाओं से अवगाहना क्षेत्र में आये हुए पुद्गलों का ग्रहण करना बताया है।

जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गिण्हइ ताइं किं संतरं गिण्हइ, णिरंतरं गिण्हइ?

गोयमा! संतरं वि गिण्हइ, णिरंतरं वि गिण्हइ। संतरं गिण्हमाणे जहण्णेणं एगं समयं, उक्कोसेणं असंखिज्ज समए अंतरं कट्टु गिण्हइ, णिरंतरं गिण्हमाणे जहण्णेणं दो समए, उक्कोसेणं असंखिज्ज समए अणुसमयं अविरहियं णिरंतरं गिण्हइ।

कठिन शब्दार्थ - संतरं - सान्तर, **णिरंतरं** - निरन्तर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को भाषा रूप में ग्रहण करता है तो क्या वह उन्हें सान्तर ग्रहण करता है या निरन्तर ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव उन द्रव्यों को सान्तर भी ग्रहण करता है और निरन्तर भी ग्रहण करता है। सान्तर ग्रहण करता हुआ जीव जघन्य एक समय का और उत्कृष्ट असंख्यात समय का अन्तर करके ग्रहण करता है और निरन्तर ग्रहण करता हुआ जीव जघन्य दो समय और उत्कृष्ट असंख्यात समय तक अनुसमय (प्रतिसमय) अविरहित-बिना विरह के निरन्तर ग्रहण करता है।

विवेचन - जीव जिन द्रव्यों को भाषा रूप में ग्रहण करता है उन्हें सान्तर भी ग्रहण करता है और निरन्तर भी ग्रहण करता है। यह अन्तर जघन्य एक समय का उत्कृष्ट असंख्यात समय का होता है। जब निरन्तर ग्रहण करता है तो जघन्य दो समय उत्कृष्ट असंख्यात समय तक प्रति समय बिना व्यवधान (अन्तर) के लगातार ग्रहण करता है।

सान्तर-निरन्तर ग्रहण - जीव अमुक समय तक लगातार बोलता रहे तो उसे उन द्रव्यों को निरन्तर ग्रहण करना पड़ता है। यदि बोलना सतत् चालू न रखे तो सान्तर ग्रहण करता है। प्रत्येक अक्षर वाक्य आदि बोलने के बाद भाषा वर्गणा के द्रव्यों को ग्रहण करने में व्यवधान पड़ता ही है। व्यवहार में निरन्तर घण्टों तक बोलने वालों के बीच बीच में भी व्यवधान (अन्तर) समझना चाहिये।

जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गहियाइं णिसिरइ ताइं किं संतरं णिसिरइ, णिरंतरं णिसिरइ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा! संतरं णिसिरइ, णो णिरंतरं णिसिरइ। संतरं णिस्सिरमाणे एगेणं समएणं गेण्हइ, एगेणं समएणं णिसिरइ, एएणं गहणणिसिरणोवाएणं जहण्णेणं दुसमइयं उक्कोसेणं असंखिज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं गहणणिसिरणोवायं करेइ॥ ३९७॥

कठिन शब्दार्थ - **णिसिरइ** - निकालता है, **गहणणिसिरणोवाएणं** - ग्रहण और निःसरण के उपाय से।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को भाषा के रूप में ग्रहण करके निकालता है क्या वह उन्हें सान्तर निकालता है या निरन्तर निकालता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव उन्हें सान्तर निकालता है, निरन्तर नहीं निकालता है। सान्तर निकालता हुआ जीव एक समय में ग्रहण करता है और दूसरे समय में निकालता है। इस ग्रहण और निःसरण के उपाय से जीव जघन्य दो समय और उत्कृष्ट असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त तक ग्रहण और निःसरण करता है।

विवेचन - भाषा रूप में ग्रहण किये हुए द्रव्यों को जीव सान्तर निकालता है, निरन्तर नहीं निकालता। सान्तर भाषा पुद्गलों को निकालने वाला जीव पहले समय में ग्रहण करता है दूसरे समय में निकालता है। इस तरह जघन्य दो समय के अन्तर से उत्कृष्ट असंख्यात समय यानी अन्तर्मुहूर्त के अन्तर से निकालता है।

सान्तर निस्सरण - यद्यपि ग्रहण के अनन्तर समय में भाषा के पुद्गल निकलने से उत्कृष्ट असंख्यात समयों तक निरन्तर निकलते हुए भी जिस समय ग्रहण करते हैं उसी समय के उनका निस्सरण नहीं होने से आगमकारों ने सान्तर निस्सरण ही बताया है। क्योंकि निस्सरण तो गृहीत पुद्गलों का ही होता है। ग्रहण तो नये-नये पुद्गलों का होने से एवं प्रति समय चालू रहने से निरन्तर ग्रहण भी बताया है।

शंका - निरन्तर निस्सरण नहीं बताने का क्या कारण है?

समाधान - प्रथम समय में गृहीत पुद्गलों का उसी (प्रथम) समय में निस्सरण होवे तो निरन्तर निस्सरण हो सकता है परन्तु इस प्रकार होता नहीं है। प्रथम समय में गृहीत पुद्गलों का निस्सरण दूसरे समय में होता है अर्थात् ग्रहण के अनन्तर समय में निस्सरण होता है। उसी समय में निस्सरण नहीं होने से निरन्तर निस्सरण नहीं बताया है तथा प्रथम समय के गृहीत पुद्गल यदि अनेक समय तक निकलते रहे तो भी निरन्तर निस्सरण हो सकता है जैसे- प्रथम समय (सर्व बन्ध) के गृहीत आहार के पुद्गल अन्तिम समय (यावज्जीवन) तक निकलते रहते हैं। परन्तु भाषा के पुद्गलों में ऐसा नहीं होता है। प्रथम समय के गृहीत पुद्गल द्वितीय समय में सभी एक साथ निकल जाते हैं अतः यहाँ पर निरन्तर निस्सरण नहीं बताया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गहियाइं णिसिरइ ताइं किं भिण्णाइं णिसिरइ, अभिण्णाइं णिसिरइ?

गोयमा! भिण्णाइं वि णिसिरइ, अभिण्णाइं वि णिसिरइ। जाइं भिण्णाइं णिसिरइ ताइं अणंतगुणपरिवुड्ढीए णं परिवुड्ढमाणाइं लोयंतं फुसंति, जाइं अभिण्णाइं णिसिरइ ताइं असंखिज्जाओ ओगाहणवग्गणाओ गंता भेयमावज्जंति, संखिज्जाइं जोयणाइं गंता विद्धंसमागच्छंति॥ ३९८॥

कठिन शब्दार्थ - भिण्णाइं - भिन्न-भेद प्राप्त-भेदन किये हुए को।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव भाषा के ग्रहण किये हुए जिन द्रव्यों को निकालता है क्या उन द्रव्यों को भिन्न निकालता है या अभिन्न निकालता है।

उत्तर - हे गौतम! कोई जीव भिन्न द्रव्यों को निकालता है तो कोई अभिन्न (भेदन नहीं किये हुए) द्रव्यों को निकालता है। जिन भिन्न द्रव्यों को निकालता है वे अनन्त गुण वृद्धि से वृद्धि को प्राप्त होते हुए लोकान्त को स्पर्श करते हैं तथा जिन अभिन्न द्रव्यों को निकालता है वे असंख्यात अवगाहन वर्गणा तक जा कर भेद को प्राप्त हो जाते हैं और फिर संख्यात योजनों तक जाकर विध्वंस-विनाश को प्राप्त हो जाते हैं।

विवेचन - भाषा रूप से ग्रहण किये हुए पुद्गल जीव भिन्न भी निकालता है और अभिन्न भी निकालता है। जो भिन्न निकालता है वे अनन्त गुण वृद्धि से बढ़ते हुए लोकान्त का स्पर्श करते हैं। जो अभिन्न निकालता है वे असंख्यात अवगाहना वर्गणा तक जाकर भिन्न होते हैं और वे भिन्न हुए पुद्गल संख्यात योजन जाकर नष्ट होते हैं।

ओगाहणवग्गणाओ (अवगाहना वर्गणा) - एक एक भाषा द्रव्य के आधार भूत असंख्यात आकाशप्रदेश के क्षेत्र विभाग रूप अवगाहना - उसकी वर्गणा अर्थात् समूह। एक अंगुल जितने क्षेत्र में भी असंख्यात अवगाहना वर्गणा हो जाती है। इसी को विशेष स्पष्ट करने के लिए बताया है कि - 'संख्यात योजन तक जाकर विध्वंस को प्राप्त हो जाते हैं' अर्थात् - **भेद प्राप्त** - भाषा के योग्य श्राव्य (सुनने के योग्य) नहीं रहना।

विध्वंस - तरंगित नहीं होना अर्थात् शब्द वर्गणा रूप में ही नहीं रहना, पूर्ण विध्वंस हो जाना।

भेयमावज्जति - 'भेद को प्राप्त होना।' यहाँ पर भेदित होने का अर्थ अन्य पुद्गलों को वासित करने की शक्ति कम हो जाना। किन्तु 'पांच प्रकार का भेद होना' ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिए।

विद्धंसमागच्छंति - वासित करने की शक्ति पूर्ण रूप से नष्ट हो जाना।

तीव्र मंद प्रयत्न - जिसमें योगों की शक्ति अर्थात् वीर्य का मन्द व्यापार हो उसे मंद प्रयत्न की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाषा कहा गया है। यदि ब्रॉडकास्ट (ध्वनिप्रसारित करना) आदि का तीव्र प्रयत्न होवे तो अपनी आवाज मंद प्रयत्न वाली समझना। यदि अपनी भाषा का भी तीव्र प्रयत्न इष्ट होवे तो गरगर शब्द या मृत्यु आदि के शोक के समय के धीमे-धीमे शब्द मंद प्रयत्न वाले समझना। जैसा भी आगमकारों को इष्ट है वैसा तीव्र मंद प्रयत्न समझना चाहिये। तीव्र प्रयत्न से बोली गई भाषा एवं उससे वासित पुद्गल चार समय में पूरे लोक में व्याप्त हो जाते हैं किन्तु इन पुद्गलों से अचित्त महास्कन्ध बनना ध्यान में नहीं आता है। लोकान्त तक गये हुए सभी पुद्गलों का वापिस आना आवश्यक नहीं है। कई पुद्गल वहीं नष्ट हो जाते हैं। तीव्र प्रयत्न हो तो मेघ गर्जना आदि की शब्द वर्गणा से भी लोक व्याप्ति हो सकती है। जो तीव्र प्रयत्न से छोड़े जाते हैं वे पुद्गल तो भेदित हो जाते हैं उनमें पांच प्रकार का भेदन हो सकता है। भेदित पुद्गल तो प्रायः लोकव्याप्त हो जाते हैं कुछ पुद्गल जो अभेदित रह जाते हैं वे संख्यात असंख्यात योजन जाकर नष्ट भी हो सकते हैं। मंद प्रयत्न में तो प्रायः सभी पुद्गल अभेदित ही निकलते हैं कुछ का भेद भी हो सकता है। एक समय में बोली हुई भाषा के पुद्गल संख्यात योजन जाकर नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि वे मंदतम प्रयत्न से बोले जाने के कारण अभेदित ही निकलते हैं। अतः नष्ट हो जाते हैं। भाषा के पुद्गलों की लोक व्याप्ति केवली समुद्घात की तरह होती है तथा भाषा वर्गणा और शब्द वर्गणा दोनों से लोक व्याप्ति होती है। दण्ड अवस्था में भाषापना (भाषत्व) कायम रहता है। अन्य समयों में शब्द वर्गणा के पुद्गल भी शामिल हो जाते हैं। भाषा के पुद्गल तो रह सकते हैं परन्तु उनका भाषापना नष्ट हो जाता है।

भाषा द्रव्यों के भेद

तेसि णं भंते! दव्वाणं कइविहे भेए पण्णत्ते?

गोयमा! पंचविहे भेए पण्णत्ते। तंजहा - खंडाभेए, पयराभेए, चुण्णियाभेए, अणुतडियाभेए, उक्करियाभेए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उन द्रव्यों के भेद कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! द्रव्यों के भेद पांच प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - १. खण्ड भेद २. प्रतर भेद ३. चूर्णिका भेद ४. अनुतटिका भेद और ५. उत्करिका भेद।

से किं तं खंडाभेए? खंडाभेए जण्णं अयखंडाण वा तउखंडाण वा तंबखंडाण वा सीसगखंडाण वा रययखंडाण वा जायरूवखंडाण वा खंडएणं भेए भवइ, से तं खंडाभेए १।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! खंड भेद किस प्रकार का होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! जो लोहे के खंडों का, जस्ते (रांगे) के खंडों का, तांबे के खण्डों का, सीसे के खण्डों का, चांदी के खण्डों का या सोने के खण्डों का खण्ड रूप-टुकडे रूप भेद होता है वह खंड भेद हैं।

से किं तं पयराभेए? पयराभेए जण्णं वंसाण वा वेत्ताण वा णलाण वा कयली थंभाण वा अब्भ पडलाण वा पयरएणं भेए भवइ, से तं पयराभेए २।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! प्रतर भेद किस प्रकार का होता है?

उत्तर - हे गौतम! जो बांसों का, बेंतों का, नलों का, केले के स्तंभों का, अभ्रक के पटलों का प्रतर रूप भेद होता है वह प्रतर भेद है।

से किं तं चुण्णियाभेए ? चुण्णियाभेए जण्णं तिलचुण्णाण वा मुग्गचुण्णाण वा मासचुण्णाण वा पिप्पलीचुण्णाण वा मिरीयचुण्णाण वा सिंगबेरचुण्णाण वा चुण्णियाए भेए भवइ, से तं चुण्णियाभेए ३।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! चूर्णिका भेद किस प्रकार का होता है?

उत्तर - हे गौतम! जो तिल के चूर्णों का, मूंग के चूर्णों का, उड़द के चूर्णों का, पीपल के चूर्णों का, कालीमिर्च के चूर्णों का या सूंठ के चूर्णों का चूर्ण रूप में भेद होता है वह चूर्णिका भेद है।

से किं तं अणुतडियाभेए? अणुतडियाभेए जण्णं अगडाण वा तडागाण वा दहाण वा णईण वा वावीण वा पुक्खरिणीण वा दीहियाण वा गुंजालियाण वा सराण वा सरपंतियाण वा सरसरपंतियाण वा अणुतडियाभेए भवइ, से तं अणुतडियाभेए ४।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! अनुतटिका भेद किस प्रकार का होता है?

उत्तर - हे गौतम! जो कूपों (कुओं) के, तालाबों के, ह्रदों के, नदियों के, बावडियों के, पुष्करिणियों (कमलयुक्त गोलाकार बावडियों) के, दीर्घिकाओं (लम्बी बावड़ियों) के, गुंजालिकाओं (टेढ़ी मेढ़ी बावड़ियों) के, सरोवरों के, पंक्तिबद्ध सरोवरों के, (नाली के द्वारा जल का संचार होने वाले पंक्ति बद्ध सरोवरों के) अनुतटिका रूप में भेद होता है वह अनुतटिका भेद है।

से किं तं उक्करियाभेए? उक्करियाभेए जण्णं मूसाण वा मंडूसाण वा तिलसिंगाण वा मुग्गसिंगाण वा माससिंगाण वा एरंडबीयाण वा फुट्टिया उक्करियाए भेए भवइ, से तं उक्करियाभेए ५॥ ३९९॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! उत्करिका भेद किस प्रकार का होता है?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर - हे गौतम! मसूर के, मगूसो (मंडूसो- चौला की फलियों) के, तिल की, फलियों के, मूंग की फलियों के, उड़द की फलियों के या एरण्ड के बीजों के फूटने से उत्करिका रूप जो भेद होता है वह उत्करिका भेद है।

विवेचन - भाषा रूप से ग्रहण किये हुए पुद्गलों का भिन्न और अभिन्न निकलना कहा है। इनका भेद पांच प्रकार का होता है- १. खंड भेद २. प्रतर भेद ३. चूर्णिका भेद ४. अनुतटिका भेद ५. उत्करिका भेद।

१ खंड भेद - लोहा, तांबा, सीसा, चांदी, सोना आदि का खण्ड रूप से जो भेद होता है वह खंड भेद है।

२. प्रतर भेद - बांस, बेंत, बरु, केले के वृक्ष और अभ्रक का प्रतर की तरह जो भेद होता है वह प्रतर भेद है।

३. चूर्णिका भेद —तिल, मूँग, उड़द, पीपल, मिर्च, सूंठ आदि का चूर्ण रूप से जो भेद होता है वह चूर्णिका भेद है।

४. अनुतटिका भेद - कूप, नदी, तालाब, द्रह, बावडी, पुष्करिणी, सरोवर पंक्ति का अनुतटिका रूप से जो भेद होता है वह अनुतटिका भेद है।

५. उत्करिका भेद - मसूर, मूंग, उड़द, तिल की फली और एरण्ड बीज - ये सूखने पर फट कर इनमें से दाने उछल कर बाहर निकलते हैं यह उत्करिका भेद हैं।

एएसि णं भंते! दव्वाणं खंडाभेएणं पयराभेएणं चुण्णियाभेएणं अणुतडियाभेएणं उक्करियाभेएण य भिज्जमाणाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवाइं दव्वाइं उक्करियाभेएणं भिज्जमाणाइं, अणुतडियाभेएणं भिज्जमाणाइं अणंतगुणाइं, चुण्णियाभेएणं भिज्जमाणाइं अणंतगुणाइं, पयराभेएणं भिज्जमाणाइं अणंतगुणाइं, खंडाभेएणं भिज्जमाणाइं अणंतगुणाइं॥ ४००॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! खण्ड भेद से, प्रतर भेद से, चूर्णिका भेद से, अनुतटिका भेद से और उत्करिका भेद से भिदते-भिन्न होते हुए इन द्रव्यों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े द्रव्य उत्करिका भेद से भिन्न होते हैं, उनसे अनुतटिका भेद से भिन्न होने वाले अनन्त गुणा हैं, उनसे चूर्णिका भेद से भिन्न होने वाले अनन्त गुणा, उनसे प्रतर भेद से भिन्न होने वाले अनन्त गुणा और उनसे भी खण्ड भेद से भिन्न होने वाले द्रव्य अनंत गुणा हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - उक्त पांच प्रकार के भेद से भिन्न (अलग-अलग) हुए द्रव्यों का अल्प बहुत्व- १. सब से थोड़े उत्करिका भेद से भिन्न हुए द्रव्य २. उनसे अनुतटिका भेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्त गुणा, ३. उनसे चूर्णिका भेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्त गुणा ४. उनसे प्रतर भेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्त गुणा ५. उनसे खंड भेद से भिन्न हुए द्रव्य अनन्त गुणा।

भाषा के निस्सरित पुद्गल जो प्रथम समय में वचन योग से निकलते हैं, उनका तो ५ प्रकार का भेद होता ही है। शेष समयों में निश्चित नहीं है। परन्तु जब जब भेदित होते हैं तब तब ५ प्रकार से भेदित होते हैं। जो शब्द जितने तीव्र प्रयत्न से बोले जाते हैं वे उतने ही अधिक खण्डों में विभक्त होते हैं।

णेरइए णं भंते! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गिण्हइ ताइं किं ठियाइं गिण्हइ, अठियाइं गिण्हइ?

गोयमा! एवं चेव, जहा जीवे वत्तव्वया भणिया तहा णेरइयस्स वि जाव अप्पाबहुयं। एवं एगिंदियवज्जो दंडओ जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिक जीव जिन द्रव्यों को भाषा रूप में ग्रहण करता है तो क्या स्थित (गति रहित) द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित (गति सहित) द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार औघिक जीव के विषय में वक्तव्यता कहीं है उसी प्रकार नैरयिक जीवों के विषय में यावत् अल्पबहुत्व तक कह देना चाहिये। इसी प्रकार एकेन्द्रिय को छोड़ कर बाकी सब दण्डक यावत् वैमानिकों तक कह देना चाहिये।

जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं भासत्ताए गिण्हंति ताइं किं ठियाइं गिण्हंति, अठियाइं गिण्हंति?

गोयमा! एवं चेव पुहुत्तेण वि णेयव्वं जाव वेमाणिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को भाषा रूप में ग्रहण करते हैं तो क्या स्थित द्रव्यों को ग्रहण करते हैं या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करते हैं?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार एक वचन में कहा है उसी प्रकार बहु वचन में भी नैरयिकों से लेकर यावत् वैमानिकों पर्यंत समझ लेना चाहिये।

जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं सच्चभासत्ताए गिण्हइ ताइं किं ठियाइं गिण्हइ, अठियाइं गिण्हइ?

गोयमा! जहा ओहियदंडओ तहा एसो वि, णवरं विगलिंदिया ण पुच्छिज्जंति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं मोसाभासाए वि, सच्चामोसाभासाए वि। असच्चामोसाभासाए वि एवं चेव, णवरं असच्चामोसाभासाए विगलिंदिया वि पुच्छिजंति इमेणं अभिलावेणं-

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को सत्य भाषा रूप में ग्रहण करता है, क्या वह स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है?

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार औघिक (सामान्य) दण्डक कहा है उसी प्रकार यहं भी जान लेना चाहिए किन्तु विकलेन्द्रियों के विषय में पृच्छा नहीं करनी चाहिये। इसी प्रकार मृषाभाषा, सत्य मृषा भाषा और असत्यामृषा भाषा के विषय में भी समझ लेना चाहिए परन्तु असत्यामृषा भाषा से अभिलाप के द्वारा विकलेन्द्रियों के विषय में पूछना चाहिए।

विगलिंदिए णं भंते! जाइं दव्वाइं असच्चामोसाभासत्ताए गिण्हइ ताइं किं ठियाइं गिण्हइ, अठियाइं गिण्हइ?

गोयमा! जहा ओहियदंडओ, एवं एए एगत्तपुहुत्तेणं दस दंडगा भाणियव्वा ॥ ४०१ ॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! विकलेन्द्रिय जीव जिन द्रव्यों को असत्यामृषा भाषा रूप में ग्रहण करता है तो क्या स्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है या अस्थित द्रव्यों को ग्रहण करता है।

उत्तर - हे गौतम! जिस प्रकार औघिक (सामान्य) दण्डक कहा गया है उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिए। इसी प्रकार एक वचन और बहुवचन के दस दण्डक कह देना चाहिये।

जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं सच्चभासत्ताए गिण्हइ, ताइं किं सच्चभासत्ताए णिसिरइ, मोसभासत्ताए णिसिरइ, सच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ, असच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ?

गोयमा! सच्चभासत्ताए णिसिरइ, णो मोसभासत्ताए णिसिरइ, णो सच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ, णो असच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ। एवं एगिंदिय विगलिंदियवज्जो दंडओ जाव वेमाणिए। एवं पुहुत्तेण वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को सत्य भाषा रूप में ग्रहण करता है क्या उनको सत्य भाषा के रूप में निकालता है, मृषा भाषा के रूप में निकालता है, सत्यामृषा भाषा के रूप में निकालता है या असत्यामृषा भाषा के रूप में निकालता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव जिन द्रव्यों को सत्य भाषा के रूप में ग्रहण करता है उनको सत्य भाषा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के रूप में निकालता है किन्तु मृषाभाषा के रूप में नहीं निकालता है, सत्यामृषा भाषा के रूप में नहीं निकालता है और न ही असत्यामृषाभाषा के रूप में निकालता है। इसी प्रकार एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय को छोड़ कर यावत् वैमानिक तक एक वचन सम्बन्धी दण्डक कहना चाहिये। जिस प्रकार - एक वचन का दण्डक कहा है उसी प्रकार बहुवचन का दण्डक भी कहना चाहिये।

जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं मोसभासत्ताए गिण्हइ, ताइं किं सच्चभासत्ताए णिसिरइ, मोसभासत्ताए णिसिरइ, सच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ, असच्चामोसभासत्ताए णिसिरइ?

गोंयमा! णो सच्चभासत्ताए णिसिरइ, मोसभासत्ताए णिसिरइ, णो सच्चामोस भासत्ताए णिसिरइ, णो असच्चामोसभोसत्ताए णिसिरइ। एवं सच्चामोस भासत्ताए वि। असच्चामोसभासत्ताए वि एवं चेव, णवंर असच्चामोसभासत्ताए विगलिंदिया तहेव पुच्छिज्जंति, जाए चेव गिण्हइ ताए चेव णिसिरइ। एवं एए एगत्तपुहुत्तिया अट्ठ दंडगा भाणियव्वा॥ ४०२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! जीव जिन द्रव्यों को मृषा भाषा के रूप में ग्रहण करता है क्या उन्हें वह सत्य भाषा के रूप में निकालता है, मृषा भाषा के रूप में निकालता है, सत्या मृषा भाषा के रूप में निकालता है अथवा असत्यामृषा भाषा के रूप में निकालता है?

उत्तर - हे गौतम! जीव जिन द्रव्यों को मृषाभाषा के रूप में ग्रहण करता है उनको सत्यभाषा के रूप में नहीं निकालता है, मृषाभाषा के रूप में निकालता है, सत्यामृषाभाषा के रूप में नहीं निकालता और न ही असत्यामृषा भाषा के रूप में निकालता है। इसी प्रकार सत्यामृषा भाषा के विषय में भी समझ लेना चाहिए। असत्यामृषा भाषा के विषय में भी इसी प्रकार समझना चाहिए, किन्तु असत्यामृषा भाषा में विकलेन्द्रियों के विषय में उसी प्रकार पूर्ववत् पूछना चाहिये। जिस भाषा के रूप में द्रव्यों को ग्रहण करता है उसी भाषा के रूप में द्रव्यों को निकालता है। इस प्रकार एक वचन और बहुवचन के आठ दण्डक कह देने चाहिये।

वचन के सोलह प्रकार

कइविहे णं भंते! वयणे पण्णत्ते?

गोयमा! सोलसविहे वयणे पण्णत्ते। तंजहा - एगवयणे, दुवयणे, बहुवयणे, इत्थिवयणे, पुमवयणे, णपुंसगवयणे, अज्झत्थवयणे, उवणीयवयणे, अवणीयवयणे,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवणीयावणीयवयणे, अवणीयउवणीयवयणे, तीयवयणे, पडुप्पण्णवयणे, अणागयवयणे, पच्चक्खवयणे, परोक्खवयणे।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वचन कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! वचन सोलह प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. एक वचन २. द्विवचन ३. बहुवचन ४. स्त्री वचन ५. पुरुष वचन ६. नपुंसक वचन ७. अध्यात्म वचन ८. उपनीत वचन ९. अपनीतवचन १०. उपनीतापनीत वचन ११. अपनीतापनीत वचन १२. अतीत वचन १३. प्रत्युत्पन्न वचन १४. अनागत वचन १५. प्रत्यक्ष वचन और १६. परोक्ष वचन।

इच्चेइयं भंते! एगवयणं वा जाव परोक्खवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा?

हंता गोयमा! इच्चेइयं एगवयणं वा जाव परोक्खवयणं वा वयमाणे पण्णवणी णं एसा भासा, ण एसा भासा मोसा॥ ४०३॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इस प्रकार एक वचन यावत् परोक्ष वचन बोलते हुए जीव की भाषा क्या प्रज्ञापनी है? यह भाषा मृषा तो नहीं है?

उत्तर - हाँ गौतम! इस प्रकार एक वचन से लेकर यावत् परोक्ष वचन बोलते हुए जीव की भाषा प्रज्ञापनी है। यह भाषा मृषा नहीं है।

विवेचन - मन में रहा हुआ अभिप्राय प्रकट करने के लिए भाषावर्गणा के परमाणुओं को बाहर निकालना अर्थात् वाणी का प्रयोग करना वचन कहलाता है। इसके सोलह भेद हैं -

१. एक वचन - किसी एक के लिए कहा गया वचन एक वचन कहलाता है। जैसे - पुरुषः (एक पुरुष)।

२. द्वि वचन - दो के लिए कहा गया वचन द्विवचन कहलाता है। जैसे - पुरुषौ (दो पुरुष)।

३. बहु वचन - दो से अधिक के लिए कहा गया वचन, जैसे - पुरुषाः (तीन पुरुष अथवा तीन से आगे सभी पुरुषों के लिए संस्कृत में 'पुरुषाः' शब्द का प्रयोग होता है)

४. स्त्री वचन - स्त्रीलिंग वाली किसी वस्तु के लिए कहा गया वचन। जैसे - इयं स्त्री (यह औरत)।

५. पुरुष वचन - किसी पुल्लिंग वस्तु के लिए कहा गया वचन। जैसे - अयं पुरुषः (यह पुरुष)।

६ नपुंसक वचन - नपुंसक लिंग वाली वस्तु के लिए कहा गया वचन। जैसे - इदं कुण्डम् (यह कुण्ड)। कुण्ड शब्द संस्कृत में नपुंसक लिंग है। हिन्दी में नपुंसक लिंग नहीं होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७. अध्यात्म वचन - मन में कुछ और रख कर दूसरे को ठगने की बुद्धि से कुछ और कहने की इच्छा होने पर भी शीघ्रता के कारण मन में रही हुई बात का निकल जाना अध्यात्म वचन है। जैसे गांव में रहने वाले पुरुष को मालूम हो गया कि रुई में तेजी आने वाली है तो वह शहर में गया वहाँ उसे प्यास लग गयी तब वहाँ किसी घर के आगे एक लड़की खड़ी थी उसने उससे कहा "रुई पिला" लडकी चतुर थी उसने समझ लिया कि रुई में तेजी आने वाली है। वह घर में गयी और पिता को यह बात कह दी तब वह सीधा बाजार में गया और रुई के व्यापारियों से सब रुई खरीद ली। इसके बाद वह पहला पुरुष रुई के व्यापारियों के पास गया तो मालूम हुआ कि रुई के व्यापारियों ने सब रुई बेच दी है। तब उसे अपनी गलती मालूम हुई कि मैंने "पानी पिला" के बदले "रुई पिला" कह दिया था। सो उस लड़की ने अपने पिता से यह बात कह दी कि रुई में तेजी आने वाली है इसलिये उसके पिता ने बाजार के व्यापारियों से सब रुई खरीद ली।

८. उपनीत वचन - प्रशंसा करना, जैसे अमुक स्त्री अथवा पुरुष सुन्दर है।

९. अपनीतवचन - निन्दात्मक वचन जैसे यह स्त्री कुरूपा है या पुरुष कुरूप है।

१०. उपनीतापनीत वचन - पहले प्रशंसा करके पीछे निन्दा करना, जैसे - यह स्त्री सुन्दर है किन्तु दुष्ट स्वभाव वाली है अथवा दुष्ट चरित्र वाली है।

११. अपनीतोपनीत वचन - पहले निन्दा करने के बाद पीछे प्रशंसा करना। जैसे यह स्त्री कुरूपा है किन्तु सुशील है अथवा श्रेष्ठ चारित्र वाली है।

१२. अतीत वचन - भूत काल की बात कहना अतीत वचन है। जैसे-मैंने अमुक कार्य किया था अमुक पुस्तक पढ़ी थी।

१३. प्रत्युत्पन्न वचन - वर्तमान काल की बात कहना प्रत्युत्पन्न वचन है। जैसे - वह कार्य करता है। वह जाता है।

१४. अनागत वचन - भविष्य काल की बात कहना अनागत वचन है। जैसे - वह करेगा। वह जायेगा।

१५. प्रत्यक्ष वचन - प्रत्यक्ष अर्थात् सामने की बात कहना। जैसे सामने उपस्थित व्यक्ति के लिए कहना 'यह'।

१६. परोक्ष वचन - परोक्ष अर्थात् पीठ पीछे हुई बात को कहना, जैसे सामने अनुपस्थित व्यक्ति के लिए कहना 'वह' इत्यादि।

ये सोलह वचन यथार्थ वस्तु के सम्बन्ध में जानने चाहिए। इन्हें सम्यक् उपयोग पूर्वक कहे तो भाषा प्रज्ञापनी होती है। इस प्रकार की भाषा मृषाभाषा नहीं कही जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार भाषाओं के आराधक-विराधक

कइ णं भंते! भासज्जाया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि भासज्जाया पण्णत्ता। तंजहा- सच्चमेगं भासज्जायं, बिइयं मोसं भासज्जायं, तइयं सच्चामोसं भासज्जायं, चउत्थं असच्चामोसं भासज्जायं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! भाषा के कितने प्रकार कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! भाषा के चार प्रकार कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं- १. पहली सत्य भाषा २. दूसरी मृषा भाषा ३. तीसरी सत्यामृषा भाषा और ४. चौथी असत्यामृषा भाषा।

इच्चेयाइं भंते! चत्तारि भासज्जायाइं भासमाणे किं आराहए? विराहए?

गोयमा! इच्चेयाइं चत्तारि भासज्जायाइं आउत्तं भासमाणे आराहए, णो विराहए। तेणं परं अस्संजया अविरया अपडिहया अपच्चक्खायपावकम्मे सच्चं वा भासं भासंतो मोसं वा सच्चामोसं वा असच्चामोसं वा भासं भासमाणे णो आराहए, विराहए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन चार प्रकार की भाषाओं को बोलता हुआ जीव आराधक होता है या विराधक होता है?

उत्तर - हे गौतम! इन चारों प्रकार की भाषाओं को उपयोग पूर्वक बोलने वाला जीव आराधक होता है, विराधक नहीं। इसके सिवाय अन्य जो असंयत, अविरत, पाप कर्म का प्रतिघात और प्रत्याख्यान नहीं करने वाला सत्य भाषा बोलता हुआ तथा मृषा भाषा, सत्याभाषा और असत्यामृषा भाषा बोलता हुआ जीव आराधक नहीं होता है, किन्तु विराधक होता है।

विवेचन - 'साधु उपयोग पूर्वक चारों भाषा बोलता हुआ आराधक है।' इसका अर्थ टीकाकार आदि तो - 'उपयोग पूर्वक अर्थात् असत्य आदि को असत्य आदि समझ कर पारधि (शिकारी) आदि के पूछने पर जान बूझ कर असत्य भाषा का प्रयोग करना' ऐसा करते है। किन्तु इस अर्थ की अपेक्षा से विचार करने से यह आगे कहा जाने वाला अर्थ विशेष संगत लगता है। वह अर्थ इस प्रकार है - 'उसका उपयोग (भाव) तो सत्य तथा व्यवहार भाषा बोलने का ही है तो भी अर्थात् सत्य तथा व्यवहार भाषा बोलने का उपयोग रखते हुए भी अनाभोग से चारों भाषा बोलने में आजाय तो भी वह आराधक है।' शास्त्रकार को भी यही मत अभिमत लगता है। क्योंकि यदि टीकाकार का मत अभिमत होता तो शास्त्रकार 'उपयोग पूर्वक' पद नहीं देते। क्योंकि जब उपयोग पूर्वक भी असत्य आचरण से आराधक होता है तो अनुपयोग से यदि असत्य आचरण हो जाय तो वे आराधक ही होने चाहिये। जैसे गौतम स्वामी का आनन्द श्रावक के यहाँ अनुपयोग से असत्य बोला जाना। इन्हें तो ध्यान में आ जाने से प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध हो गये यदि इस स्थान पर दूसरे साधु होते और उन्हें केवली आदि का संयोग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं मिलने से तथा आलोचना के नहीं होने से भी (आलोचना के भाव होने से) मृत्यु हो जाने पर आराधक ही होते। इसीलिए यह अर्थ विशेष संगत लगता है तथा इस अर्थ के करने से जो लोग - 'कारण से नदी उतरना आदि प्रथम महाव्रत के अपवाद बताये हैं। उसी तरह यह दूसरे महाव्रत का अपवाद है।' ऐसा कहते हैं वो भी ठीक नहीं जचता है। क्योंकि अपवाद, अप्रायश्चित्त और सप्रायश्चित दोनों प्रकार के होते हैं। अपवाद अप्रायश्चित्त जैसे - जिस मकान में कच्चे पानी, गर्म पानी, मदिरा आदि के घड़े पड़े हों वहाँ साधु को नहीं रहना चाहिए। कारण से एक दो रात्रि रह सकता है। विशेष रहने पर छेद अथवा तप रूप प्रायश्चित्त आता है (वृहत्कल्प सूत्र उद्देशक २)।

अपवाद सप्रायश्चित्त जैसे उपयोग पूर्वक असत्य आदि बोलने का निशीथ, दशवैकालिक आदि सूत्रों में प्रायश्चित्त तथा निषेध किया है (निशीथ सूत्र उद्देशक २ सूत्र १९, दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ७ गाथा १)। सप्रायश्चित्त होने से बिना प्रायश्चित्त लिए आराधक नहीं हो सकता यथा - 'वैक्रिय करने वाला मुनि।' इसलिए इसे दूसरे महाव्रत का अपवाद सूत्र भी नहीं कह सकते। अपवाद का सेवन कारण से ही किया जाता है तो भी उसको प्रायश्चित्त तो है ही। क्योंकि ठाणांग सूत्र दसवां ठाणा तथा भगवती सूत्र शतक २५ उद्देशक ७ में दोष लगने के १० कारणों में आपत्ति को भी बताया है।

सत्यभाषी आदि का अल्पबहुत्व

एएसि णं भंते! जीवाणं सच्चभासगाणं, मोसभासगाणं, सच्चामोसभासगाणं, असच्चामोसभासगाणं, अभासगाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्ला वा विसेसाहिया वा?

गोयमा! सव्वत्थोवा जीवा सच्चभासगा, सच्चामोसभासगा असंखिज्ज गुणा, मोसभासगा असंखिज्ज गुणा, असच्चामोसभासगा असंखिज्ज गुणा, अभासगा अणंत गुणा॥ ४०४॥

॥ पण्णवणाए भगवईए एक्कारसमं भासापयं समत्तं॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! इन सत्यभाषी, मृषाभाषी, सत्यमृषाभाषी, असत्यामृषाभाषी और अभाषी जीवों में कौन किनसे अल्प, बहुत, तुल्य या विशेषाधिक हैं?

उत्तर - हे गौतम! सबसे थोड़े जीव सत्यभाषी हैं, उनसे सत्यामृषाभाषी असंख्यात गुणा हैं, उनसे मृषाभाषी असंख्यात गुणा हैं, उनसे असत्यामृषा भाषी असंख्यातगुणा हैं और उनसे अभाषी (नहीं बोलने वाले) जीव अनन्त गुणा हैं।

॥ प्रज्ञापना सूत्र का ग्यारहवां भाषापद समाप्त॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बारसमं सरीरपयं

बारहवाँ शरीर पद

उक्खेवो (उत्क्षेप-उत्थानिका) - अवतरणिका - इस बारहवें पद का नाम "शरीर पद" है। शरीर शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है।

'शीर्यते प्रतिक्षणं विशशरुभावं विभर्ति इति शरीरम्।'

अर्थात् - जो प्रतिक्षण विशरारुभाव - विनाशभाव को प्राप्त होता रहता है उसे शरीर कहते हैं।

संसार दशा में शरीर के साथ जीव का अतीव निकट और निरन्तर सम्पर्क रहता है। शरीर और शरीर से सम्बन्धित सजीव-निर्जीव पदार्थों के प्रति मोह ममत्व के कारण ही कर्मबन्ध होता है। अतएव शरीर के विषय में जानना आवश्यक है।

शरीर क्या है? आत्मा की तरह अविनाशी है या नाशवान् ? इसके कितने प्रकार हैं? इन पांचों प्रकारों के बद्ध-मुक्त शरीरों के कितने-कितने परिमाण में है? नैरयिक जीवों से लेकर वैमानिक देवों तक किसमें कितने शरीर पाये जाते हैं? आदि आदि।

शरीर के लिए दो प्रकार का कथन मिलता है-यथा-"**शरीरम् व्याधि मन्दिरम्**" अर्थात् शरीर रोगों का घर है। एक शरीर में साढ़े तीन करोड़ रोम राजि हैं और पांच करोड़ अड़सठ लाख निण्णाणु हजार पांच सौ चौरासी (अथवा पिचासी) रोग भरे हुए हैं एक रोम के ऊपर देढ रोग से अधिक हिस्से में आता है। जब तक यह रोग दबे पड़े हैं तब तक शरीर की कुशलता है। दूसरी तरफ कहा गया है कि -

"शरीरमाद्यम खलु धर्म साधनम्"

अर्थात् - धर्म करणी करने का पहला साधन शरीर है। इसीलिए ज्ञानियों का कथन है कि जब तक शरीर स्वस्थ है तब तक धर्म करनी कर लेनी चाहिए। जैसा कि कहा है -

जरा जाव न पीडेई, वाही जाव न वड्ढई।
जाविंदिया न हायंति, ताव धम्मं समायरे॥ ३६॥

जब लग जरा न पीडती, जब लग काय नीरोग।
इन्द्रियाँ हीणी ना पड़े, धर्म करो शुभ जोग॥

इसी हेतु से शास्त्रकार ने इस बारहवें शरीर पद की रचना की है।

प्रज्ञापना सूत्र के ग्यारहवें पद में जीवों की सत्य आदि भाषाओं के भेद बताये गये हैं। भाषा शरीर के अधीन है क्योंकि '**शरीर प्रभवा भाषा**' - भाषा शरीर से उत्पन्न होती है ऐसा कहा गया है। अन्यत्र भी कहा गया है कि -'**गिण्हइ काइएणं, णिस्सरइ तह वाइएणं जोएणं**'-भाषा योग्य पुद्गल काया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से ग्रहण किये जाते हैं और वचन योग से बाहर निकाले जाते हैं। अतः शरीर के भेद बताने के लिए यह पद प्रारंभ किया जाता है। इसका प्रथम सूत्र इस प्रकार है -

शरीर के भेद

कइ णं भंते! सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! पंच सरीरा पण्णत्ता। तंजहा - ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! शरीर कितने प्रकार के कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! शरीर पांच प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. औदारिक २. वैक्रिय ३. आहारक ४. तैजस और ५. कार्मण।

विवेचन - शरीर - जो उत्पत्ति समय से लेकर प्रतिक्षण जीर्ण-शीर्ण होता रहता है तथा शरीर नाम कर्म के उदय से उत्पन्न होता है वह शरीर कहलाता है। शरीर के पांच भेद हैं - १. औदारिक शरीर २. वैक्रिय शरीर ३. आहारक शरीर ४. तैजस शरीर ५. कार्मण शरीर।

१. औदारिक शरीर - उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलों से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। तीर्थंकर, गणधरों का शरीर प्रधान पुद्गलों से बनता है और सर्व साधारण का शरीर स्थूल असार पुद्गलों से बना हुआ होता है।

अन्य शरीरों की अपेक्षा अवस्थित रूप से विशाल अर्थात् बड़े परिमाण वाला होने से यह औदारिक शरीर कहा जाता है। वनस्पतिकाय की अपेक्षा औदारिक शरीर की एक सहस्र (हजार) योजन की अवस्थित अवगाहना है। अन्य सभी शरीरों की अवस्थित अवगाहना इससे कम है। वैक्रिय शरीर की उत्तर वैक्रिय की अपेक्षा अनवस्थित अवगाहना एक लाख योजन की है। परन्तु भवधारणीय वैक्रिय शरीर की अवगाहना तो पांच सौ धनुष से ज्यादा नहीं है।

अन्य शरीरों की अपेक्षा अल्प प्रदेश वाला तथा परिमाण में बड़ा होने से यह औदारिक शरीर कहलाता है।

मांस रुधिर (खून) अस्थि (हड्डी) आदि से बना हुआ शरीर औदारिक कहलाता है। औदारिक शरीर मनुष्य और तिर्यंच के होता है।

२. वैक्रिय शरीर - जिस शरीर से विविध अथवा विशिष्ट प्रकार की क्रियाएं होती हैं वह वैक्रिय शरीर कहलाता है। जैसे एक रूप होकर अनेक रूप धारण करना, अनेक रूप होकर एक रूप धारण करना, छोटे शरीर से बड़ा शरीर बनाना और बड़े से छोटा बनाना, पृथ्वी और आकाश पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य अदृश्य रूप बनाना आदि। वैक्रिय शरीर दो प्रकार का है - १. औपपातिक वैक्रिय शरीर २. लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१. **औपपातिक वैक्रिय शरीर** - जन्म से ही जो वैक्रिय शरीर मिलता है वह औपपातिक वैक्रिय शरीर है। देवता और नारकी के नैरिये जन्म से ही वैक्रिय शरीरधारी होते हैं।

२. **लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर** - तप आदि द्वारा प्राप्त लब्धि विशेष से प्राप्त होने वाला वैक्रिय शरीर लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर कहलाता है। मनुष्य और तिर्यंच में लब्धि प्रत्यय वैक्रिय शरीर होता है।

३. **आहारक शरीर** - प्राणी (जीव) दया, तीर्थंकर भगवान् की ऋद्धि का दर्शन, नये ज्ञान की प्राप्ति तथा संशय निवारण आदि प्रयोजनों से चौदह पूर्वधारी मुनिराज, अन्य क्षेत्र (महाविदेह क्षेत्र) में विराजमान तीर्थंकर भगवन्तों अथवा सामान्य केवली भगवन्तों के समीप भेजने के लिए, लब्धि विशेष से अतिविशुद्ध स्फटिक के सदृश एक हाथ का जो पुतला निकालते हैं वह आहारक शरीर कहलाता है। उक्त प्रयोजनों के सिद्ध हो जाने पर उस पुतले में रहे हुए आत्म प्रदेश उसी मुनिराज के शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

४. **तैजस शरीर** - तैजस वर्गणा के पुद्गलों से बना हुआ कार्मण शरीर का सहवर्ती, आत्म व्यापी, शरीर की उष्मा से पहचाना जाने वाला शारीरिक आभा (दीप्ति-चमक) का कारण, खाये हुए आहार को परिणमाने वाला तथा तेजोलब्धि के द्वारा गृहीत पुद्गलों को तैजस शरीर कहा जाता है।

५. **कार्मण शरीर** - कर्मों से बना हुआ शरीर कार्मण कहलाता है। अथवा जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलों को कार्मण शरीर कहते हैं। यह शरीर ही सब शरीरों का बीज है अर्थात् मूल कारण है।

पांचों शरीरों के इस क्रम का कारण यह है कि आगे आगे के शरीर पिछले की अपेक्षा प्रदेश बहुल (अधिक प्रदेश वाले) होते हैं एवं परिमाण में सूक्ष्मतर हैं। तैजस और कार्मण शरीर सभी संसारी जीवों के होते हैं। इन दोनों शरीरों के साथ ही जीव मरण देश को छोड़ कर उत्पत्ति स्थान को जाता है। अर्थात् ये दोनों शरीर परभव में जाते हुए जीव के साथ ही रहते हैं। मोक्ष में जाते समय ये दोनों शरीर भी छूट जाते हैं। तब वह अशरीरी बन जाता है।

नैरयिक आदि में शरीर प्ररूपणा

णेरइयाणं भंते! कइ सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता। तंजहा - वेउव्विए, तेयए, कम्मए। एवं असुरकुमाराणं वि जाव थणियकुमाराणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! नैरयिकों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिक जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. वैक्रिय २. तैजस और ३. कार्मण।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार असुरकुमारों से लेकर यावत् स्तनितकुमारों तक समझ लेना चाहिये।

पुढविकाइयाणं भंते! कइ सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! तओ सरीरया पण्णत्ता। तंजहा-ओरालिए, तेयए, कम्मए। एवं वाउकाइयवज्जं जाव चउरिंदियाणं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के तीन शरीर कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. औदारिक २. तैजस और ३. कार्मण।

इसी प्रकार वायुकायिकों को छोड़ कर यावत् चउरिन्द्रिय जीवों तक समझ लेना चाहिये।

वाउकाइयाणं भंते! कइ सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! चत्तारि सरीरया पण्णत्ता। तंजहा-ओरालिए, वेउव्विए, तेयए, कम्मए। एवं पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वि।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक जीवों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! वायुकायिक जीवों के चार शरीर कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. औदारिक २. वैक्रिय ३. तैजस और ४. कार्मण।

इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के विषय में भी समझ लेना चाहिये।

मणुस्साणं भंते! कइ सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! पंच सरीरया पण्णत्ता। तंजहा-ओरालिए, वेउव्विए, आहारए, तेयए, कम्मए। वाणमंतर जोइसिय वेमाणियाणं जहा णारगाणं॥ ४०५-६॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों के कितने शरीर कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के पांच शरीर कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण।

वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों में नैरयिक जीवों की तरह समझ लेना चाहिये। अर्थात् वैक्रिय, तैजस और कार्मण ये तीन शरीर होते हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिक जीवों से लेकर वैमानिक तक किसमें कितने शरीर पाये जाते हैं इसका कथन किया गया है।

शरीरों के बद्ध-मुक्त भेद

केवइया णं भंते! ओरालिय सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणि ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जा लोगा। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणि ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणा सिद्धाणं अणंतभागो।

कठिन शब्दार्थ - बद्धेल्लया - बद्ध, **मुक्केल्लया** - मुक्त, **अवहीरंति** - अपहृत होते हैं।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! औदारिक शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! औदारिक शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं - १. बद्ध और २. मुक्त। उनमें जो बद्ध हैं, वे असंख्यात हैं, काल से असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों से अपहृत होते हैं, क्षेत्र से असंख्यात लोक परिमाण है। उनमें जो मुक्त शरीर हैं वे अनन्त हैं। काल से वे अनन्त उत्सर्पिणियों और अनन्त अवसर्पिणियों के समयों से अपहृत होते हैं, क्षेत्र से अनन्त लोक परिमाण है। द्रव्य से वे अभव्य जीवों से अनन्त गुणा हैं और सिद्ध भगवन्तों से अनन्तवें भाग हैं।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में बद्ध और मुक्त औदारिक शरीर का परिमाण बताया गया है।

प्रश्न - बद्ध शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर - जीव द्वारा जो शरीर अभी ग्रहण किये हुए हैं, वे बद्ध शरीर कहलाते हैं।

प्रश्न - मुक्त शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर-जिन शरीरों को जीव ने पूर्व भवों में ग्रहण करके छोड़ दिये हैं, वे मुक्त शरीर कहलाते हैं।

शंका - औदारिक शरीरधारी जीव अनंत हैं फिर भी बद्ध औदारिक शरीर असंख्यात ही क्यों कहे गये हैं?

समाधान - औदारिक शरीरधारी जीव दो प्रकार के होते हैं - १. प्रत्येक शरीरी और २. अनन्तकायिक। प्रत्येक शरीरी जीवों का औदारिक शरीर अलग-अलग होता है। किन्तु जो अनन्तकायिक होते हैं उनका औदारिक शरीर अलग-अलग नहीं होता। अनन्तानंत जीवों का एक ही औदारिक शरीर होता है। इसलिए औदारिक शरीरधारी जीव अनन्त होते हुए भी उनके शरीर असंख्यात ही कहे गये हैं।

काल की अपेक्षा से बद्ध औदारिक शरीर असंख्यात उत्सर्पिणियों और असंख्यात अवसर्पिणियों में अपहृत होते हैं। इसका अर्थ यह है कि यदि उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के एक-एक समय में एक-एक औदारिक शरीर का अपहरण किया जाय तो समस्त औदारिक शरीरों का अपहरण करने में असंख्यात उत्सर्पिणियां और असंख्यात अवसर्पिणियां व्यतीत हो जाय। क्षेत्र की अपेक्षा बद्ध औदारिक शरीर असंख्यात लोक परिमाण है इसका तात्पर्य यह है कि अगर समस्त बद्ध औदारिक शरीरों को अपनी अवगाहना से अलग-अलग आकाश प्रदेशों में स्थापित किया जाय तो उन शरीरों से असंख्यात लोकाकाश व्याप्त हो जाय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुक्त औदारिक शरीर अनंत होते हैं। काल से अनंत उत्सर्पिणियों और अनंत अवसर्पिणियों के जितने समय होते हैं उतने मुक्त औदारिक शरीर हैं। क्षेत्र से वे अनंत लोक परिमाण हैं। अर्थात् अनंत लोक के जितने आकाश प्रदेश हैं। उतने ही मुक्त औदारिक शरीर हैं। मुक्त औदारिक शरीर अभव्य जीवों से अनन्त गुणा होते हैं और सिद्ध जीवों के अनन्तवें भाग मात्र ही है।

केवइया णं भंते! वेउव्विय सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया (बद्धेल्लगा) य मुक्केल्लया (मुक्केल्लगा) य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइ भागो। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणि-ओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया तहेव वेउव्वियस्स वि भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वैक्रिय शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! वैक्रिय शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. बद्ध और २. मुक्त। उनमें से जो बद्ध हैं वे असंख्यात हैं, काल से असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों से अपहृत होते हैं, क्षेत्र से प्रतर के असंख्यातवें भाग में रही हुई असंख्यात श्रेणियों के प्रदेश परिमाण हैं। उनमें से जो मुक्त हैं वे अनन्त हैं। काल से अनन्त उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों से अपहृत होते हैं। जिस प्रकार औदारिक के मुक्त शरीरों के विषय में कहा है उसी प्रकार वैक्रिय के विषय में भी कह देना चाहिये।

विवेचन - बद्ध वैक्रिय शरीर असंख्यात होते हैं। अगर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के एक-एक समय में एक-एक वैक्रिय शरीर का अपहरण किया जाय तो समस्त वैक्रिय शरीरों का अपहरण करने में असंख्यात उत्सर्पिणियाँ और अवसर्पिणियां व्यतीत हो जाए अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के जितने समय होते हैं, उतने ही बद्ध वैक्रिय शरीर हैं। क्षेत्र की अपेक्षा से बद्ध वैक्रिय शरीर असंख्यात श्रेणी परिमाण है और उन श्रेणियों का परिमाण प्रतर का असंख्यातवाँ भाग है यानी प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितनी श्रेणियाँ हैं और उन श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश होते हैं उतने ही बद्ध वैक्रिय शरीर होते हैं।

प्रश्न - श्रेणी के परिमाण से क्या आशय है?

उत्तर - घनीकृत लोक सब ओर से ७ रज्जु प्रमाण होता है। ऐसे लोक की लम्बाई में ७ रज्जु एवं मुक्तावली के समान एक आकाश प्रदेश की पंक्ति श्रेणी कहलाती है। घनीकृत लोक का सात रज्जु परिमाण इस प्रकार होता है- सम्पूर्ण लोक ऊपर से नीचे तक चौदह रज्जु परिमाण है। उसका विस्तार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नीचे से कुछ कम सात रज्जु का है। मध्य में एक रज्जु है। ब्रह्मलोक नामक पांचवें देवलोक के बिलकुल मध्य में पांच रज्जु है और ऊपर एक रज्जु विस्तार पर लोक का अन्त होता है। रज्जु का परिमाण स्वयम्भूरमण समुद्र की पूर्वतटवर्ती वेदिका के अन्त से लेकर उसकी पश्चिम वेदिका के अंत तक समझना चाहिये। इतनी लम्बाई-चौड़ाई वाले लोक की आकृति दोनों हाथ कमर पर रख कर नाचते हुए पुरुष के समान है। इस कल्पना से त्रसनाडी के दक्षिणभागवर्ती अधोलोकखण्ड को (जो कि कुछ कम तीन रज्जु विस्तृत है और सात रज्जु से कुछ अधिक ऊँचा है) लेकर त्रसनाडी के उत्तर पार्श्व से, ऊपर का भाग नीचे और नीचे का भाग ऊपर करके इकट्ठा रख दिया जाय, फिर ऊर्ध्वलोक में त्रसनाडी के दक्षिण भागवर्ती कूर्पर (कोहनी) के आकार के जो दो खण्ड हैं, जो कि प्रत्येक कुछ कम साढ़े तीन रज्जु ऊँचे होते हैं, उन्हें कल्पना में लेकर विपरीत रूप में उत्तर पार्श्व में इकट्ठा रख दिया जाए। ऐसा करने से नीचे का लोकार्ध कुछ कम चार रज्जु विस्तृत और ऊपर का अर्ध भाग तीन रज्जु विस्तृत एवं कुछ कम सात रज्जु ऊँचा हो जाता है। तत्पश्चात् ऊपर के अर्ध भाग को कल्पना में लेकर नीचे के अर्धभाग के उत्तरपार्श्व में रख दिया जाए। ऐसा करने से कुछ अधिक सात रज्जु ऊँचा और कुछ कम सात रज्जु विस्तार वाला घन बन जाता है। इस प्रकार लोक को घनीकृत किया जाता है। जहाँ कहीं घनत्व से सात रज्जु प्रमाण की पूर्ति न हो सके, वहाँ कल्पना से पूर्ति कर लेनी चाहिए। सिद्धान्त (शास्त्र) में जहाँ कहीं भी श्रेणी अथवा प्रतर का ग्रहण हो, वहाँ सर्वत्र इसी प्रकार घनीकृत सात रज्जुपरिमाण लोक की श्रेणी अथवा प्रतर समझना चाहिए।

केवइया णं भंते! आहारग सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लया य मुक्केल्लया य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लया ते णं सिय अत्थि, सिय णत्थि। जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सहस्सपुहुत्तं। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता, जहा ओरालियस्स मुक्केल्लया, तहेव भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! आहारक शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! आहारक शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. बद्ध और २. मुक्त। उनमें से जो बद्ध हैं वे कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं होते हैं। यदि होते हैं तो जघन्य एक, दो, तीन और उत्कृष्ट सहस्र पृथक्त्व (दो हजार से लेकर तीन हजार तक) होते हैं। उनमें से जो मुक्त हैं वे अनंत हैं जिस प्रकार औदारिक के मुक्त शरीरों के विषय में कहा है उसी प्रकार यहाँ भी कह देना चाहिये।

विवेचन - बद्ध आहारक शरीर कदाचित् होते हैं और कदाचित् नहीं भी होते, क्योंकि आहारक शरीर का अन्तर (विरहकाल) जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक का कहा गया है। यदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आहारक शरीर होते हैं तो उनकी संख्या जघन्य एक, दो या तीन होती है और उत्कृष्ट (अधिक से अधिक) सहस्रपृथक्त्व अर्थात् दो हजार से लेकर तीन हजार तक होती है। मुक्त आहारक शरीरों का परिमाण मुक्त औदारिक शरीरों की तरह समझ लेना चाहिए।

आहारक शरीर वाले सहस्र पृथक्त्व में भी दो, तीन हजार से अधिक नहीं समझना। क्योंकि आगे ३६ वें पद में केवली समुद्घात वाले शत पृथक्त्व बताया है। आहारक समुद्घात वाले में प्रारम्भिक समयों की विवक्षा करके आहारक वालों से भी केवली समुद्घात वालों को संख्यात गुणा ज्यादा बताया है। अतः आहारक समुद्घात वाले उनसे आधे से अधिक नहीं मिलने से प्रारम्भिक समयों (आहारक मिश्र योग) वाले दो सौ-तीन सौ जितने ही मिलेंगे। उससे पूर्ण आहारक योग वाले दस गुणे भी अधिक मान लिए जाय तो भी दो - तीन हजार से अधिक नहीं हो सकते हैं। १४ पूर्वधारी साधु तो सहस्र पृथक्त्व से ज्यादा भी हो सकते हैं क्योंकि सभी १४ पूर्वधारी तो आहारक लब्धि फोड़ते नहीं है विशिष्ट परिस्थितिवश (चार कारणों से) ही कोई कोई आहारक लब्धि फोड़ते हैं अतः आहारक शरीर वाले कम ही मिलते हैं।

अर्थात् - जो मुक्त औदारिक शरीर हैं वे अनन्त हैं। काल से वे अनन्त उत्सर्पिणियों और अनन्त अवसर्पिणियों के समयों से अपहृत होते हैं, क्षेत्र से अनन्त लोक परिमाण है। द्रव्य से वे अभव्य जीवों से अनन्त गुणा हैं और सिद्ध भगवन्तों से अनन्तवें भाग हैं।

केवइया णं भंते! तेयग सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ सिद्धेहिंतो अणंत गुणा, सव्वजीवाणं अणंत भाग ऊणा। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लया ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, दव्वओ सव्वजीवेहिंतो अणंतगुणा जीववग्गस्साणंतभागो। एवं कम्मगसरीराणि वि भाणियव्वाणि॥ ४०७॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन् ! तैजस शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! तैजस शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. बद्ध और २. मुक्त। उनमें से जो बद्ध हैं वे अनंत हैं। काल से अनंत उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों से अपहृत होते हैं। क्षेत्र से अनंत लोक परिमाण है। द्रव्य से सिद्धों की अपेक्षा अनन्त गुणा और अनंतवें भाग न्यून सर्व जीवों के जितने हैं। उनमें जो मुक्त हैं वे अनन्त हैं। काल से अनन्त लोक परिमाण है। द्रव्य से सभी जीवों से अनन्त गुणा और सभी जीवों के वर्ग के अनन्तवें भाग परिमाण है। इसी प्रकार कार्मण शरीर के विषय में भी कह देना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - बद्ध तैजस शरीर अनन्त हैं। क्योंकि साधारण शरीरी निगोदिया जीवों के तैजस शरीर अलग-अलग होते हैं, औदारिक की तरह एक नहीं। उसकी अनन्तता का काल से परिमाण (पूर्ववत्) अनन्त उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों के बराबर है। क्षेत्र से अनन्त लोक परिमाण है। अर्थात्-अनन्त लोकाकाशों में जितने प्रदेश हों, उतने ही बद्ध तैजस शरीर हैं। द्रव्य की अपेक्षा से बद्ध तैजस शरीर सिद्धों से अनन्त गुणा हैं, क्योंकि तैजस शरीर समस्त संसारी जीवों के होते हैं और संसारी जीव सिद्धों से अनन्त गुणा हैं। इसलिए तैजस शरीर भी सिद्धों से अनन्त गुणा हैं। किन्तु सम्पूर्ण जीवराशि की दृष्टि से विचार किया जाए तो वे समस्त जीवों से अनन्तवें भाग कम हैं, क्योंकि सिद्धों के तैजस शरीर नहीं होता और सिद्ध सर्व जीवराशि से अनन्तवें भाग हैं, अतः उन्हें कम कर देने से तैजस शरीर सर्वजीवों के अनन्तवें भाग न्यून हो जाते हैं।

मुक्त तैजस शरीर भी अनन्त हैं। काल और क्षेत्र की अपेक्षा उसकी अनन्तता पूर्ववत् समझ लेनी चाहिए। द्रव्य की अपेक्षा से मुक्त तैजस शरीर समस्त जीवों से अनन्त गुणा हैं, क्योंकि प्रत्येक जीव का एक तैजस शरीर होता है। जीवों के द्वारा जब उनका परित्याग कर दिया जाता है तो वे पूर्वोक्त प्रकार से अनन्त भेदों वाले हो जाते हैं और उनका असंख्यात काल पर्यन्त उस पर्याय में अवस्थान रहता है, इतने समय में जीवों द्वारा परित्यक्त (मुक्त) अन्य तैजस शरीर प्रतिजीव असंख्यात पाए जाते हैं और वे सभी पूर्वोक्त प्रकार से अनन्त भेदों वाले हो जाते हैं। अतः उन सबकी संख्या समस्त जीवों से अनन्त गुणी कही गई हैं।

शंका - क्या समस्त मुक्त तैजस शरीरों की संख्या जीव वर्ग प्रमाण होती है?

समाधान - वे जीव वर्ग के अनन्तवें भाग परिमाण होते हैं। वे समस्त मुक्त तैजस शरीर जीव वर्ग परिमाण तो तब हो पाते, जबकि एक-एक जीव के तैजस शरीर सर्व जीव राशि परिमाण होते या उससे कुछ अधिक होते और उनके साथ सिद्ध जीवों के अनन्त भाग की पूर्ति होती। उसी राशि का उसी राशि से गुणा करने पर वर्ग होता है। जैसे ४ को ४ से गुणा करने पर (४×४=१६) सोलह संख्या वाला वर्ग होता है। किन्तु एक-एक जीव के मुक्त तैजस शरीर सर्वजीवराशि-परिमाण या उससे कुछ अधिक नहीं हो सकते, अपितु उससे बहुत कम ही होते हैं और वे भी असंख्यातकाल तक ही रहते हैं। उतने काल में जो अन्य मुक्त तैजस शरीर होते हैं, वे भी थोड़े ही होते हैं, क्योंकि काल थोड़ा है। इस कारण मुक्त तैजस शरीर जीव वर्ग परिमाण नहीं होते हैं किन्तु जीव वर्ग के अनन्तवें भाग मात्र ही होते हैं।

नैरयिकों के बद्ध-मुक्त शरीर

णेरइयाणं भंते! केवइया ओरालिय सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बद्धेल्लगा ते णं णत्थि। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं अणंता जहा ओरालिय मुक्केल्लगा तहा भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के औदारिक शरीर कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के औदारिक शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - बद्ध और मुक्त। उनमें से जो बद्ध औदारिक शरीर हैं वे उनके नहीं होते। उनमें से जो मुक्त औदारिक शरीर हैं वे अनन्त होते हैं जैसे औदारिक मुक्त शरीरों के विषय में कहा है उसी प्रकार यहाँ भी कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों के बद्ध और मुक्त औदारिक शरीर के विषय में प्ररूपणा की गई है। नैरयिकों के बद्ध औदारिक शरीर नहीं होते हैं क्योंकि जन्म से ही उनमें औदारिक शरीर संभव नहीं है। नैरयिकों के मुक्त औदारिक शरीरों का कथन औघिक मुक्त औदारिक शरीरों के समान ही समझ लेना चाहिये।

णेरइयाणं भंते! केवइया वेउव्विय सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुल पढम वग्गमूलं बिईय वग्गमूल पडुप्पण्णं, अहवा णं अंगुल बिईय वग्गमूल घणप्पमाणमित्ताओ सेढीओ। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा ओरालियस्स मुक्केल्लगा तहा भाणियव्वा।

कठिन शब्दार्थ - **अंगुल पढम वग्गमूलं** - अंगुल का प्रथम वर्गमूल, **बिईय वग्गमूल पडुप्पण्णं**- दूसरे वर्गमूल प्रत्युत्पन्न, **अंगुल बिईय वग्गमूल घणप्पमाणमित्ताओ** - अंगुल के दूसरे वर्गमूल के घन परिमाण मात्र।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के वैक्रिय शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - १. बद्ध और २. मुक्त। उनमें जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं, वे असंख्यात हैं और वे काल से असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों में अपहृत होते हैं। क्षेत्र से प्रतर के असंख्यातवें भाग परिमाण असंख्यात श्रेणियों जितने हैं। उन श्रेणियों की विष्कंभ सूची अंगुल परिमाण आकाश प्रदेशों के प्रथम वर्गमूल को दूसरे वर्ग मूल से गुणित करने पर निष्पन्न राशि जितनी होती है। अथवा अंगुल के द्वितीय वर्गमूल के घन परिमाण मात्र श्रेणियाँ जितनी हैं। उनमें जो मुक्त वैक्रिय शरीर हैं वे जिस प्रकार औदारिक के मुक्त शरीर कहे हैं उसी प्रकार समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में नैरयिकों के बद्ध और मुक्त वैक्रिय शरीरों का कथन किया गया है। नैरयिक जीव असंख्यात हैं अतः उनके बद्ध वैक्रिय शरीरों की संख्या भी असंख्यात ही है।

शंका - क्षेत्र से नैरयिकों के बद्ध वैक्रिय शरीर असंख्यात श्रेणी परिमाण कहे हैं यहाँ कितनी संख्या वाली श्रेणियाँ समझी जाएं?

समाधान - सम्पूर्ण प्रतर में असंख्यात श्रेणियाँ होती हैं किन्तु यहाँ मूल पाठ में प्रतर का असंख्यातवाँ भाग कहा है अर्थात् प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितनी श्रेणियाँ होती है उतनी श्रेणियाँ यहाँ ग्रहण करनी चाहिये। उनका विशेष परिणाम बतलाने के लिए कहा गया है - उन श्रेणियों की विष्कम्भ सूची अर्थात् विस्तार को लेकर सूची=एक प्रादेशिकी प्रदेशों की श्रेणी उतनी होती है, जितनी अंगुल के प्रथम वर्ग मूल को द्वितीय वर्ग मूल से गुणा करने पर जो राशि निष्पन्न होती है। आशय यह है कि एक अंगुल-परिमाण मात्र क्षेत्र के प्रदेशों की जितनी प्रदेश राशि होती है, उसके असंख्यात वर्ग मूल होते हैं। जैसे - प्रथम वर्गमूल का भी जो वर्गमूल होता है, वह द्वितीय वर्गमूल होता है, उस द्वितीय वर्गमूल का जो वर्गमूल होता है, वह तृतीय वर्गमूल होता है, इस प्रकार उत्तरोत्तर असंख्यात वर्गमूल होते हैं। अतः प्रस्तुत में प्रथम वर्गमूल को दूसरे वर्गमूल के साथ गुणित करने पर जितने प्रदेश होते हैं, उतने प्रदेशों की सूची की बुद्धि से कल्पना कर ली जाए। तत्पश्चात् विस्तार में उसे दक्षिण-उत्तर में लम्बी स्थापित कर ली जाए। वह स्थापित की हुई सूची जितनी श्रेणियों को स्पर्श करती है, उतनी श्रेणियाँ यहाँ ग्रहण कर लेनी चाहिए। उदाहरणार्थ - यों तो एक अंगुलमात्र क्षेत्र में असंख्यात प्रदेश राशि होती है, फिर भी असत्कल्पना से उसकी संख्या २५६ मान लें। इस २५६ संख्या का प्रथम वर्ग मूल सोलह (२×५=१०+६=१६) होता है। दूसरा वर्गमूल ४ और तृतीय वर्गमूल २ होता है। इनमें से जो द्वितीय वर्गमूल चार संख्या वाला है, उसके साथ सोलह संख्या वाले प्रथम वर्गमूल को गुणित करने पर ६४ (चौसठ) संख्या आती है। बस, इतनी ही इसकी श्रेणियाँ समझनी चाहिए। इसी बात को शास्त्रकार प्रकारान्तर से कहते हैं - अथवा अंगुल के द्वितीय वर्गमूल के घन-प्रमाण (घन जितनी) श्रेणियाँ समझनी चाहिए। इसका आशय यह है कि एक अंगुल मात्र क्षेत्र में जितने प्रदेश होते हैं, उन प्रदेशों की राशि के साथ द्वितीय वर्गमूल का, अर्थात् - असत्कल्पना से चार का जो घन हो, उतने परिमाण वाली श्रेणियाँ समझनी चाहिए। जिस राशि का जो वर्ग हो, उसे उसी राशि से गुणा करने पर 'घन' होता है। जैसे - दो का घन आठ है। वह इस प्रकार है - दो राशि का वर्ग चार है, चार को दो के साथ गुणा करने पर आठ संख्या होती है। इसलिए दो राशि का घन आठ हुआ। इसी प्रकार यहाँ पर भी चार (४) राशि का वर्ग सोलह होता है, सोलह को चार राशि के साथ गुणा करने पर चार का घन वही चौसठ (६४) आता है। इस तरह इन दोनों प्रकारों (तरीकों) में कोई वास्तविक भेद नहीं है। यहाँ वृत्तिकार एक तीसरा प्रकार भी बताते हैं - अंगुलपरिमाण क्षेत्र के प्रदेशों की राशि को अपने प्रथम वर्गमूल के साथ गुणा करने पर जितनी प्रदेश राशि होती है, उतने ही परिमाण वाली सूची जितनी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रेणियों को स्पर्श करती है, उतनी श्रेणियों में जितने आकाश प्रदेश हों, उतने ही नैरयिक जीवों के बद्ध वैक्रिय शरीर होते हैं।

णेरइयाणं भंते! केवइया आहारग सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, एवं जहा ओरालिए बद्धेल्लगा मुक्केल्लगा य भणिया तहेव आहारगा वि भाणियव्वा। तेयाकम्मगाइं जहा एएसिं चेव वेउव्वियाइं॥ ४०८॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! नैरयिकों के आहारक शरीर कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! नैरयिकों के आहारक शरीर दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. बद्ध और २. मुक्त। जिस प्रकार नैरयिकों के औदारिक बद्ध और मुक्त कहे गये हैं उसी प्रकार आहारक शरीर के विषय में कह देना चाहिये।

नैरयिकों के तैजस और कार्मण शरीर वैक्रिय शरीरों के समान कहना चाहिये।

विवेचन - नैरयिकों के बद्ध आहारक शरीर होते ही नहीं क्योंकि उनमें आहारक लब्धि संभव नहीं है। आहारक शरीर चौदह पूर्वधारी मुनियों को ही होता है। नैरयिकों के मुक्त आहारक शरीरों के विषय में पूर्वानुसार समझना चाहिये।

असुरकुमारों के बद्ध-मुक्त शरीर

असुरकुमाराणं भंते! केवइया ओरालिय सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! जहा णेरइयाणं ओरालिय सरीरा भणिया तहेव एएसिं भाणियव्वा।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमारों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! जैसे नैरयिकों के बद्ध और मुक्त औदारिक शरीरों के विषय में कहा गया है उसी प्रकार असुरकुमारों के बद्ध मुक्त औदारिक शरीरों के विषय में कहना चाहिये।

असुरकुमाराणं भंते! केवइया वेउव्विय सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुल पढम वग्गमूलस्स संखिज्जइभागो। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा ओरालियस्स मुक्केल्लगा तहा भाणियव्वा।

आहारग सरीरगा जहा एएसिं चेव ओरालिया तहेव दुविहा भाणियव्वा, तेयाकम्मग सरीरा दुविहा वि जहा एएसिं चेव वेउव्विया, एवं जाव थणियकुमारा॥ ४०९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! असुरकुमारों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! असुरकुमारों के वैक्रिय शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - बद्ध और मुक्त। उनमें जो बद्ध हैं वे असंख्यात हैं। काल से असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों में अपहृत होते हैं। क्षेत्र से प्रतर के असंख्यातवें भाग रूप असंख्यात श्रेणियाँ हैं वे श्रेणियों की विष्कंभ सूची अंगुल के प्रथम वर्ग मूल के संख्यातवें भाग परिमाण जानना चाहिए। उनमें जो मुक्त शरीर हैं वे औदारिक शरीर मुक्त शरीर के अनुसार कहना चाहिये।

आहारक शरीरों के विषय में जैसा इनके औदारिक शरीर के लिए कहा है उसी प्रकार कहना चाहिए। दोनों प्रकार के बद्ध और मुक्त तैजस और कार्मण शरीरों का कथन वैक्रिय शरीरों के समान समझ लेना चाहिए। यावत् स्तनित कुमारों तक इसी प्रकार जानना चाहिए।

असुरकुमारों के वैक्रिय बद्ध - अंगुल (उत्सेधागुंल की लम्बी एक प्रदेशी चौड़ी श्रेणि) के प्रथम वर्गमूल से कोई आधे न समझ ले एवं द्वितीय वर्गमूल जितने समझने पर असंख्यातवें भाग जितने हो जाते हैं। इस बात को समझने के लिए ही टीका में कल्पित असत्कल्पना में प्रथम वर्ग मूल के आधे आठ एवं द्वितीय २९ वर्गमूल रूप चार श्रेणियों के प्रदेश तुल्य नहीं बताकर ५-६ श्रेणियों के प्रदेश तुल्य अर्थात् प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग रूप बताये हैं। भवनपति के एक-एक निकाय के देव-देवी-प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग जितने हैं एवं सभी (दशों) मिलाकर भी प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग जितने ही हैं। पंच संग्रह में व अनुयोग द्वार सूत्र में 'प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग बताया वह ठीक नहीं है। असंख्यातवां भाग मानने पर 'महा दण्डक की अल्प बहुत्व' से विरोध आता है। (अनुयोग द्वार - हारिभद्रीयवृत्ति में तो 'प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग जितने बताये हैं।') असत्कल्पना से मान लेवे - असुरकुमार आदि १० निकाय पहले वर्गमूल जितने भी हो जावे तो भी उनसे नारक जीव असंख्यात गुणा हो जाते हैं। परन्तु यहाँ तो भवनपति 'पहले वर्ग मूल के भी संख्यातवें भाग जितने ही बताये हैं। असुरकुमार के वैक्रिय बद्धेलक प्रथम वर्गमूल के संख्यातवें भाग अर्थात् पांच छह श्रेणियों के प्रदेश जितने बताये हैं। ऐसे ही असत्कल्पना से वैमानिकों को आठ श्रेणियों के प्रदेश जितने बताये हैं परन्तु एक ही प्रकार की असत्कल्पना से तो वैमानिक अधिक हो जाते हैं किन्तु असुरकुमार ही है अतः अपने अपने लिए की गई असत् कल्पना को उस बोल तक ही सीमित समझना चाहिये। यदि बड़ी संख्या वाली राशि लेकर इसे घटित किया जाय तो एक ही प्रकार की असत्कल्पना से भी संगति हो जाती है। जैसे असत्कल्पना से पांचवें वर्ग की संख्या को अंगुल प्रथम वर्गमूल माना है (पांचवें वर्ग की संख्या ४२९४९६७२९६) इसका दूसरा वर्गमूल ६५५३६ व तीसरा वर्गमूल २५६ है। दूसरे व तीसरे को गुणा करने पर यह संख्या - १६७७७२१६ जितनी हुई इतने वैमानिक देव हैं। असुरकुमार को पहले वर्गमूल के संख्यातवें भाग (कल्पना से तीसरे भाग जितने) मानने पर ४२९४९६७२९६ ÷ ३=१४३१६५५७६५ इतने भवनपति (असुरकुमार आदि दसों) देव हैं। तिर्यंच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचेन्द्रिय के वैक्रिय बद्धेलक पहले वर्ग मूल के असंख्यातवें भाग जितने (कल्पना से चौथे भाग जितने) होने से प्रथम वर्ग मूल में ४ का भाग देने पर १०७३७४१८२४ इतने हुए। अतः इस प्रकार असत्कल्पना से संगति बराबर बैठ सकती है।

पृथ्वीकायिकों के बद्ध-मुक्त शरीर

पुढवीकाइयाणं भंते! केवइया ओरालिय सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जा लोगा। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं अणंता, अणंताहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा, अभवसिद्धिएहिंतो अणंतगुणा, सिद्धाणं अणंतभागो।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों के कितने औदारिक शरीर कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के औदारिक शरीर दो प्रकार के कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं - १. बद्ध और २. मुक्त। उनमें से जो बद्ध औदारिक शरीर हैं वे असंख्यात हैं और काल से असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं। क्षेत्र से असंख्यात लोक परिमाण है। उनमें जो मुक्त शरीर हैं वे अनन्त हैं। काल से वे अनन्त उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं। क्षेत्र से अनन्त लोक परिमाण है। वे अभव्यों से अनन्त गुणा हैं और सिद्धों के अनन्तवें भाग हैं।

पुढवीकाइयाणं भंते! केवइया वेउव्विय सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा-बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं णत्थि। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा एएसिं चेव ओरालिया तहेव भाणियव्वा। एवं आहारग सरीरा वि। तेयाकम्मगा जहा एएसिं चेव ओरालिया। एवं आउकाइया तेउकाइया वि॥ ४१०॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीवों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पृथ्वीकायिक जीवों के वैक्रिय शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - बद्ध और मुक्त। उनमें जो बद्ध शरीर हैं वे इनके नहीं होते। उनमें जो मुक्त शरीर हैं वे जिस प्रकार औदारिक शरीरों के विषय में कहा है उसी प्रकार कह देना चाहिये। इसी प्रकार आहारक शरीरों के विषय में भी कह देना चाहिये। तैजस और कार्मण शरीर इनके औदारिक शरीरों के अनुसार समझना चाहिये। इसी प्रकार अप्कायिक जीवों के और तैजस्कायिक जीवों के विषय में भी कह देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में पृथ्वीकायिकों, अप्कायिकों और तैजस्कायिकों के बद्ध और मुक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीरों की प्ररूपणा की गयी है। इनके बद्ध औदारिक शरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों के बराबर हैं। क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यात लोक प्रमाण है यानी अपनी अपनी अवगाहना से असंख्यात लोक व्याप्त होते हैं। मुक्त औदारिक शरीर सामान्य मुक्त शरीर की तरह समझना चाहिये। बद्ध तैजस और कार्मण शरीर बद्ध औदारिक की तरह और मुक्त शरीर सामान्य मुक्त औदारिक शरीरों के समान समझना चाहिये।

वायुकायिकों के बद्ध-मुक्त शरीर

वाउकाइयाणं भंते! केवइया ओरालिय सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। दुविहा वि जहा पुढवीकाइयाणं ओरालिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक जीवों के औदारिक शरीर कितने कहे गए हैं?

उत्तर - हे गौतम! वायुकायिक जीवों के दो प्रकार के औदारिक शरीर कहे गये हैं वे इस प्रकार हैं - बद्ध और मुक्त। ये दोनों प्रकारों औदारिक शरीर जिस प्रकार पृथ्वीकायिकों के औदारिक शरीर कहे हैं उसी प्रकार कहना चाहिये।

वाउकाइयाणं भंते! केवइया वेउव्विया सरीरा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखिज्जा, समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा पलिओवमस्स असंखिज्जइ भाग मेत्तेणं कालेणं अवहीरंति, णो चेव णं अवहिया सिया। मुक्केल्लगा जहा पुढवीकाइयाणं। आहारय तेया कम्मा जहा पुढवीकाइयाणं, वणप्फइकाइयाणं जहा पुढवीकाइयाणं, णवरं तेयाकम्मगा जहा ओहिया तेयाकम्मगा॥ ४११॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! वायुकायिक जीवों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! वायुकायिक जीवों के वैक्रिय शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - बद्ध और मुक्त। उनमें जो बद्ध शरीर है, वे असंख्यात हैं और समय समय पर अपहृत करते करते पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र काल तक अपहरण होता है किन्तु इस प्रकार कभी अपहरण हुआ नहीं है। उनके मुक्त शरीर पृथ्वीकायिकों की तरह समझना चाहिए। आहारक, तैजस और कार्मण शरीर पृथ्वीकायिक जीवों की तरह कह देना चाहिये।

वनस्पतिकायिक जीवों की प्ररूपणा पृथ्वीकायिक जीवों की तरह समझना चाहिये। विशेषता यह है कि इनके तैजस और कार्मण शरीर औधिक (सामान्य) तैजस और कार्मण शरीर की तरह कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वायुकायिक एवं वनस्पतिकायिक जीवों के बद्ध और मुक्त शरीरों का कथन किया गया है। वायुकायिकों के औदारिक शरीर पृथ्वीकायिकों की तरह समझना चाहिये। वायुकायिकों के बद्ध वैक्रिय शरीर असंख्यात हैं। काल से यदि प्रतिसमय एक-एक वैक्रिय शरीर का अपहरण किया जाय तो पल्योपम के असंख्यातवें भाग काल में उनका अपहरण हो अर्थात् पल्योपम के असंख्यातवें भाग के जितने समय हैं उतने वायुकायिकों के बद्ध वैक्रिय शरीर हैं। वायुकायिकों के चार भेद हैं। सूक्ष्म और बादर, इनके प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक। उनमें बादर पर्याप्तक के सिवाय शेष तीन भेद प्रत्येक असंख्यात लोकाकाश प्रदेश परिमाण है और जो बादर पर्याप्तक हैं वे प्रतर के असंख्यातवें भाग परिमाण है। इन तीन भेदों में वायुकायिकों के वैक्रिय लब्धि नहीं होती। बादर पर्याप्तक वायुकायिकों में भी असंख्यात भाग मात्रा में ही वैक्रिय लब्धि होती है। इस विषय में टीकाकार कहते हैं -

"तिण्हं ताव रासीणं वेउव्विय लद्धी चेव नत्थि, बायर पज्जत्ताणं वि संखेज्जइभागमित्ताणं लद्धी अत्थि"

इस प्रकार टीका में टीकाकार आचार्य मलय गिरि जी कहते हैं किन्तु टीकाकार का यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता है। उसका कारण इस प्रकार हैं - एकेन्द्रिय जीवों में पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितने काल में वैक्रिय नाम कर्म की उद्वलना हो जाती है तथा यदि २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम तक भी रहे तो भी एकेन्द्रिय में जाने वाले जीवों में सर्वाधिक तो तिर्यंच पंचेन्द्रिय और ज्योतिषी (देव-देवी) ही होते हैं। तो भी वैक्रिय नाम कर्म की सत्ता वाले - 'प्रतर के असंख्यातवें भाग' ही होते हैं। २० कोड़ाकोड़ी सागरोपम में (उद्वलना काल यदि बड़ा भी होवे तो उत्कृष्ट स्थिति ले ली है) तो प्रतर के असंख्यातवें भाग जितनें जीव ही इकट्ठे हो पायेंगे। किन्तु पर्याप्त वायु काय तो 'असंख्य प्रतर' प्रमाण हैं। उसका संख्यातवां भाग भी असंख्य प्रतर रूप ही होता है। अतः इतने जीव तो हो ही नहीं सकते। इसलिए पर्याप्त बादर वायुकाय वैक्रिय शरीरी (लब्धि वाले) स्वराशि (पर्याप्त बादर वायुकाय की राशि) के असंख्यातवें भाग जितने ही मिलते हैं। उपर्युक्त आधार से - 'पल्योपम का असंख्यातवां भाग' कहना ही आगमज्ञ बहुश्रुत भगवन्तों को उचित ध्यान में आता है।

उद्वलना का अर्थ - बंधी हुई कर्म प्रकृतियों के बंध एवं उदय के अयोग्य एकेन्द्रिय आदि स्थानों में लम्बे समय तक रहने से स्वतः उन कर्मों की स्थिति पूरी हो जाने से एवं उनका नया बंध नहीं होने से उन प्रकृतियों का सत्ता में से निकल जाना 'उद्वलन' कहलाता है।

अतः पल्योपम के असंख्यातवें भाग के समय परिमाण ही वायुकायिक जीवों में प्रश्न के समय वैक्रिय लब्धि वाले होते हैं, अधिक नहीं। वायुकायिक जीवों के मुक्त वैक्रिय शरीर औघिक (सामान्य) मुक्त वैक्रिय शरीर की तरह कहना चाहिये। बद्ध तैजस और कार्मण शरीर बद्ध औदारिक की तरह और मुक्त तैजस और कार्मण शरीर मुक्त औघिक (सामान्य) तैजस कार्मण शरीर की तरह ही कहना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। वायुकायिक जीवों में आहारक लब्धि नहीं होने से बद्ध आहारक शरीर नहीं होते हैं किन्तु मुक्त आहारक शरीर अनन्त ही होते हैं।

वनस्पतिकायिक जीवों में औदारिक शरीर पृथ्वीकाय की तरह और तैजस तथा कार्मण शरीर सामान्य तैजस और कार्मण शरीर की तरह समझना चाहिये।

बेइन्द्रिय आदि के बद्ध-मुक्त शरीर

बेइंदियाणं भंते! केवइया ओरालिया सरीरगा पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ असंखिज्जाओ सेढीओ पयरस्स असंखिज्जइभागो, तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई असंखिज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ असंखिज्जाइं सेढिवग्गमूलाइं। बेइंदियाणं ओरालिय सरीरेहिं बद्धेल्लगेहिं पयरो अवहीरइ, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणीओसप्पिणीहिं कालओ, खेत्तओ अंगुल पयरस्स आवलियाए य असंखिज्जइ भागपलिभागेणं। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते जहा ओहिया ओरालियमुक्केल्लगा। वेउव्विया, आहारगा य बद्धेल्लगा णत्थि। मुक्केल्लगा जहा ओहिया ओरालियमुक्केल्लगा। तेया कम्मगा जहा एएसिं चेव ओहिया ओरालिया, एवं जाव चउरिंदिया।

कठिन शब्दार्थ - विक्खंभसूई - विष्कम्भ सूची, **सेढिवग्गमूलाइं** - श्रेणी के वर्गमूल, **पयरो** - प्रतर।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! बेइन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! बेइन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं- बद्ध और मुक्त। उनमें जो बद्ध औदारिक शरीर हैं वे असंख्यात है। काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों से अपहृत होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असंख्यातवें भाग परिमाण असंख्यातश्रेणियाँ होती है ऐसा जानना चाहिए। उन श्रेणियों की विष्कम्भ सूची असंख्यात कोटाकोटि योजन परिमाण या असंख्यात श्रेणी के वर्गमूल परिमाण होती है। बेइन्द्रिय जीवों के बद्ध औदारिक शरीरों से प्रतर अपहृत किया जाता है। काल से असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के समयों से अपहृत होता है। क्षेत्र से अंगुल मात्र प्रतर और आवलिका के असंख्यात भाग परिमाण खंड से अपहार होता है। उनमें जो मुक्त औदारिक शरीर हैं वे औघिक (सामान्य) मुक्त औदारिक शरीर की तरह समझना चाहिये। बद्ध वैक्रिय और आहारक शरीर नहीं होते हैं। मुक्त वैक्रिय और आहारक शरीरों का कथन औघिक मुक्त औदारिक शरीरों की तरह कह देना चाहिये। इनके बद्ध और मुक्त तैजस कार्मण शरीरों का कथन औघिक औदारिक शरीरों की तरह कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार यावत् चउरिन्द्रिय जीवों के बद्ध और मुक्त शरीरों के विषय में समझ लेना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तीन विकलेन्द्रिय जीवों के बद्ध और मुक्त शरीरों का कथन किया गया है। तीन विकलेन्द्रिय जीवों में तीन शरीर पाये जाते हैं-औदारिक, तैजस और कार्मण। बेइन्द्रिय में बद्ध औदारिक शरीर असंख्यात हैं। काल की अपेक्षा समुच्चय जीव की तरह कह देना चाहिए। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असंख्यातवें भाग में जितनी श्रेणियाँ होती हैं उनमें जितने आकाश प्रदेश होते हैं उनके बराबर जानना चाहिए। श्रेणियों का परिमाण निश्चय करने के लिए असंख्यात कोटि-कोटि (कोड़ा-कोड़ी) योजन परिमाण सूची लेना चाहिए। अथवा एक श्रेणी में जितने प्रदेश होते हैं उनके असंख्यात वर्ग मूल होते हैं। उन वर्गमूलों को जोड़ने से जो प्रदेश राशि आवे उसे परिमाण सूची लेना चाहिए। उदाहरण के लिए श्रेणी में असंख्यात प्रदेश होने पर भी असत्कल्पना से ६५५३६ प्रदेश माने जायं। उनका प्रथम वर्ग मूल २५६, दूसरा वर्गमूल १६, तीसरा वर्ग मूल ४ और चौथा वर्गमूल २ है। इन्हें जोड़ने से २७८ हुए। इस तरह श्रेणी के असंख्यात वर्गमूलों को जोड़ने से जो प्रदेश राशि आवे उसे परिमाण सूची लेनी चाहिये। एक प्रदेशी श्रेणी रूप प्रतर के अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण खंड कर, एक-एक बेइन्द्रिय जीव द्वारा एक एक खंड आवलिका के असंख्यातवें भाग में निकाला जाय तो सारा प्रतर सभी बेइन्द्रिय जीवों से असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी परिमाण काल में निकलता है। इसी तरह बेइन्द्रिय के बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर कह देना चाहिए। तेइन्द्रिय ❖ चतुरिन्द्रिय के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर भी बेइन्द्रिय की तरह कह देना चाहिए।

बेइन्द्रिय के औदारिक बद्ध - 'असंख्यात श्रेणी वर्गमूल' जितने बताये हैं। यहाँ सभी (असंख्यात) वर्गमूलों की जोड़ (योग) नहीं बताई है। परन्तु पूर्वापर संबंध को एवं पूर्वाचार्यों द्वारा की हुई व्याख्याओं को देखते हुए 'सभी वर्गमूलों की जोड़ करना' ऐसा अर्थ करना उचित लगता है। जैसे - **'एगत्तं पुहुत्तं'** में 'अनेक' अर्थ नहीं लेकर 'सभी' अर्थ लिया है।

अन्य प्रकार से बेइन्द्रिय जीवों के औदारिक बद्ध शरीर - आगम के मूल पाठ में बेइन्द्रिय जीवों के औदारिक बद्ध शरीरों को प्रतर क्षेत्र से अपहार कराने का पाठ दिया है। जिसका अर्थ टीकाकार आचार्य श्रीमलयगिरिजी ने 'अंगुलमात्रस्थप्रतरस्थ - एक प्रादेशिक श्रेणि रूपस्य असंख्येय भाग प्रति भाग प्रमाणेन खण्डेन ' करके प्रतर खण्ड को श्रेणि खंड रूप ही माना है, जो ऊपर के आगम पाठ के साथ संगत नहीं होने से उचित नहीं है। क्योंकि बेइन्द्रिय जीवों के औदारिक शरीर के बद्ध प्रतर के असंख्यातवें भाग (असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन रूप) में रही हुई असंख्यात श्रेणियों के प्रदेश तुल्य है। एक श्रेणी के असंख्यात वर्ग मूलों के योग रूप असंख्यात श्रेणियों के प्रदेश तुल्य हैं। इस दृष्टि से श्रेणि के प्रथम वर्गमूल के लगभग (असंख्यातवां भाग कम) प्रदेशों पर अर्थात् असंख्य कोड़ाकोड़ी

❖ इतना विशेष है कि तेइन्द्रिय के बद्ध औदारिक शरीर में बेइन्द्रिय की अपेक्षा असंख्यात कोटि-कोटि योजन क्षेत्र अधिक लेना चाहिए और तेइन्द्रिय की अपेक्षा चउरिन्द्रिय में असंख्यात कोटि-कोटि योजन क्षेत्र अधिक लेना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योजन के श्रेणी खण्ड पर एक-एक बेइन्द्रिय को रखने से प्रतर पूरा भरता है। अंगुल के असंख्यातवें भाग जितने श्रेणिखंड पर यदि रखना माना जावे तो एक असंख्यातवां भाग कम पूरे प्रतर की श्रेणियों के प्रदेश तुल्य बेइन्द्रिय के बद्ध औदारिक शरीर मानना पड़ेगा। अंगुल के असंख्यातवें भाग का प्रतर खण्ड मानने पर यह बाधा नहीं आती है। क्योंकि नंदी सूत्र में - **'अंगुल सेढिमिते ओसप्पिणिओ असंखेज्जा'** कहा है। अर्थात् 'अंगुल जितनी श्रेणि में भी असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी के समय प्रमाण आकाश प्रदेश होते हैं।' ऐसी अंगुल के असंख्यातवें भाग (आवलिका समय तुल्य) जितना चौरस प्रतर खण्ड मानने पर यदि उन की एक श्रेणि बनाई जाय तो वह श्रेणि असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन जितनी हो जायेगी। इससे दोनों प्रतर के उत्तरों में समानता होकर संगति हो जायेगी।

टीकाकार अंगुल के असंख्यातवें भाग रूप श्रेणी खण्ड पर एक बेइन्द्रिय को रखते हुए पूरा प्रतर भरना कहते हैं। परन्तु ऐसा करने से तो आधा प्रतर भी नहीं भरता है। जैसे असत् कल्पना से एक श्रेणी के प्रदेश ६५५३६ है। अतः सम्पूर्ण प्रदेश लाना हो तो एक श्रेणी के जितने प्रदेश हैं उनको उतने से ही गुणा करने पर प्रतर के प्रदेश आ जाते हैं तथा प्रतर के प्रदेशों को श्रेणी के प्रदेशों से गुणा करने पर उनके घन प्रदेश आ जाते हैं। प्रतर के प्रदेश ६५५३६×६५५३६=४२९४९६७२९६। बेइन्द्रिय के बद्ध जीव १८२१८९०८ प्रदेश जितने। एक श्रेणी के वर्गमूल का योग २७८ प्रदेश (इतनी श्रेणियाँ लेना)। एक श्रेणी के प्रदेशों (६५५३६) को प्रतर के प्रदेशों में रखने पर ४२९४९६७२९६ ÷ १८२१८९०८=२२५ प्रतर व कुछ बचते हैं। अतः वर्ग की पूरी गणित के लिए २२५ प्रतर मान लें तो १५ प्रतर लम्बे चौड़े चौरस (वर्ग) प्रतर पर एक एक बेइन्द्रिय को रखे तो प्रतर पूरा भर सकता है। यदि श्रेणी पर ही रखना चाहे तो एक श्रेणी के असंख्यातवें भाग कम ऐसे २२५ प्रतर लम्बी श्रेणी जो वास्तव में असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन जितनी लम्बी हो जाती है। ऐसी श्रेणियों पर बिठाने से यद्यपि प्रतर पूरा भर जाता है तथापि मूल पाठ में आये हुए प्रतर रूप अंगुल का असंख्यातवां भाग बराबर नहीं बैठ सकता। अतः एक श्रेणी के प्रथम वर्गमूल के एक असंख्यातवें भाग कम ऐसे प्रथम वर्ग मूल के २२५ प्रदेश वाले (असत् कल्पना से) प्रतर रूप अंगुल के असंख्यातवें भाग पर (असत् कल्पना से) १५ प्रतर लम्बे १५ प्रतर चौड़े प्रतर खंड पर) एक बेइन्द्रिय को रखने पर प्रतर पूर्ण भर जाता है।

शंका - अंगुल के असंख्यातवें भाग रूप प्रतर खण्ड में असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजन जितनी लम्बी श्रेणी कैसे बन सकती है?

समाधान - प्रतर रूप अंगुल के चौथे असंख्यात (आवलिका के समय) जितने टुकड़े किये जाय उनमें से एक टुकड़ा जो अंगुल के असंख्यातवें भाग जितना है उतना लम्बा चौड़ा क्षेत्र लिया। उस एक भाग में भी असंख्यात उत्सर्पिणी अवसर्पिणी जितनी श्रेणियाँ हैं। उनमें से एक आवलिका जितने श्रेणी खण्डों को उठाकर लम्बी पंक्ति में रखेंगे तो वह श्रेणी एक अंगुल जितनी लम्बी हो जायेगी। इसी प्रकार पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी जितने समय तुल्य श्रेणी खण्डों को उठाकर एक लम्बी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंक्ति में रखे तो वह पंक्ति (श्रेणी) असंख्य कोड़ाकोड़ी योजन जितनी लम्बी बन जायेगी। जैसे असत् कल्पना से प्रतर रूप अंगुल के ६५५३६ प्रदेशों जितने लम्बे चौड़े क्षेत्र के कुल प्रदेश ६५५३६×६५५३६=४२९४९६७२९६ हुए। उसका असंख्यातवां (वर्ग रूप) भाग १६ वाँ हिस्सा मानने पर उसमें प्रदेश १६७७७२१६ होते हैं। यह असंख्यातवां भाग ४०९६ प्रदेशों जितना लम्बा और चौड़ा है। अब ४०९६ प्रदेशों वाले श्रेणी खंडों को १६ बार उठा उठा कर पंक्ति में रखने पर एक अंगुल हो जायेगा। इस प्रकार ४०९६ बार उठाने पर यह श्रेणी बहुत लम्बी (असत् कल्पना से २५६ अंगुल जितनी) हो जायेगी। अतः शंका का स्थान नहीं रहता है। इन उपर्युक्त युक्तियों से 'प्रतर रूप अंगुल का असंख्यातवां भाग' मानना ही उचित लगता है।

बेइन्द्रिय के बद्धेलग शरीर बताते हुए अंगुल के असंख्यातवें भाग रूप प्रतर खण्ड से संपूर्ण (एक) प्रतर जितने क्षेत्र का अपहार करना बताया है एवं आवलिका के असंख्यातवें भाग रूप काल में उनका अपहार करना बताया है। यद्यपि प्रतिसमय अपहार किया जाता तो भी असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी बीत जाती है। परन्तु यहाँ अंगुल के असंख्यातवें भाग रूप प्रतर खंड की साधर्म्यता से बता दिया गया है। परन्तु कोई खास प्रयोजन नहीं है।

तिर्यंच पंचेन्द्रियों के बद्ध-मुक्त शरीर

पंचेंदिय तिरिक्ख जोणियाणं एवं चेव। णवरं वेउव्विय सरीरएसु इमो विसेसो-

अर्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के विषय में भी इसी प्रकार कह देना चाहिए। इनके बद्ध और मुक्त वैक्रिय शरीरों में इस प्रकार विशेषता है।

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणियाणं भंते! केवइया वेउव्विय सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य। तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं असंखिज्जा, जहा असुरकुमाराणं, णवरं तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई अंगुल पढम वग्गमूलस्स असंखिज्जइभागो। मुक्केल्लगा तहेव॥ ४१२॥

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों के वैक्रिय शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक जीवों के वैक्रिय शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं, वे इस प्रकार हैं - बद्ध और मुक्त। उनमें जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं, वे असंख्यात हैं इत्यादि। असुरकुमार जीवों के समान समझना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि उन श्रेणियों की विष्कम्भ सूची अंगुल के प्रथम वर्गमूल के असंख्यातवें भाग परिमाण समझनी चाहिये। मुक्त वैक्रिय शरीरों के विषय में भी उसी प्रकार समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के बद्ध और मुक्त शरीरों की प्ररूपणा की गई है। तिर्यंच पंचेन्द्रिय के बद्ध औदारिक, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर बेइन्द्रिय की तरह कह देना चाहिए। तिर्यंच पंचेन्द्रिय के बद्ध वैक्रिय शरीर असुरकुमारों की तरह कह देना चाहिए। किन्तु इतना अन्तर है कि असुरकुमारों में सूची के परिमाण में अंगुल परिमाण क्षेत्र की प्रदेश राशि के प्रथम वर्गमूल का संख्यातवां भाग लिया है पर यहाँ असंख्यातवां भाग लेना चाहिए।

मनुष्यों के बद्ध-मुक्त शरीर

मणुस्साणं भंते! केवइया ओरालिय सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं सिय संखिज्जा, सिय असंखिज्जा, जहण्णपए संखिज्जा, संखिज्जाओ कोडाकोडीओ, ति जमल पयस्स उवरिं चउ जमल पयस्स हिट्ठा, अहवा णं पंचम वग्गपडुप्पण्णो छट्ठो वग्गो, अहवा णं छण्णउई छेयणग दाइरासी, उक्कोसपए असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं अवहीरंति कालओ, खेत्तओ रूव पक्खित्तेहिं मणुस्सेहिं सेढी अवहीरइ, तीसे सेढीए कालखेत्तेहिं अवहारो मग्गिज्जइ-असंखिज्जा, असंखिज्जाहिं उस्सप्पिणिओसप्पिणीहिं कालओ, खेत्तओ अंगुल पढम वग्गमूलं तइय वग्गमूल पडुप्पण्णं। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते जहा ओरालिया ओहिया मुक्केल्लगा।

कठिन शब्दार्थ - **ति जमल पयस्स** - तीन यमल पद के, **छण्णउई छेयणगदाई** - छियानवें छेदनकदायी।

भावार्थ - **प्रश्न** - हे भगवन्! मनुष्यों के औदारिक शरीर कितने प्रकार के कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के औदारिक शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - बद्ध और मुक्त। उनमें जो बद्ध औदारिक शरीर हैं वे कदाचित् संख्यात और कदाचित् असंख्यात होते हैं। जघन्य पद में संख्यात होते हैं या संख्यात कोटाकोटि परिमाण होते हैं अथवा तीन यमल पद के ऊपर तथा चार यमल पद के नीचे होते हैं, अथवा पांचवें वर्ग से गुणित छठे वर्ग परिमाण होते हैं अथवा छियानवें छेदनक दायी राशि परिमाण होते हैं। उत्कृष्ट पद में असंख्यात हैं और काल से असंख्यात, उत्सर्पिणियों अवसर्पिणियों के समयों से अपहृत होते हैं। क्षेत्र से एक रूप अर्थात् एक संख्या जिसमें प्रक्षिप्त की जाय ऐसे मनुष्यों से श्रेणी अपहृत होती है। उस श्रेणी की काल और क्षेत्र से अपहार मार्गणा होती है। काल की अपेक्षा असंख्यात उत्सर्पिणियों और अवसर्पिणियों के समयों से अपहार होता है। क्षेत्र की अपेक्षा अंगुल के प्रथम वर्ग मूल को तीसरे वर्ग मूल से गुणित संख्या परिमाण जानना चाहिए। उनमें जो मुक्त औदारिक शरीर हैं वे सामान्य मुक्त औदारिक शरीरों की तरह समझना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणुस्साणं भंते! केवइया वेउव्विया सरीरया पण्णत्ता?

गोयमा! दुविहा पण्णत्ता। तंजहा - बद्धेल्लगा य मुक्केल्लगा य, तत्थ णं जे ते बद्धेल्लगा ते णं संखिज्जा, समए समए अवहीरमाणा अवहीरमाणा संखिज्जेणं कालेणं अवहीरंति, णो चेव णं अवहीरिया सिया। तत्थ णं जे ते मुक्केल्लगा ते णं जहा ओरालिया ओहिया। आहारग सरीरा जहा ओहिया। तेया कम्मगा जहा एएसिं चेव ओरालिया।

भावार्थ - प्रश्न - हे भगवन्! मनुष्यों के वैक्रिय शरीर कितने कहे गये हैं?

उत्तर - हे गौतम! मनुष्यों के वैक्रिय शरीर दो प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं - बद्ध और मुक्त। उनमें जो बद्ध वैक्रिय शरीर हैं वे असंख्यात हैं। यदि वे समय समय में अपहृत किये जाय तो संख्यात काल से अपहृत होते हैं किन्तु इस प्रकार अपहृत नहीं किये गये हैं। उनमें जो मुक्त वैक्रिय शरीर हैं वे औधिक (सामान्य) औदारिक शरीरों के समान समझना चाहिये। मनुष्यों के बद्ध मुक्त आहारक शरीरों का कथन औधिक आहारक शरीरों के समान तथा तैजस कार्मण शरीरों का कथन इन्हीं के औदारिक शरीरों की तरह कर देना चाहिये।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में मनुष्यों के बद्ध और मुक्त शरीरों की प्ररूपणा की गयी है। मनुष्यों के बद्ध औदारिक शरीर स्यात् (किसी अपेक्षा) संख्यात स्यात् असंख्यात हैं। जब सम्मूर्च्छिम मनुष्य का विरह पड़ता है तब गर्भज मनुष्य संख्यात होते हैं। जब सम्मूर्च्छिम का विरह नहीं होता तब गर्भज और सम्मूर्च्छिम मनुष्य दोनों को मिलाकर कभी संख्यात कभी असंख्यात होते हैं। जघन्य संख्यात की संख्या इस प्रकार है - संख्यात कोटि-कोटि, तीन यमल पद ❀ के ऊपर और चार यमल पद के नीचे, पांचवें वर्गमूल से गुणा किया हुआ छठा वर्ग मूल ✿ अथवा छ्यानवें छेदनक दायी ✡ (**छण्णउई छेयणगदाई**)। मनुष्य उत्कृष्ट असंख्यात कहे सो असंख्यात इस तरह समझना चाहिए। काल की अपेक्षा प्रति समय

❀ आठ अंक स्थानों का एक यमल पद होता है। मनुष्यों की संख्या के २९ अंक हैं। अतः तीन यमल पद के २४ अंक हुए और शेष ५ अंक रहते हैं। अतः मनुष्यों की संख्या तीन यमल पद के ऊपर और चार यमल पद के नीचे कही है।

✿ दो का वर्ग ४, ४ का वर्ग १६, १६ का वर्ग २५६, २५६ का वर्ग ६५५३६, ६५५३६ का वर्ग ४२९४९६७२९६ यह पांचवां वर्ग हुआ।

४२९४९६७२९६ का वर्ग १८४४६७४४०७३७०९५५१६१६ यह छठा वर्ग हुआ। इस छठे वर्ग की संख्या को पांचवें वर्ग की संख्या से गुणा करने पर २९ अंकों की संख्या ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ आती है। जघन्य पद में मनुष्य की संख्या इतनी जानना चाहिए।

✡ छेदनक का अर्थ विभाग होता है। जिस संख्या को दो से विभाजित करने पर छियानवें (९६) बार दो का भाग जाता है उस संख्या को 'छियानवे छेदनक दायी' कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक एक शरीर निकालने पर असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी परिमाण काल लगता है अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के जितने समय होते हैं, उतने उत्कृष्ट मनुष्य होते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट पद में जितने मनुष्य हैं, उनमें असत् कल्पना से एक मनुष्य और मिलाने पर एक श्रेणी खाली हो जाती है। अर्थात् एक अंगुल के प्रदेशों के प्रथम वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करना चाहिए। गुणा करने से जितने आकाश प्रदेशों का खंड आवे, ऐसे आकाश खंडों से श्रेणी को खाली की जाय, तो जितने आकाश खंडों से श्रेणी खाली होती है उतने से मनुष्य भी पूरे हो जाते हैं, यदि एक मनुष्य अधिक हो। चूंकि एक मनुष्य और नहीं है अतः श्रेणी में एक आकाश खंड जितनी जगह खाली रह जाती है। मनुष्य के बद्ध वैक्रिय शरीर संख्यात होते हैं। मनुष्य के बद्ध आहारक शरीर समुच्चय जीव के आहारक शरीर की तरह कहना चाहिए। मनुष्य के बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर मनुष्य के औदारिक शरीर की तरह कहना चाहिए।

मनुष्यों के औदारिक बद्ध जघन्य पद में संख्याता ही बताये हैं। जघन्य पद में गर्भज मनुष्य (सम्मूर्च्छिम मनुष्य के विरह के समय) ही लेना चाहिये। यह भी छिन्नु छेदनकदाई राशि आदि ५ उपमा वाले २९ अंक ही समझना तथा यह राशि गर्भज मनुष्यों की भी जघन्य ही समझना अर्थात् इस राशि से कम मनुष्य तो लोक में कभी भी नहीं होते हैं। गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट संख्या इससे अधिक होती है वह भी २९ अंकों से आगे जाने वाली संभव नहीं है कुछ अंकों में परिवर्तन हो सकता है। असत्कल्पना से उत्सेध अंगुल से एक एक बेंत की अवगाहना जितने स्थान में भी एक एक गर्भज मनुष्यों को रखे तो भी समय क्षेत्र के पूरे ४५ लाख योजन के क्षेत्र में भी ये २९ अंकों की संख्या के मनुष्य नहीं समाते हैं। अतः पूज्य गुरुदेव फरमाया करते थे कि - 'गर्भ में रहे हुए मनुष्यों को गिनकर २९ अंकों की संख्या पूरी हो सकती है। क्योंकि गर्भ में शत सहस्र पृथक्त्व (अनेक लाख) जीव होना भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक ५ में बताया है वे जीव थोड़े से क्षेत्र में रह जाने से इतने मनुष्यों का ४५ लाख योजन के क्षेत्र में समावेश हो सकता है।

उत्कृष्ट पद में मनुष्यों की संख्या गर्भज और सम्मूर्च्छिम मनुष्य जब उत्कृष्ट संख्या में हो तब समझना चाहिए। इनकी संख्या श्रेणी के असंख्यातवें भाग होती है। यह श्रेणि का असंख्यातवां भाग आठवें असंख्याता की राशि जितना समझना ध्यान में आता है।

वाणव्यंतर आदि के बद्ध-मुक्त शरीर

वाणमंतराणं जहा णेरइयाणं ओरालिया आहारगा य। वेउव्विय सरीरगा जहा णेरइयाणं, णवरं तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई, संखिज्ज जोयण सय वग्गपलिभागो पयरस्स। मुक्केल्लया जहा ओरालिया, आहारग सरीरा जहा असुरकुमाराणं, तेया कम्मया जहा एएसि णं चेव वेउव्विया। जोइसियाणं एवं चेव, णवरं तासि णं सेढीणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विक्खंभसूई, बि छप्पण्णंगुल सय वग्गपलिभागो पयरस्स। वेमाणियाणं एवं चेव, णवरं तासि णं सेढीणं विक्खंभसूई, अंगुल बिइय वग्गमूलं तइय वग्गमूल पडुप्पण्णं, अहवा णं अंगुल तइय वग्गमूल घणप्पमाणमेत्ताओ सेढीओ, सेसं तं चेव॥ ४१३॥

भावार्थ - वाणव्यंतर देवों के बद्ध और मुक्त औदारिक तथा आहारक शरीरों का निरूपण नैरयिकों के समान समझ लेना चाहिये। वाणव्यंतर देवों के वैक्रिय शरीरों का निरूपण भी नैरयिकों के समान है किन्तु इतनी विशेषता है कि उन श्रेणियों की विष्कम्भ सूची जानना चाहिए। संख्यात सैकड़ों योजन के वर्ग प्रमाण खंड प्रतर के पूरण (पूरने) और अपहार में वह सूची है। मुक्त वैक्रिय शरीरों का कथन औधिक औदारिक शरीरों के अनुसार समझना चाहिये। आहारक शरीर असुरकुमारों की तरह जानना चाहिए। तैजस और कार्मण शरीरों का कथन उन्हीं के वैक्रिय शरीर के समान कह देना चाहिये।

ज्योतिषियों में भी इसी प्रकार समझ लेना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि उन श्रेणियों की विष्कम्भ सूची दो सौ छप्पन अंगुल वर्ग परिमाण खण्ड रूप प्रतर के पूरण और अपहार में समझना चाहिये।

वैमानिकों के बद्ध और मुक्त शरीरों की प्ररूपणा भी इसी तरह समझनी चाहिये। विशेषता यह है कि उन श्रेणियों की विष्कम्भ सूची तीसरे वर्ग मूल से गुणित अंगुल के दूसरे वर्ग मूल परिमाण है अथवा अंगुल के तीसरे वर्गमूल के घन के बराबर श्रेणियां हैं। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त कथन के अनुसार समझना चाहिए।

विवेचन - प्रस्तुत सूत्र में वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के बद्ध और मुक्त शरीरों की प्ररूपणा की गयी है। वाणव्यन्तर में तीन शरीर पाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं - वैक्रिय, तैजस और कार्मण। वाणव्यन्तर में बद्ध वैक्रिय, बद्ध तैजस और बद्ध कार्मण शरीर असंख्यात होते हैं। काल की अपेक्षा प्रति समय एक-एक शरीर निकालने पर असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी परिमाण काल लगता है। क्षेत्र की अपेक्षा प्रतर के असंख्यातवें भाग की असंख्यात श्रेणियों के आकाश प्रदेश परिमाण है। श्रेणियों की विष्कंभ सूची संख्यात सौ योजन वर्ग ✪ परिमाण है। आशय यह है कि संख्यात सौ योजन वर्ग परिमाण श्रेणी खंड में एक-एक वाणव्यन्तर की स्थापना की जाय तो सारा प्रतर भर जाता है। अथवा एक-एक वाणव्यन्तर के साथ संख्यात सौ योजन वर्ग परिमाण श्रेणी का आकाश खंड निकाला जाय तो इधर वाणव्यन्तर समाप्त हो जाते हैं उधर सारा प्रतर खाली हो जाता है।

ज्योतिषी देवों के शरीरों का वर्णन भी वाणव्यंतर देवों की तरह ही है। किन्तु अन्तर इतना है कि

✪ संख्यात सौ योजन वर्ग की जगह धारणा से ३०० योजन वर्ग भी कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाणव्यन्तर में संख्यात सौ योजन वर्ग प्रमाण विष्कम्भ सूची कही गयी है उसके बदले ज्योतिषी देवों में २५६ अंगुल वर्ग परिमाण कहनी चाहिए।

वाणव्यंतर देवों के वैक्रिय बद्ध में इनकी विष्कम्भ सूची तिर्यंच पंचेन्द्रिय के औदारिक शरीर की विष्कम्भ सूची से असंख्यात गुण हीन समझना चाहिये। मूल पाठ में तो उनके अपहार वाले क्षेत्र की अपेक्षा विष्कम्भ सूची बताई है किन्तु श्रेणियों की चौड़ाई रूप विष्कम्भ सूची तो उपर्युक्त रीति से समझना चाहिये। ज्योतिषी के वैक्रिय बद्ध में इनकी विष्कम्भसूची व्यंतरदेवों से संख्यात गुणी बड़ी समझना चाहिये। मूल पाठ में २५६ अंगुल के वर्ग प्रमाण प्रतर खण्ड रूप विष्कम्भ सूची बताई है वह तो अपहार रूप प्रतिभाग अंश की अपेक्षा समझना चाहिये। यह प्रतिभाग अंश तो २५६ अंगुल के वर्ग प्रमाण प्रतर खण्ड रूप होने से व्यंतर देवों से संख्यात गुण हीन समझना चाहिये। पंच संग्रह ग्रंथ में २५६ अंगुल रूप सूची प्रदेशों का ही प्रतिभाग कहा है। वर्ग नहीं कहा है। परन्तु आगम में आया हुआ कथन ही उचित लगता है।

वैमानिक देवों का वर्णन असुरकुमार देवों की तरह कहना चाहिए। किन्तु इतना अन्तर है कि इनमें विष्कम्भ सूची, अंगुल परिमाण क्षेत्र के आकाश प्रदेशों के दूसरे वर्गमूल को तीसरे वर्गमूल से गुणा करने पर जो प्रदेश राशि आती है, उस परिमाण जानना चाहिए। असत् कल्पना से अंगुल परिमाण क्षेत्र की प्रदेश राशि २५६ है। उसका दूसरा वर्गमूल ४ है और तीसरा वर्गमूल २ है। दूसरे वर्ग मूल ४ को तीसरे वर्गमूल २ से गुणा करने पर ८ होते हैं।

॥ पण्णवणाए भगवईए बारसमं सरीरपयं समत्तं ॥

॥ प्रज्ञापना सूत्र का बारहवां शरीर पद समाप्त ॥

॥ भाग-२ समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं. नाम आगम	मूल्य
१. आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२. सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३. स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४. समवायांग सूत्र	४०-००
५. भगवती सूत्र भाग १-७	४००-००
६. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७. उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८. अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९. अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०. प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११. विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१. उववाइय सुत्त	२५-००
२. राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३. जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४. प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७. चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२. निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका-पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१. उत्तराध्ययन सूत्र भाग १-२	८०-००
२. दशवैकालिक सूत्र	३०-००
३. नंदी सूत्र	२५-००
४. अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३. त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४. निशीथ सूत्र	५०-००
१. आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

क्रं.	नाम	मूल्य
१.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३.	अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४.	अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७.	अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८.	अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९.	आयारो	८-००
१०.	सूयगडो	६-००
११.	उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	१०-००
१२.	दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३.	णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य
१४.	चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५.	अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१६-१८.	उत्तराध्ययन सूत्र भाग १,२,३	४५-००
१९.	आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२०.	दशवैकालिक सूत्र	१५-००
२१.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२२.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ४	१०-००
२५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
२६.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२७.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२८.	पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	१०-००
२९-३१.	तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३२.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३३.	मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३४-३६.	समर्थ समाधान भाग १,२,३	६०-००
३७.	सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३८.	आत्म साधना संग्रह	२०-००
३९.	आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४०.	नवतत्वों का स्वरूप	१५-००
४१.	अगार-धर्म	१०-००
४२.	Saarth Saamaayik Sootra	अप्राप्य
४३.	तत्त्व-पृच्छा	१०-००
४४.	तेतली-पुत्र	५०-००
४५.	शिविर व्याख्यान	१२-००
४६.	जैन स्वाध्याय माला	२०-००
४७.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
४८.	सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१८-००
४९.	सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५०.	लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००
५१.	जिनागम विरुद्ध मूर्ति पूजा	१५-००
५२.	बड़ी साधु वंदना	१५-००
५३.	तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५४.	स्वाध्याय सुधा	७-००
५५.	आनुपूर्वी	१-००
५६.	सुखविपाक सूत्र	२-००
५७.	भक्तामर स्तोत्र	२-००
५८.	जैन स्तुति	८-००
५९.	सिद्ध स्तुति	८-००
६०.	संसार तरणिका	१०-००
६१.	आलोचना पंचक	२-००
६२.	विनयचन्द चौबीसी	१-००
६३.	भवनाशिनी भावना	२-००
६४.	स्तवन तरंगिणी	५-००
६५.	सामायिक सूत्र	१-००
६६.	सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६७.	प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६८.	जैन सिद्धांत परिचय	अप्राप्य
६९.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-००
७०.	जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७१.	जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७२.	जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७३.	तीर्थंकरों का लेखा	अप्राप्य
७४.	जीव-धड़ा	२-००
७५.	१०२ बोल का बासठिया	०-५०
७६.	लघुदण्डक	३-००
७७.	महादण्डक	१-००
७८.	तेतीस बोल	२-००
७९.	गुणस्थान स्वरूप	३-००
८०.	गति-आगति	१-००
८१.	कर्म-प्रकृति	१-००
८२.	समिति-गुप्ति	२-००
८३.	समकित के ६७ बोल	२-००
८४.	पच्चीस बोल	३-००
८५.	नव-तत्त्व	८-००
८६.	सामायिक संस्कार बोध	४-००
८७.	मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८८.	विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
८९.	धर्म का प्राण यतना	२-००
९०.	सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
९१.	मंगल प्रभातिका	१.२५
९२.	कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	५-००
९३.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ५	२०-००
९४.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ६	२०-००
९५.	जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ७	२०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं

जो उवमिज्जइ सयंयं, तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org